॥ इश्तहार ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका संयुक्त क़ी० ७) पु०

इस ग्रन्थ के उत्तम होने में कदापि सन्देह नहीं है—इसका भाषा तिलक ब्रजबोली में बहुतही प्यारा है आशय प्रत्येक श्लोकों का है क्यों न हो इसके तिलककार महात्मा ब्रजवासी अंगदजी शास्त्री हैं—यह तिलक ऐसा सरल है कि इसके द्वारा अल्पसंस्कृतज्ञ पुरुषों का पूरा कार्य निकल सक्ता है—संस्कृतपाठक भी इससे श्लोकों का पूरा आशय समझ सक्ते हैं इस वार यह ग्रन्थ टैप के अक्षरों में उम्दा काग़ज़ सफ़ेद चिकना में छापागया है और विशेष विद्वान् शास्त्रियों के द्वारा शुद्ध कराया गया है जिस से वम्बई की छपीहुई पुस्तक से किसी काम में न्यून नहीं है उम्दा तसावीर भी प्रत्येक स्कन्ध में युक्त हैं—आशा है कि इस अमूल्यरत्न के लेने में महाशय लोग विलम्ब न करेंगे मूल्य भी इसका स्वल्प रक्खा गया है ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण भाषा किताबनुमा काग़ज़ रस्मी ५) व काग़ज़ गुन्दा ६)

पूरे सातोकाण्ड अयोध्यापाठशाला के तृतीयाध्यापक पण्डित महेशदत्तकृत भाषा—यह वही पण्डितजी महाराज हैं जिन्होंने पहिले देवीभागवत और विष्णुपुराण का उल्था किया है दोभाग में यथातथ्य सुगमरीति से परिपूर्ण श्लोक के अनुसार हुआहै को



BY KIND PERMISSION

This volume is most respectfully dedicated to

JAMES CORNWALL, ESQ.,

POST-MASTER GENERAL,

United Provinces of

Agra and Oudh.

In token of the author's high esteem and respect and in gratitude for the kind treatment he has always received while serving under him.

ZALIM SINGH,

Post-Master,

Lucknow.

Lucknow:

1st January 1903.

Preface.

When a boy I had a religious tendency which, in after years, developed into a love for the study of Theology and Philosophy.

While a Postal Inspector and subsequently an assistant superintendent in Oudh, I had the good fortune to enjoy, occasionally, the company of certain eminent philosophers and scientific men, whose valuable instructions helped me in the cultivation of my mind.

The genial climate of Naini-Tal, where I was Post–Master for six years, and the kindness of Mr. J. Cornwall, Post -Master General, under whom I have the honor of serving, enabled me to prosecute the study of the Vedant and Sankhya Philosophies.

A translation into Hindi, with annotations of eight Upanishads (Vedants) viz. Eash, Kain, Katha, Prasana, Mundaka, Manduka, Aitray and Taitray, as well as Sankhya Karika was

undertaken and published in separate volumes.

It comprises (1) a paraphrase, (2) analysis, (3) the meaning of each word according to grammatical construction and (4) a literal translation with an exhaustive explanation of each shloka (stanza) in simple idiomatic Hindi, which render the interpretation of the original work very easy and lucid. Having completed this I conceived a desire to render into Hindi, the Bhagwadgita which, without doubt, ranks first in importance among all ancient Aryan scriptures. The Bhagwadgita has been translated into many languages of the East and West, and there are, at present, no less than fifty versions of it in English. It is known all over the world, among literary men who admire the beautiful soul-elevating instructions which it contains, and which were imparted to Arjun by the Most Holy Lord Krishna on the battle-field of Kurukshetra near Delhi. After the Bhagwadgita, I undertook the translation of the Ashta-Vakra Gita. This work is unsurpassed and unequalled being based

on the highest precepts of the Vedant Philosophy. The text itself is very easy as it is worded in the simplest Sanscrit, but the deep meaning hidden therein is most difficult to grasp. The translation has been made on the same principle as indicated above but with more exhaustive explanations.

I trust that scholars of classics will appreciate my endeavours and experience pleasure in the perusal of this translation.

Dated Lucknow.
1st January 1903.

ZALIM SINGH
POST MASTER,
LUCKNOW.

ॐ हरिः ॥

जब मैं पाठशाला में विद्याध्ययन करता था, तबहीसे हरिकीर्त्तन करने की, शुभमार्गपर चलने की, असत् के त्याग की और सत्के ग्रहण की, मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुआ करती थी, जब मैं इन्स्पेक्टर डाकखानेजात गोंड़ा और बहरायच का हुआ तब तुलसीकृत रामायण पढ़ने की और सत्यनारायण की कथा सुनने की अतिरुचि थी. जो काल सरकारी काम करने से बचता, भगवत् आराधन में लगाता, दैवइच्छा से कभी २ संग महात्मा पुरुषों का होजाता, और वेदांतशास्त्र के सूर्यवत् वाणी को उनसे सुनकर अन्तःकरण के अन्धकार को नाश करता,जब मैं लखनऊ में असिस्टेन्ट सुपुरिन्टेन्डेन्ट होकर आया, ईश्वर की कृपा से मेरे पूर्वजन्म के शुभकर्म उदय होआये, और श्रीस्वामी यमुनाशङ्कर जी वेदान्ती का दर्शन हुआ, उनके सरल प्रीतियुक्त उपदेशसे मेरे यावत् अन्धकार थे सब नष्ट होगये, और अपने

शान्त अद्वैत निर्मल आत्मा विषे स्थित हुआ, जब पण्डितजीका देहान्त हुआ तब और अनेक वेदान्तवित् पण्डितों और संन्यासियोंका संग रहा, स्वामी परमानन्दजीका भी संग होता रहा उन की कृपा सदा बनी रही ॥

नैनीताल में जब मैं पोस्टमास्टर था, तब यह इच्छा हुई कि वेदान्त के विदित ग्रन्थोंको सरल मध्यदेशी भाषा में सहित पदच्छेद, अन्वय और शब्दार्थ के अनुवाद करूं, मेरे इस सत्सङ्कल्पको परमात्माने पूरा किया. ये सब टीका देखने योग्य हैं और भवसागर के पार करने में अलौकिक नौकाहैं ॥

ॐतत्सत् ॐतत्सत् ॐतत्सत्

जालिमसिंह पोस्टमास्टर लखनऊ

आत्मज लाला शिवदयालसिंह

निवासी ग्राम अकबरपुर

ज़िला फैज़ाबाद

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका ॥

एक समय राजा जनकजी घूमने जातेथे राह में जब अष्टावक्रजी को आते देखा तब राजा घोड़े से उतर कर ऋषिको साष्टांग प्रणाम किया पर ऋषि के शरीरको देखकर राजाके चित्तमें कुछ घृणा हुई कि परमेश्वर ने इनका शरीर कैसा कुरूप रचाहै ऋषिके शरीर में आठ कुब थे इसी से उनका शरीर कुरूप देखने में आताथा और जब चलतेथे तब आठ अंगों से वक्र याने टेढ़ा होता जाताथा इसी कारण उनके पिताने उनका नाम अष्टावक्र रक्खाथा पर आत्मज्ञान में वह बड़े निपुणथे और योगविद्या में भी बड़े चतुर थे अपनी विद्याके बलसे उन्होंने राजा के चित्तकी घृणाको जानलिया और उसको उत्तम अधिकारी जानकर कहते भये ॥

अष्टावक्र उवाच ॥ हे राजन् ! जैसे मंदिरके टेढ़ा होनेसे आकाश टेढ़ा नहीं होताहै और मंदिर के गोल वा लंबा होने से आकाश गोल वा लम्बा नहीं होताहै क्योंकि आकाश का मंदिरके सा-

कोई सम्बन्ध नहीं है आकाश निरवयवहै मंदिर सावयवहै तैसे आत्माका भी शरीर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है आत्मा निरवयवहै शरीर सावयव है आत्मा नित्यहै शरीर अनित्य है शरीर के वक्र आदिक धर्म आत्मा में कदापि नहीं आसक्के हैं हे राजन्! ज्ञानवान् की आत्मदृष्टि रहतीहै अज्ञानीकी चरमदृष्टि रहती है तू चरमदृष्टिको त्यागकर आत्मदृष्टि को ग्रहण करके जब देखेगा तब तेरे चित्तसे घृणा दूर होजावैगी हे राजन्! चरमदृष्टिसे अज्ञानी मूर्ख देखते हैं ज्ञानवान् नहीं देखते हैं॥

ऋषि के अमृतरूपी वचनों को श्रवण करके राजाके मनमें आत्मज्ञान के प्राप्तहोने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होतीभई राजाने ऋषिसे प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप मेरे गृहको पवित्र करिये और कुछदिन वहांपर निवास करिये और मेरे चित्तके संदेहों को दूर करके आत्मदृष्टिको मेरे में भी उत्पन्न करिये ऋषिने राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार किया और राजाके साथ आये॥ राजाने अपने गृह विषे एक उत्तम स्थान में सिंहासन लगाकर बड़े सत्कार से उसके ऊपर ऋषि को बैठाय और अपने चित्तके संदेहों को पूछने लगा॥

अथ अष्टावक्र सटीक ॥

पहिला अध्याय ॥

मूलम् ॥

कथंज्ञानमवाप्नोति कथंमुक्तिर्भविष्यति ॥ वैराग्यञ्चकथंप्राप्तमेतद्ब्रूहिममप्रभो ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

कथम् ज्ञानम् अवाप्नोति कथम् मुक्तिः भविष्यति वैराग्यम् च कथम् प्राप्तम् एतत् ब्रूहि मम प्रभो ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रभो	= हे स्वामी	च	= और
कथम्	= कैसे	मुक्तिः	= मुक्ति
+ पुरुषः	= पुरुष	कथम्	= कैसे
ज्ञानम्	= ज्ञानको	भविष्यति	= होवेगी
अवाप्नोति	= प्राप्त होताहै	च	= और

वैराग्यम् = वैराग्य	एतत् = इसको
कथम् = कैसे	मम = मेरे प्रति
प्राप्तम् = प्राप्त	ब्रूहि = कहिये
भविष्यति = होवैगा	

॥ भावार्थः ॥

अष्टावक्रजी से राजा जनकजी प्रथम तीन प्रश्नों को पूछतेहैं ॥ हे प्रभो ! पुरुष आत्मज्ञान को कैसे प्राप्त होताहै संसारबंधनसे कैसे मुक्त होजाताहै अर्थात् जन्म मरणरूपी संसार से कैसे छूटजाता है और वैराग्य को कैसे प्राप्त होताहै ॥ राजाका तात्पर्य यहथा कि ऋषि वैराग्य के स्वरूप को उसके कारण को और उसके फलको ज्ञानके स्वरूप को उसके कारण को और उसके फलको मुक्तिके स्व... को उसके कारण को और उस के भेदको ... ...ारसहित कहैं ॥ १ ॥ ...जाके प्रश्नोंको ... अष्टाव... अपने मनमें विचार करते ... संसारमें चार प्रका... पुरुषहैं एक ज्ञानी दूसरा मुमुक्षु तीसरा अज्ञानी ... मूढ़ चारोंमेंसे ज्ञानी तो राजा नहीं है क्योंकि ... ...शय विपर्ययसे रहित ...है और आत्मानन्द ... आनंदित होताहै वही

ज्ञानी होताहै सो ऐसा राजा नहींहै वह संशय करके युक्तहै और अज्ञानी भी नहीं है क्योंकि जो विपर्यय ज्ञान और असंभावनादिकों करके युक्त होता है उस का नाम अज्ञानी है सो ऐसा भी राजा नहीं है और जिसके चित्तमें स्वर्गादिक फलों की कामना भरीहो उसका नाम अज्ञानीहै सो ऐसाभी राजा नहीं है यदि ऐसा होता तो यज्ञादिक कर्मोंके विषयमें विचार करता सो तो इसने नहीं कियाहै और मूढ़बुद्धिवालाभी नहीं है क्योंकि जो मूढ़बुद्धिवाला होता है वह कभीभी महात्माको दण्डवत् प्रणाम नहीं करताहै अपने जाति और धनादिकों के अभिमान मेंही मराजाता है सो ऐसाभी राजा नहींहै क्योंकि हमको महात्मा जानकर हमारा सत्कार कर अपने भवनमें लाकर संसार बंधनसे छूटने की इच्छाकर जिज्ञासुवों की तरह राजा ने प्रश्नों को कियाहै इससे सिद्ध होताहै कि राजा जिज्ञासु याने मुमुक्षुहै और आत्मविद्याका अधिकारीहै और विना साधनोंके आत्मविद्याकी प्राप्ति होती नहीं इस वास्ते अष्टावक्रजी प्रथम साधनों का राजाके प्रति कहतेहैं ॥

मूलम् ॥

मुक्तिमिच्छसिचेत्तात विषयान्विष

वत्त्यज ॥ चमार्ज्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद्भज ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

मुक्तिम् इच्छसि चेत् तात विषया-न् विषवत् त्यज क्षमार्ज्जवदयातोष-सत्यम् पीयूषवत् भज ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तात	हे प्रिय	+ च	और
चेत्	अगर	क्षमार्ज्जवदयातोषसत्यम्	क्षमा आर्जव दया संतोष और सत्यको
मुक्तिम्	मुक्तिको	पीयूषवत्	अमृतवत्
इच्छसि	तू चाहताहै तो	भज	सेवनकर
विषयान्	विषयों को		
विषवत्	विषवत्		
त्यज	छोड़		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी जनकजी के प्रति कहते हैं हे तात ! यदि तुम संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा करते हो तो

चक्षु रसना आदिक पांच ज्ञानेन्द्रियों के जो शब्द स्पर्शादिक पांच विषयहैं उनको तू विषकी तरह त्याग क्योंकि जैसे विषके खाने से पुरुष मरजाता है तैसे ही इन विषयों के भोगने से भी पुरुष संसारचक्ररूपी मृत्युको प्राप्त होजाता है इसलिये मुमुक्षुको प्रथम इनका त्याग करना अवश्य है और इन विषयों के अत्यंत भोगने से रोगादिक उत्पन्न होते हैं और बुद्धिभी मलिन होती है सार असार वस्तु का विवेक नहीं रहता है इसलिये ज्ञानके अधिकारी को याने मुमुक्षुको इनका त्याग करना अवश्य है॥ प्र०॥ हे भगवन्! विषयभोगके त्यागने से शरीर नहीं रहता है जितने बड़े २ ऋषि राजऋषि हुये हैं उन्होंने भी इनका त्याग नहीं कियाहै और आत्मज्ञानको प्राप्तहुये हैं और भोगभी भोगते रहे हैं फिर आप हमसे कैसे कहते हैं कि इनको त्यागो॥ उ०॥ अष्टावक्रजी कहतेहैं कि हे राजन्! आपका कहना सत्य है स्वरूप से विषय नहीं भी त्यागे जाते हैं पर इनमें जो अति आसक्ति है अर्थात् पांचों विषयों में से किसी एकके अप्राप्त होने से चित्तकी व्याकुलता होना और सदैव काल उसी में मन का लगा रहना आसक्ति है उसके त्यागका नामही विषयों का त्यागहै जो प्रारब्धभोगसे प्राप्तहो उसी में

संतुष्ट होना लोलुप न होना और उनकी प्राप्ति के लिये असत्यभाषणादिकों का न करना किंतु प्राप्ति काल बिषे उन में दोषदृष्टि औ ग्लानि होनी और उसके त्यागकी इच्छाहोनी और उनकी प्राप्तिके लिये किसी के आगे दीन न होना इसी का नाम वैराग्य है यह जनकजी के एक प्रश्नका उत्तर हुआ॥ प्र०॥ हे भगवन्! संसार में नंगे रहने को और भिक्षामांग कर खानेवाले को वैराग्यवान् लोक कहते हैं और तिसमें जड़भरत आदिकों के दृष्टांतको देते हैं आपके कथनसे लोकों का कथन विरुद्ध पड़ताहै॥ उ०॥ संसारमें जो मूढ़बुद्धिवाले हैं वही नंगे रहने और मांगकर खानेवाले को वैराग्यवान् जानते हैं और नंगों से कान फुकवाकर उन के पशु बनते हैं परंतु युक्ति प्रमाण से यह वार्ता विरुद्ध है यदि नंगे रहने से ही वैराग्यवान् होना हो तो सब पशु और पागल आदिकों को भी वैराग्यवान् कहना चाहिये पर ऐसा तो नहीं देखते हैं और यदि मांगकर खानेसे ही वैराग्यवान् होजावै तो सब दीन दरिद्रियों को भी वैराग्यवान् कहना चाहिये सो तो नहीं कहते हैं इन्हीं युक्तियों से साबित होता है कि नंगा रहने और मांग कर खाने वालेका नाम वैराग्यवान् नहीं है यदि कहो

विचार पूर्वक नंगे रहनेवाले का नाम वैराग्यवान् है सो भी वार्ता शास्त्रविरुद्ध है क्योंकि विचार के साथ इसवार्ता का विरोध आता है जहांपर प्रकाश रहताहै वहांपर तम नहीं रहता परस्पर ये दोनों जैसे विरोधी हैं तैसे सत्त्वगुणका कार्य सत्य और मिथ्या का विवेचन-रूपी विचार है और तमोगुणका कार्य्य नंगा रहना है देखिये वर्षके बारहों महीनों में नंगे रहनेवालों के शरीर को कष्ट होता है सरदीके मौसममें सरदी के मारे उनके होश बिगड़ते हैं विचार कहां सक्ता है गरमी बरसात में मच्छर काट २ खाते हैं सदैव काल तो उनकी वृत्ति दुःखाकारकी बनी रहती है विचारका गंधमात्र भी नहीं रहता है॥ श्रुतिसे भी विरोध आताहै॥ आत्मा नंचेद्विजानीयादयमस्मीतिपूरुषः॥ किमिच्छन्कस्यका मायशरीरमनुसंज्वरेत्॥ १॥ यदि विद्वान् ने आत्मा को जानलिया कि यह आत्मा ब्रह्म मैंही हूं तब किस की इच्छा करताहुआ किस कामना के लिये शरीरको तपावैगा किंतु कदापि नहीं तपावैगा और गीतामें भी भगवान् ने इसको तामसी तप लिखा है इसी से साबित होता है कि नंगे रहनेवालेका नाम वैराग्यवान् नहीं है और नंगे रहने का नाम वैराग्य नहीं है केवल मूर्खोंको पशु बनाने के वास्ते नंगा रहनाहै

सकामी इसतरह के व्यवहारको करता है निष्कामी नहीं करताहै और जड़भरतादिकों को पूर्वजन्म याद था एक मृगी के बच्चे के साथ स्नेह करने से उनको तीन जन्म मृगके लेने पड़ेथे इसी वास्ते वह संग-दोषसे डरतेहुये असंग होकर रहते थे पंचदशी में लिखाहै ॥ नह्याहारादिसंत्यज्य भरतादिःस्थितःक्वचित्॥ काष्ठपाषाणवत्किंतु संगभीत्याउदास्यते॥ १ ॥ जड़-भरतादिक खान पहरान आदिकोंको त्याग करके कहीं भी नहीं रहे हैं पत्थर और लकड़ी की तरह जड़ हो कर संगसे डरते हुये उदासीन होकरके रहे हैं जबतक देह के साथ आत्मा का तादात्म्यअध्यास बना है तब तक तो नंगारहना दुःख का और मूर्खताका ही कारण है जब अध्यास नहीं रहेगा तब इसको नंगे रहने से दुःखभी नहीं होगा आत्माके साक्षात्कार होने से जब मन उस महान् ब्रह्मानंदमें डूब जाता है तब शरीरादिकों के साथ अध्यास नहीं रहता है और न विशेष करके संसारके पदार्थों का उस पु-रुषको ज्ञान रहता है मदिराकरके उन्मत्त को जैसे शरीर की और वस्त्रादिकों की खबर नहीं रहती है तैसेही जीवन्मुक्त ज्ञानी की वृत्ति केवल आत्माकार रहती है उसको भी शरीरादिकोंकी खबर नहीं रहती

है ऐसी अवस्था जीवन्मुक्त की लिखी है मुमुक्षु वैराग्यवान् की नहीं लिखी क्योंकि उसको संसारके पदार्थोंका ज्ञान ज्योंका त्यों बनारहता है संसार के पदार्थों में दोषदृष्टि और ग्लानिका नामही वैराग्य है और खोटे पुरुषोंके संगसे डरकर महात्मों का संग करनेवाला क्षमा कोमलता दया और सत्यभाषणादिक गुणों को अमृतवत् पान करने याने धारण करनेवाले का नाम वैराग्यवान् है वही ज्ञानका अधिकारी है ॥ २ ॥ वैराग्यके स्वरूपको अष्टावक्रजी नें जनक जीके प्रति कहकर राजाके द्वितीय प्रश्न कें उत्तरको कहते हैं ॥

मूलम् ॥

नपृथिवीनजलंनाग्निर्नवायुर्द्यौर्नवा भवान् ॥ एषांसाक्षिणमात्मानं चिद्रूपं विद्धिमुक्तये ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

न पृथिवी न जलम् न अग्निः न वायुः द्यौः न वा भवान् एषाम् साक्षिणम् आत्मानम् चिद्रूपम् विद्धि मुक्तये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
भवान्	तू
न पृथिवी	न पृथिवी है
न जलम्	न जल है
न अग्निः	न अग्नि है
न वायुः	न वायु है
न द्यौः	न आकाश है

अन्वयः	शब्दार्थ
वा	पर
मुक्तये	मुक्तिके लिये
एषाम्	इनसबका
साक्षिणम्	साक्षी
चिद्रूपम्	चैतन्य रूप
आत्मानम्	अपनेको
विद्धि	जान

भावार्थ ॥

दूसरा प्रश्न राजा का यह था कि पुरुष आत्म-ज्ञानको कैसे प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान का स्व-रूप क्या है इसके उत्तर में ऋषि कहते हैं कि अ-नादिकाल का देहादिकों के साथ जो आत्मा का तादात्म्य अध्यास होरहा है उस अध्यास से ही पुरुष देहको आत्मा मानता है और इसी से जन्ममरण-रूपी संसारचक्र में पुनः २ भ्रमता रहता है तिस अ-ध्यासका कारण अज्ञान है तिस अज्ञान की निवृत्ति आत्मज्ञान करके होती है और अज्ञान की निवृत्ति

से अध्यास की भी निवृत्ति होती है इसी वास्ते ऋषि प्रथम कार्य के सहित कारणकी निवृत्तिका हेतु जो आत्मज्ञान है तिसको कहते हैं ॥ हे राजन् ! तुम पृथिवी नहीं हो और न तुम जलरूप हो न अग्निरूप हो न वायुरूपहो न आकाशरूपहो अर्थात् इनपांचों तत्त्वों में से कोई भी तत्त्व तुम्हारा स्वरूप नहींहै और पांचों तत्त्वों का समुदायरूप जो यह इन्द्रियों का विषय स्थूल शरीरहै वह भी तुम नहीं हो क्योंकि शरीर क्षण २ में परिणाम को प्राप्त होताजाता है जो बाल अवस्था का शरीर होता है वह कुमार अवस्था में नहीं रहता है कुमार अवस्थावाला युवाअवस्था में नहीं रहता युवाअवस्थावाला वृद्धा अवस्था में नहीं रहता और आत्मा सब अवस्थामें एकही ज्योंका त्यों रहता है इसी वास्ते युवा और वृद्धा अवस्था में प्रतिभिज्ञाज्ञान भी होताहै अर्थात् पुरुष कहताहै कि मैं बाल्यावस्थामें माता पिताको अनुभव करता भया कुमारावस्थामें खेलता भया युवा अवस्थामें स्त्री के साथ शयन करता भया अब देखिये अवस्था सब बदलती जातीहै पर अवस्था का अनुभव करनेवाला आत्मा नहीं बदलताहै एकरस ज्योंका त्योंही रहता है यदि अवस्थाके साथ आत्मा भी बदल जाता तब प्रतिभिज्ञाज्ञान कदा

पि न होता क्योंकि ऐसा नियमहै जो अनुभव का क-
र्ता होताहै वही स्मृति और प्रतिभिज्ञा काभी कर्ता हो-
ताहै दूसरे करके देखेहुये पदार्थों का स्मरण दूसरे को
नहीं होताहै इसीसे साबित होताहै कि आत्मा देहादि-
कों से भिन्नहै और देहादिकों का साक्षीभीहै जो देहा-
दिकोंसे भिन्नहै और देहादिकों का साक्षीभी है हे रा-
जन्! उसी चिद्रूपको तुम अपना आत्मा जानो ॥ जैसे
घरवाला पुरुष कहताहै मेरा घरहै मेरा पलंगहै मेरा बि-
छौनाहै और वह पुरुष घर और पलंगादिकों से जैसे
जुदाहै तैसे पुरुष कहताहै यह मेरा शरीरहै ये मेरे
इन्द्रियादिक हैं जो शरीर और इन्द्रियों का अनुभव
करनेवाला आत्माहै वह शरीर इन्द्रियादिकों से भिन्न
है और उनका साक्षीहै श्रुति कहती है ॥ अयमात्म ब्र-
ह्म ॥ यह जो प्रत्यक्ष तुम्हारा आत्माहै यही ब्रह्महै यही
ईश्वरहै अष्टावक्रजी कहतेहैं हे जनक! पृथिवी आ-
दिक पांचभूत और उनका कार्य्य स्थूल शरीर तथा
इन्द्रिय और उनके विषय शब्दादिक इन सबसे तू
न्याराहै और सबका तू साक्षीहै ऐसे निश्चय का ना-
मही आत्मज्ञान है ॥ २ ॥ आत्मज्ञानके स्वरूप
को अष्टावक्रजीने जनकजी के प्रति कह कर अब
मुक्तिके स्वरूप को तथा उपायको कहते हैं ॥

मूलम् ॥

यदिदेहंपृथक्कृत्य चिति विश्राम्यतिष्ठसि ॥ अधुनैवसुखीशांतो बंधमुक्तोभविष्यसि ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

यदि देहम् पृथक् कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि अधुना एव सुखी शान्तः बन्धमुक्तः भविष्यसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदि	= अगर	विश्राम्य	= विश्राम करकेयानें चित्तको एकाग्र करके
देहम्	= देहको	तिष्ठसि	= स्थितहै तू तो
पृथक्	= अलग	अधुनाएव	= अभी
कृत्य	= करके	+त्वम्	= तू
च	= और		
चिति	= चैतन्य आत्मा विषे		

सुखी = सुखी	बन्धमुक्तः = बन्धसेमुक्त
शान्तः = शान्तहो-ताहुआ	भविष्यसि = होवैगा

भावार्थ ॥

हे राजन्! यदि तू देहसे आत्मा को पृथक् विचार के और अपने आत्मामें चित्तको स्थिर करके जब स्थित होवैगा तब तू सुख और शान्तिको प्राप्त होवैगा जब तक चिद्‌जड़ग्रन्थिका नाश नहीं होता है अर्थात् परस्परके अध्यास का नाश नहीं होताहै तबतकही जीवको बंधहै जिसकालमें अध्यास का नाश होजाताहै उसीकालमें जीव मुक्त होजाताहै॥ शिवगीतामें भी इसी वार्ता को कहाहै ॥ मोक्षस्यनहि वा सोऽस्ति नग्रामान्तरमेववा ॥ अज्ञानहृदयग्रन्थिन्नाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥ १ ॥ मोक्षका किसी लोकांतर में निवास नहींहै और न किसी गृह या ग्रामके भीतर मोक्षका निवासहै किंतु चिद्‌जड़ग्रन्थिका नाशही मोक्षहै अर्थात् जड़ चेतनका जो परस्पर अध्यासहै तिस अध्यास करके जो जड़ अंतःकरण के धर्म कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक आत्मामें प्रतीत होरहेहैं और आत्मा के धर्म जो चेतनता आदिक अंतःकरण में

प्रतीत होरहेहैं अग्निमें तपाये हुवे लोहपिंडकी तरह यानें जब लोहेका पिंड अग्नि में तपाया हुआ लाल होजाताहै और हाथ लगाने से वह हाथ को जलादे-ताहै तब लोक ऐसा कहतेहैं देखो यह अग्नि कैसा गोलाकारहै लोहा कैसा जलताहै जलाना धर्म लोहे का नहीं है और गोलाकार धर्म अग्निका नहीं है किंतु परस्पर दोनों का तादात्म्य अध्यास होने से अग्निका जलाना धर्म लोहे में आजाता है और लो-हेका गोलाकार धर्म अग्नि में चलाजाता है तैसे ही अंतःकरण के साथ आत्मा का तादात्म्य अध्यास हो-नेसे जब आत्मा के चेतन आदिक धर्म अंतःकरण में आजाते हैं और अंतःकरणके कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादिक धर्म आत्मामें चलेजाते हैं तब पुरुष अपने आत्मा को कर्त्ता भोक्ता मानने लगजाता है और तिसी से जन्म मरण रूपी बंधनको प्राप्त होताहै जब आत्मज्ञान करके अ-पने को अकर्ता अभोक्ता शुद्ध असंग मानता है और कर्त्तृत्वादिक अंतःकरण का धर्म मानताहै तब आप सा-क्षीहोकर अंतःकरण का भी प्रकाशक होता है औ तब ही अध्यास का नाश होजाता है अध्यास के नाश का नामहीं मुक्ति है इससे अतिरिक्त मुक्ति कोई वस्तु नहीं हैं॥ ४ ॥ जनकजी कहते हैं हे भगवान् नैया-

सुखी = सुखी ...को कर्त्ता भोक्ता और सुख दुःखादिक
शान्तः = शान्त ...मानते हैं और पुरुषभी कहता है मैं कर्त्ता
...तू यज्ञादिक कर्मोंका कर्त्ता और उनके फल
भोक्ता भी अपने को मानता है तब फिर यह
आत्मा अकर्त्ता अभोक्ता होकर मुक्त कैसे होसक्ता
है ॥ इसके उत्तरको अष्टावक्रजी कहते हैं ॥

मूलम् ॥

नत्वंविप्रादिकोवर्णो नाश्रमीनाक्ष गोचरः ॥ असङ्गोऽसिनिराकारो विश्व साक्षीसुखीभव ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

न त्वम् विप्रादिकः वर्णः न आश्रमी न अक्षगोचरः असंगः आसि निराकारः विश्वसाक्षी सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्	= तू	वर्णः	= जात
विप्रादिकः	= ब्राह्मणादि	न	= नहीं है
		च	= और

दूरहो ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजन् वेदने जितने वर्णाश्रमादिकों के धर्म कहे हैं वे सब अज्ञानी मूर्ख के लिये कहे हैं ज्ञानी के और मुमुक्षु के लिये नहीं॥ ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्ययोगिनः ॥ नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमस्तिचेन्नसतत्त्ववित् ॥ १ ॥ जो आत्म ज्ञानरूपी अमृत करके तृप्त है और जो आत्मज्ञान करके कृतकृत्य होचुका है उसको किंचित् भी कर्म करने योग्य बाकी नहीं है अगर वह अपनें को कर्त्तव्यमानै तब वह आत्मवित् नहीं है ऐसे अनेक वाक्य ज्ञानी के लिये कर्त्तव्यताका अभाव कथन करते हैं ॥ गीतामें जिज्ञासुकेप्रति कर्मों का निषेध कहा ॥ जिज्ञासुरपियोगस्यशब्दब्रह्मातिवर्त्तते॥ भगवान् कहते हैं कि आत्मज्ञानका जिज्ञासु भी शब्द ब्रह्मजो वेदहै उसकी आज्ञाको उलंघ्य करके वर्तता है अर्थात् जिज्ञासुके ऊपर भी कर्मकांड वेद भागका आज्ञा नहीं रहता है तात्पर्य यह है कि कर्मकांड भाग वेदकी आज्ञा अज्ञानी मूर्ख सकामी के ऊपर है सो हे जनक यदि तू जिज्ञासु है तब भी तेरे ऊपर वर्णाश्रमों के धर्मोंके करने की वेदकी आज्ञा नहीं है यदि तू लोकाचार के लिये करना चाहता है तब उनको आत्मा से प्रथक अन्तःकरण का धर्म मान कर तू कर ॥

सुखी = सु॰ मूलम् ॥

शान्तः धर्माऽधर्मौसुखंदुःखं मानसानिनते ॥ नकर्त्ताऽसिनभोक्तासि मुक्तएवासिसर्वदा ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

धर्माऽधर्मौ सुखम् दुःखम् मानसानि न ते विभो न कर्त्ता असि न भोक्ता असि मुक्तः एव असि सर्वदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विभो	हे व्यापक	न	नहीं है
मानसानि	मन सम्बन्धी	न	न
धर्माऽधर्मौ	धर्म अधर्म	त्वम्	तू
सुखम्	सुख	कर्त्ता	कर्त्ता
च	और	असि	है
दुःखम्	दुःख	न	न
ते	तेरे	भोक्ता	भोक्ता
		असि	है
		सर्वदा	सदा

त्वम् = तू	एव = ही
मुक्तः = मुक्त	असि = है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजा धर्म अधर्म सुख दुःखादिक ये सब मनके धर्म हैं तुझ व्यापक आत्मा के नहीं अर्थात् तेरा स्वरूप व्यापक है उसके ये सब धर्म नहीं हैं किन्तु परिच्छिन्न मनके सबधर्म हैं न तू कर्ता है न भोक्ता है तू सर्वदाकाल मुक्तस्वरूप है ॥ ६ ॥ फिर उसी वार्त्ता को दृढ़ करने के वास्ते अष्टावक्र जी कहते हैं ॥

मूलम् ॥

एकोद्रष्टासिसर्वस्य मुक्तप्रायोसिस र्वदा ॥ अयमेवहितेबन्धो द्रष्टारंपश्य सीतरम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

एकः द्रष्टा असि सर्वस्य मुक्तप्रायः असि सर्वदा अयम् एवहि ते बन्धः द्रष्टारम् पश्यसि इतरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वस्य	सबका
एकः	एक
द्रष्टा	देखनेवाला
असि	तूहै
सर्वदा	निरंतर
मुक्तप्रायः	अत्यन्त मुक्त
असि	तूहै
अयम्	यह

अन्वयः	शब्दार्थ
एव	ही
ते	तेरा
बन्धः	बन्धन है
हि	जो
इतरम्	दूसरेको
द्रष्टारम्	द्रष्टा
त्वम्	तू
पश्यसि	देखताहै

भावार्थ ॥

हे राजा तूही एक सच्चिदानन्द परिपूर्ण रूपसे सब का द्रष्टा है और सर्वदा मुक्तस्वरूप है तेरे में बंध तीनोंकाल में नहीं है जैसे सूर्य में तम तीनों काल में नहीं है तैसे तूही स्वयं प्रकाश सारे जगत् का द्रष्टाहै और जो तू अपने को द्रष्टा न जानकर अपने से भिन्न किसी को द्रष्टा मानता है यही तेरे में बन्ध है ७ ॥ जनकजी कहते हैं हे भगवन् सारे संसार में सबलोक अपने से भिन्न कर्मों का साक्षी और द्रष्टा मानते हैं और अपने को कर्मों का करता मानते हैं तब फिर

वे सब ऐसा क्यों मानते हैं और अपने से भिन्न द्रष्टा और कर्मों के फलका प्रदाताको क्यों मानते हैं उ० ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं जो संसार में अज्ञानी मूर्ख हैं वे अपने से भिन्न द्रष्टाको और कर्मों के फलप्रदाता को मानते हैं और अपने को कर्मों का कर्त्ता और फलका भोक्ता मानते हैं ज्ञानवान् ऐसा नहीं मानते हैं ॥

मूलम् ॥

अहंकर्तेत्यहंमान महाकृष्णाहिदंशितः नाहंकर्तेतिविश्वासामृतंपीत्वासुखीभव ८ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् कर्ता इति अहंमानमहाकृ-ष्णाहिदंशितः न अहम् कर्ता इति विश्वासामृतम् पीत्वा सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	मैं	नकर्त्ता	नहींकर्त्ता हूं
कर्ता	करताहूं	इति	ऐसे
इति	ऐसे	विश्वासामृतम्	विश्वासरूपीअमृत को
अहंमानमहाकृष्णाहिदंशितः	अहंकाररूपीमहाकालेसर्पसे दंशितहुआहै तू	पीत्वा	पीकरके
		सुखी	सुखी
अहम्	मैं	भव	हो

भावार्थ ॥

हे जनक " अहंकर्त्ता " मैं इस कर्म का कर्ताहूं, मैं इसके फलको भोगूंगा, यह जो अहंकार रूपी काला सर्प है,इसी करके सारासंसार डसाहुआ जन्म मरण रूपी चक्र में पड़ा भ्रमता है,और तूभी इस अहंकार रूपी सर्प करके डसाहुआ अपने को कर्त्ता भोक्ता मानता है, तिस अहंकार रूपी सर्प के विषके उतारने के लिये "नाहंकर्त्ता" मैं कर्त्ता नहीं हूं,जब ऐसे

निश्चय रूपी अमृतको तू पान करैगा, तब तू सुखी होवैगा अन्यथा किसी प्रकारसे भी तू सुखी नहीं होवैगा ॥ ८ ॥ जनकजी कहते हैं पूर्वोक्त अमृतको मैं कैसे पानकरूं ॥ इसके उत्तरको ॥

मूलम् ॥

एकोविशुद्धबुद्धोहमितिनिश्चयवह्निना ॥ प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकःसुखीभव ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ॥

एकः विशुद्धबोधः अहम् इति निश्चयवह्निना प्रज्वाल्य अज्ञानगहनम् वीतशोकः सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एकः	= एक	निश्चयवह्निना	= निश्चय रूपी अग्नि से
विशुद्धबोधः	अतिशुद्धबोध रूपहूं	अज्ञानगहनम्	= अज्ञानरूपी वनको
इति	= ऐसे		

प्रज्वाल्य = जलाकर	त्वम् = तू
वीतशोकः = शोकरहितहुआ	सुखी = सुखी
	भव = हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं, हे जनक तू इसप्रकार के निश्चयरूपी अमृतको पानकर, मैं एकहूं, याने सजाती विजाती स्वगत भेद से रहितहूं, एक वृक्षका जो वृक्षांतरसे भेद है वह सजातिभेद कहाजाता है, और वृक्षका जो घटादिकों से भेद है उसका नाम विजाती भेदहै, और वृक्षका जो अपने शाखादिकों से भेद है, वह स्वगत भेद कहाजाता है ॥ आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि एकही आत्मा सारेजगत् में व्यापक है, वह पारमार्थिक सत्तावाला है और नित्यहै, दूसरा कोई ऐसा नहीं है, इसवास्ते आत्मा में सजाती भेद नहीं है, परिछिन्न व्यवहारिक सत्तावालों में सजाति भेद रहता है, और आत्मा से भिन्न कोई भी पदार्थ पारमार्थिक सत्तावाला नहीं है, आत्मा से भिन्न सब मिथ्या है ॥ ब्रह्मभिन्नम् ॥ सर्वंमिथ्या ॥ ब्रह्मभिन्नत्वात् ब्रह्म से भिन्न साराजगत् ब्रह्म से पृथक होने के कारण शुक्तिरजत की तरह मिथ्या है इस

अनुमान प्रमाण से जगत् मिथ्या साबित होता है, और इसी से आत्मा में विजाती भेद भी नहीं है, ॥ आत्मा निरावयव है, इसवास्ते उस में स्वगत भेदभी नहीं है,स्वगत भेद सावयव पदार्थों में होताहै, आत्मा देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित है, देशकाल वस्तु परिच्छेद परिछिन्न पदार्थमें ही रहता है, व्यापक में नहीं रहता है, जो वस्तु किसीकाल में हो किसी कालमें न हो,वह काल परिच्छेद वाली कहाती है,सो ऐसे घटपटादिक पदार्थ हैं, आत्मा तीनोंकालों में एक ही ज्योंकात्यों रहता है, इसवास्ते काल परिच्छेद से आत्मा रहित है, जो वस्तु एक देश में हो दूसरे देशमें न हो,वह देश परिच्छेदवाली कहाती है, सो ऐसे घटपटादिक पदार्थ हैं, आत्मा सब देश में है, इसवास्ते वह देश परिच्छेद से भी रहित है ॥ जो एक वस्तु दूसरी वस्तु में न रहे, वह वस्तु परिच्छेद कहाता है, जैसे घटपट में नहीं रहता है, और पटघटमें नहीं रहता है, आत्मा सब वस्तुवों में ज्योंकात्यों एकरस रहता है,इसवास्ते वह वस्तु परिच्छेदसे भी रहित है,हे जनक, जो देशकाल वस्तु परिच्छेदसे रहित है, और नित्य है, व्यापक है,वह एकही साबित होता है, वही तेरा आत्मा है, हे राजा,तू ऐसा निश्चयकर कि मैं ही

सर्वत्र व्यापक हूं, और सजाति विजाति स्वगत भेद से रहितहूं, और विशेषकरके शुद्धहूं, अर्थात् अविद्या आदिक मल मेरे में नहीं हैं,जब तू ऐसे निश्चयरूपी अग्निको प्रज्वालन करके अज्ञानरूपी वनको भस्म करैगा, तो फिर जन्ममरण रूपी शोक से रहितहोकर परमानन्द को प्राप्तहोवैगा ॥ ९ ॥ जनकजी कहते हैं हे महाराज पूर्वोक्त निश्चय करने से भी तो जगत् सत्यही दिखाई पड़ता है, इसकी निवृत्ति याने अभाव स्वरूप से कदापि नहीं होती है, और जबतक इसका अभाव न हो तबतक शोकसे रहित होना कठिन है॥

मूलम् ॥

यत्रविश्वमिदंभाति कल्पितंरज्जुसर्पवत् ॥ आनन्दपरमानन्दः सबोधस्त्वं सुखंचर १० ॥

पदच्छेदः ॥

यत्र विश्वम् इदम् भाति कल्पितम् रज्जुसर्पवत् आनन्दपरमानन्दः स्वबोधः त्वम् सुखम् चर ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र	= जिस विषे	सः	= सोई
इदम्	= यह	आनन्दपरमानन्दः	= आनन्द परमानन्द
कल्पितम्	= कल्पित	बोधः	= बोधरूप
विश्वम्	= संसार	त्वम्	= तू है
रज्जुसर्पवत्	= रज्जुसर्प की नाईं	सुखम्	= सुखपूर्वक
भाति	= भासता है	चर	= विचर

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजा जिस ब्रह्मआत्मा में यह जगत् रज्जु सर्प की तरह कल्पित प्रतीत होता है, वह आत्माआनन्द स्वरूपहै, जैसे रज्जुके अज्ञान करके मंद अंधकार में रज्जु ही सर्परूप करके प्रतीत होती है, या रज्जु में सर्प प्रतीत होता है, वास्तव से न तो रज्जु सर्प रूप है, न रज्जु में सर्प है, और न रज्जु में सर्प पूर्व था न आगेहोवैगा, न वर्तमान काल में है, किंतु रज्जु के अज्ञान करके और मंद अन्धकारादि सहकारिकारणजन से भ्रान्तिकरके रज्जु में पुरुषको सर्प प्रतीत होता है, और तिस मिथ्या सर्प को देखकरके पुरुष

भागता है, गिरपड़ता है, डरता है, और जबकोई रज्जु का ज्ञाता उसको कहता है, यह सर्प नहीं है, किंतु रज्जु है, तू क्यों डरता है, तब उसका भ्रम और भयादिक सब दूर होजाते हैं, तैसे ही आत्मा के स्वरूप के अज्ञानकरके पुरुषको जगत् भासता है, और जन्ममरण के भयादिक भी भासते हैं, जब ब्रह्मवित् गुरू उपदेश करता है, कि तू ही ब्रह्महै, तेरेको अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण यह जगत् प्रतीत होरहा है, वास्तव से यह जगत् मिथ्या है, तीनकाल में तेरे विषे नहीं है, जैसे निद्रारूपी दोषकरके पुरुष स्वप्न में अनेक प्रकारके सिंह व्याघ्रादिकों को रचता है, और आप ही उनसे भयको प्राप्त होताहै, जब निद्रा दूर होजाती है, तब उन कल्पित सिंहादिकों का भी नाश होजाता है, तैसेही, हे जनक, तेरेही अज्ञान करके यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, और जब तू अपने स्वरूप को यथार्थ रूपसे जानलेवैगा तब जगत्का भी अभाव होजावैगा ॥ प्र० ॥ हे भगवन् यदि आत्मज्ञान करके अज्ञान और अज्ञानके कार्य्य जगत् का नाश होजाता है तब अबतक जगत् न बना रहता क्योंकि बहुत ज्ञानवान् होचुके हैं उनमें से एक के ज्ञान करके कारणके सहित कार्यरूपी जगत्का यदि नाशहोजाता

तब फिर अस्मदादिक सब जीव और वृक्षादिक सृष्टिभी न होती ऐसा तो नहीं देखते हैं किंतु जगत् ज्योंका त्योंही बना है तब फिर आप कैसे कहते हैं कि अज्ञानके नाशसे जगत् का नाश होजाताहै॥उ०॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजन्! जैसे मरुमरीचिका के जल को देखकर जल की इच्छा करके पुरुष उस के पास जाता है और जब आगे उसको जल नहीं मिलता है और फिर किसीके बताने से जान लेता है कि यह भ्रमकरके मेरे को जो जल दिखाई देताथा वह जल नहीं है तब आकर वृक्षके नीचे बैठजाता है और फिर जब उधरको देखता है तब फिर जल पूर्वकी तरह दिखाई पड़ता है पर जलकी इच्छा करके फिर उसतरफ नहीं दौड़ता है और न दुःखी होता है तैसेही जिसको आत्मज्ञान हुआ है और जिसने जानलिया है कि यह जगत् मिथ्या है भ्रम करके प्रतीत होता है वह फिर दुःखी नहीं होता है और न उसमें उसकी आसक्ति होती है किंतु यावत् जगत् है उस सबको मिथ्या जानता है उस मिथ्यात्व निश्चयका नाम ही जगत् का नाश है स्वरूपसे इस का नाश कदापि नहीं होता है यह प्रवाहरूपसे सदा बनाही रहता है हे जनक! जिसने अपने आत्मा को

सत् चित आनंदरूपकरके जान लिया है वह फिर जन्ममरणरूपी बन्धको प्राप्त नहीं होता है हे जनक! तू अपने को ही आनंदरूप और परमानन्द बोधस्वरूप यांने ज्ञानस्वरूप जान और सुख से विचर॥ प्र०॥ हे भगवन्! अज्ञान एक है या नाना हैं॥ उ०॥ अज्ञान एक है॥ प्र०॥ जब अज्ञान एक है तब तिस एक अज्ञान के नाश होने से उसका कार्य्य जगत्का भी स्वरूप से ही नाश होजाना चाहिये॥ उ०॥ यद्यपि अज्ञान एकही है तथापि उसके कार्यतन्मात्रा और तन्मात्रा का कार्य्य अंतःकरणरूपी भाग अनन्त हैं जैसे आकाश एक है पर अनेक घटरूपीउपाधियों के साथ वह अनेक भेदको प्राप्त होरहा है और जब घटरूपी उपाधि नष्ट होजाती है तब वही घटाकाश महाकाश में मिलजाता है तैसेही जिस अंतःकरण में ज्ञानरूपी प्रकाश उदय होता है वही अंतःकरण नाशको प्राप्त होजाता है और वही जीव जो अबतक बंध था मुक्त होजाता है बाकी सब बन्ध में पड़े रहते हैं जैसे दश पुरुष सोयेहुये अपने २ स्वप्ने को देखते हैं जिसकी निद्रा दूर होजाती है उसी का स्वप्न नष्ट होजाताहै और लोग अपने २ स्वप्नों को देखते ही रहते हैं हे राजन्! अब तू अज्ञानरूपी निद्रासे जाग

और अपने ज्ञान स्वरूप को प्राप्तहोकर सुखपूर्वक संसार में विचर ॥ १० ॥ प्र० ॥ जब सारा जगत् रज्जु सर्प की तरह कल्पितहै और मिथ्या है तब फिर बंध मोक्ष पुरुष को कैसे हो सक्ते हैं ॥

मूलम् ॥

मुक्ताभिमानीमुक्तोहि बद्धोबद्धाभिमान्यपि ॥ किंवदन्तीहसत्येयं यामतिः सागतिर्भवेत् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

मुक्ताभिमानी मुक्तः हि बद्धः बद्धाभिमानी अपि किंवदन्ती इह सत्या इयम् या मतिः सा गतिः भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्ताभिमानी	मुक्तिका अभिमानी	बद्धः	बद्ध है
मुक्तः	मुक्त है	हि	क्योंकि
बद्धाभिमानी	बद्धका अभिमानी	इह	इस संसार में
		इयम्	यह

किंवदन्ती = लोकवाद	सा = वैसी ही
सत्या = सत्य है कि	गतिः = गति
या = जैसी	भवेत् = होती है
मतिः = मति है	

भावार्थ ॥

हे जनक! बन्धका कारण अभिमानहै ॥ ब्राह्मणोहं क्षत्रियोहं वैश्योहं शूद्रोहं ॥ मैं ब्राह्मणहूं मैं क्षत्रियहूं मैं वैश्यहूं मैं शूद्रहूं जैसा २ जिसको अभिमान होता है वैसे २ वह कर्मों को करके उनके फलोंको भोक्ता है और एक जन्मसे दूसरे जन्मको प्राप्त होता है और वही बन्धायमान कहाजाता है और जिसको ऐसा अनुभव है ॥ नाहं ब्राह्मणः न क्षत्रियः ॥ न मैं ब्राह्मणहूं न क्षत्रियहूं न वैश्यहूं न शूद्रहूं किंतु ॥ शुद्धोहं निरंजनोहं निराकारोहं निर्विकल्पोहं ॥ किंतु मैं शुद्धहूं मायामलसे रहितहूं आकार से भी रहितहूं विकल्प से भी रहितहूं नित्यमुक्तहूं ॥ बंध मोक्ष ये सब मन के धर्म हैं मेरे में ये सब तीनोंकाल में नहीं हैं मैं सब का साक्षी हूं ऐसे अभिमानवाला पुरुष नित्यमुक्त है अन्यत्र भी इसी वार्ताको कहाहै ॥ देहाभिमानाद्यं त्पाप [illegible]द्वोबधकोटिभिः । प्रायश्चित्ताद्भवेच्छुद्धिर्नृणां

गोबधकारिणाम्॥ १ ॥ पुरुषोंको जो देहके अभिमान से पाप होता है वह पाप करोड़ों गौके बध करने से भी नहीं होता है क्योंकि करोड़ों गौके बधकरनेवाले की शुद्धिके लिये शास्त्र में प्रायश्चित्त लिखाहै अर्थात् प्रायश्चित्त करके करोड़ों गौका बधकरनेवालाभी शुद्ध होसक्ता है परंतु देहाभिमानी की शुद्धिके लिये शास्त्र में कोई भी प्रायश्चित्त नहीं लिखा है इसी वास्ते जातिवर्णादिक जो देहके धर्महैं उन धर्मोंको जो आत्मा में मानते हैं वही देहाभिमानी कहे जाते हैं और वही सदा बन्धायमान रहते हैं और जो जातिवर्णों के धर्मों को आत्मा में नहीं मानते हैं किंतु अपने आत्माको असंग नित्यमुक्त शुद्ध मानते हैं वे नित्य ही मुक्त हैं हे राजन्! दो दृष्टि कही हैं एक तो शास्त्रदृष्टि और दूसरी लौकिकदृष्टि है शास्त्रदृष्टि से तो देहादिक चर्म के अभिमानी का नामही चमार है क्योंकि अपनेको चर्मका अभिमानी मानता है "देहोहं" और जो चर्म के अभिमान से रहित है वही अपने को देहादिकों से भिन्न नित्य शुद्धबुद्ध मानता है वही मुक्त है और लोक भी कहते हैं कि जैसी जिसकी मति [illegible] अन्तकालमें होती है वैसीही उसकी गति होती है अर्थात् [illegible] जिसका निश्चय होता है वैसा

ही उसको फल प्राप्त होताहै हे राजन्! तू भी अपने को शुद्ध बुद्ध मुक्तरूप निश्चय कर ॥ ११ ॥ जनक जी कहते हैं हे भगवन्! जीवात्माको जो बन्ध और मोक्ष हैं वे दोनों वास्तवसे हैं या अवास्तव से हैं यदि बन्ध वास्तव से हो तब उसकी निवृत्ति कदापि न हो यदि मोक्षही वास्तव हो तो जीवको बन्ध कदापि न हो ॥ इस शंका के उत्तरको आगेवाले वाक्य करके अष्टावक्रजी कहते हैं ॥

मूलम् ॥

आत्मासाक्षीविभुः पूर्णएकोमुक्तश्चिदक्रियः॥ असङ्गोनिःस्पृहः शांतोऽसात्संसारवानिव ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः एकः मुक्तः चित् अक्रियः असंगः निःस्पृहः शान्तः असात् संसारवान् इव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा	आत्मा	विभुः	व्यापकहै
साक्षी	साक्षीहै	पूर्णः	पूर्णहै

एकः = एकहै	निःस्पृहः = इच्छारहित है
मुक्तः = मुक्तहै	शान्तः = शान्तहै
चित् = चैतन्यरूपहै	भ्रमात् = भ्रमकेकारण
अक्रियः = क्रियारहितहै	संसारवान् = संसारवान्
असंगः = संगरहितहै	इव = भासताहै

भावार्थ ॥

हे जनक! बन्ध मोक्ष दोनों अवास्तव हैं केवल अपने स्वरूप की अज्ञानतासे देहादिकों में अभिमान करके जीव अपने को बन्धायमान करके मुक्त होने की इच्छा करता है वास्तव से न उसमें बन्ध है न मोक्ष है जीवआत्मा नित्य है एक है पूर्ण है नित्यहै मुक्त है असंग है निःस्पृह है शान्त है भ्रमकरके संसारवाला भान होता है वास्तवसे उस में संसार तीनों काल में नहीं है इसबिषे एक दृष्टांत कहते हैं॥ एक पुरुषका नाम बेवकूफ़ था और उसकी स्त्री का नाम फ़जीतीथा एक दिन उसकी स्त्री उसके साथ लड़ाई झगड़ा करके कहीं चलीगई तब वह स्त्री को खोजनेके लिये जंगल में गया वहांपर एक तपस्वी उसको मिला और उससे पूंछा तू जंगल में क्यों घूमता है उसने

कहा मैं अपनी स्त्री को खोजता हूं तब उस तपस्वीं
ने कहा तुम्हारी स्त्री का क्या नामहै और तुम्हारा
क्या नाम है तव उसने कहा मेरानाम बेवक़ूफ़है और
मेरी स्त्री का नाम फ़जीतीहै तव उसने कहा "बेवक़ूफ़"
को फ़जीतियों की क्या कमती है जहांपर जावैगा
वहांपर उस बेवक़ूफ़ को फ़जीती मिलजावैगी दार्ष्टां-
त में जबतक जीव अज्ञानी मूर्ख बनाहै तबतक
इसको जन्ममरणरूपी फ़जीतियों की क्या कमती है
जब ज्ञानवान् होगा तब बंध से रहित होजावैगा॥
जनकजी कहते हैं हेभगवन्! नैयायिक लोक आत्मा
को वास्तव से बंध मोक्ष मानते हैं उनका मानना
ठीकहै या नहीं ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं हे राजन्!
नैयायिकादिकों का कथन सर्वयुक्ति और वेदसे विरुद्ध
है यदि आत्मा को वास्तव से बंध होती तब उसकी
निवृत्ति कदापि न होती और साधनभी सब व्यर्थ
होजाते ऐसा तो नहीं है क्योंकि वेद उसकी निवृत्ति
को लिखता है और वास्तव से आत्मा संसारी नहीं है
इसीमें दश हेतुओं को दिखाते हैं ॥ अहंकारादिकों
का भी आत्मा साक्षी है पर कर्ता नहीं है १ विभु
याने सर्वका अधिष्ठानहै २ ॥ ३ एक है याने सजाती
विजा... ...गत भेद से रहित है ४ मुक्तहै अर्थात्

माया और मायाके कार्य देहादिकों से भी रहितहै ५ चित्है याने चैतन्य स्वरूप है ६ अक्रिय है याने चेष्टा से रहित है परिच्छिन्न में चेष्टा याने क्रिया होती है व्यापकमें नहीं होती है ७ असंगहै याने सम्पूर्ण सम्बन्धों से रहित है ८ निःस्पृहहै अर्थात् विषयों की अभिलाषासे भी रहित है ९ शान्त है याने प्रवृत्ति निवृत्ति देहादि अन्तःकरण के धर्मों से रहित है १० इनदश हेतुओं करके आत्मा वास्तव से संसारी नहीं होसक्ता है ॥ असंगो ह्ययं पुरुषः ॥ यह आत्मा असंगहै ॥ न जायतेम्रियतेवाकदाचित् ॥ आत्मा वास्तवसे न जन्मता है न मरता है यह गीतावाक्य और अनेक श्रुतिवाक्य भी आत्मा की असंगता में प्रमाणहैं इसी से नैयायिकादिक मिथ्यावादी साबित होतेहैं ॥ १२ ॥ मैं परिच्छिन्न हूं मेरे यह देहादिक हैं मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं इसतरह के जो अन्तःकरण के धर्मों को अध्यास कर के आत्मा में जीवोंने मानरक्खा है तिस अध्यासरूपी भ्रमकी निवृत्तितो एकबार असंग आत्मा के उपदेश करने से नहीं होती है इसीपर व्यास भगवान् ने सूत्रकहाहै ॥ आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ज्ञानकी स्थिति के लिये श्रवण मननादिकों की आवृत्ति पुनः२ करै क्योंकि उद्दालक ने अपने पुत्र के

प्रति नवबार तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश
याहै वारंवार श्रवणादिकोंके करने से चित्तकी
विजाती भावनाका त्यागकरके सजाती भावनाव
होकर आत्माकार होजाती है इसी वास्ते जनकजी
पुनः२ आत्मज्ञान का उपदेश अष्टावक्रजी करते हैं

मूलम् ॥

कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परि-
वय ॥ आभासोहंभ्रमंमुक्त्वा भावंवा
मथान्तरम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

कूटस्थम् बोधम् अद्वैतम् आत्म-
नम् परिभावय आभासः अहम् भ्रम
मुक्त्वा भावम् बाह्यम् अथ अन्तरम्

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	इति	= ऐसे
आभासः	= आभास रूपअहंकारी जीवहूं	भ्रमम्	= भ्रमको
		अथ	= और
		बाह्यम्	= बाहर

अन्तरम् = भीतर	बोधम् = बोधरूप
भावम् = भावको	अद्वैतम् = अद्वैत
मुक्त्वा = छोड़करके	आत्मानम् = आत्मा को
त्वम् = तू	परिभावय = विचारकर
कूटस्थम् = कूटस्थ	

भावार्थ ॥

हे जनक! "मैं आभासहूं" "मैं अहंकार हूं" इसभ्रम का त्याग करके और जो बाहर के पदार्थों में ममता होरही है कि यह मेरा शरीरहै मेरे यह कान नाकादिक हैं इनसबमें॥अहं॥और॥मम॥भावना को त्याग करके और अन्तर अन्तःकरणके धर्म जो सुख दुःखादिक हैं उनमें जो तुझको अहंभावना होरही है उसको त्यागकरके आत्मा को अकर्ता कूटस्थ असंग ज्ञानस्वरूप अद्वैत व्यापक निश्चय कर ॥ १३ ॥ जनकजी प्रार्थना करते हैं कि महाराज! अनादि कालका जो देहादिकों में अभिमान होरहा है वह एकबार के उपदेश से दूर नहीं होसक्ताहै आप पुनः २ मेरेको उपदेश करिये ता कि श्रवण करके मेरा देहादि अभिमान दूरहोजावे ॥ इस प्रश्नको सुनकर अष्टावक्र जी फिर आत्मविद्या के उपदेश को करते हैं ॥

मूलम् ॥

देहाभिमानपाशेन चिरंबद्धोसिपुत्रक ॥ बोधोहंज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्त्य सुखीभव ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

देहाभिमानपाशेन चिरम् बद्धः असि पुत्रक बोधः अहम् ज्ञानखड्गेन तत् निष्कृत्त्य सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
पुत्रक	हे पुत्र
देहाभिमानपाशेन	देहके अभिमानरूपी पाशसे
चिरम्	बहुत कालका
बद्धः	बँधाहुआ
असि	तू है
अहम्	मैं
बोधः	बोधरूपहूं
इति	ऐसे
ज्ञानखड्गेन	ज्ञानरूपी तलवारसे
तत्	उसको यानी उस रस्सीको
निष्कृत्त्य	काट करके
त्वम्	तू
सुखीभव	सुखी हो

भावार्थ ॥

हे जनक! "देहोऽहं" मैं देह हूं इस प्रकार के अभिमान करके तू चिरकालसे बन्धायमान होरहाहै अर्थात् अपने को संसार बंध में डाल रहा है अब तू आत्मज्ञानरूपी खड्ग से उसका छेदन करके मैं ज्ञानस्वरूप हूं नित्यमुक्तहूं ऐसा निश्चय करके सुखी हो तेरे में बन्धन तीनोंकाल में नहीं है ॥ १४ ॥ जनक जी फिर पूंछतेहैं हे भगवन्! पतंजलिमतानु-यायी चित्तवृत्ति के निरोध रूप योगकोही बंधकी निवृत्तिकाहेतु मानते हैं सो उनका मानना ठीक है वा नहीं है ॥

मूलम् ॥

निःसंगोनिष्क्रियोसित्वं स्वप्रकाशोनिरंजनः ॥ अयमेवहितेबन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

निःसंगः निष्क्रियः असि त्वम् स्वप्रकाशः निरंजनः अयम् एव हि ते बन्धः समाधिम् अनुतिष्ठसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्	= तू	अयमएव	= यहही
निःसंगः	= संगरहित है	ते	= तेरा
निष्क्रियः	= क्रियारहित है	बन्धः	= बंधन है
स्वप्रकाशः	= स्वयंप्रकाशरूप है	हि	= जो
निरंजनः	= निर्दोष है	समाधिम्	= समाधिको
		अनुतिष्ठसि	= अनुष्ठान करता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक! तू निःसंग है याने सबके सम्बन्ध से तू रहितहै और क्रिया से भी तू रहित है सम्बन्ध से रहित और क्रिया से रहित आत्मा की प्राप्ति के लिये जो समाधिका अनुष्ठान करना है उसीका नाम बन्ध है जो स्वप्रकाश आत्माका ध्यान जड़वृत्ति को निरोध करके करता है उससे बढ़कर और कोई बन्ध नहीं है और न कोई अज्ञान है आत्मा के स्वरूपके ज्ञान से भिन्न जितना मुक्ति के लिये उपाय कहा है वह सब बन्धकाही कारण हैं ऐसे बन्धरूपही सब है ॥ १५ ॥ अब

अष्टावक्रजी जनककी विपरीतबुद्धिके दूर करने के निमित्त उपदेश करते हैं॥

मूलम्॥

त्वयाव्याप्तमिदंविश्वं त्वयिप्रोतंयथार्थतः॥ शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मागमः क्षुद्रचित्तताम्॥ १६॥

पदच्छेदः॥

त्वया व्याप्तम् इदम् विश्वम् त्वयि प्रोतम् यथार्थतः शुद्धबुद्धस्वरूपः त्वम् मागमः क्षुद्रचित्तताम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	= यह	यथार्थतः	= परमार्थ से
विश्वम्	= संसार	शुद्ध बुद्ध स्वरूपः	= शुद्ध चैतन्य स्वरूप है
त्वया	= तुझकरके		
व्याप्तम्	= व्याप्त है		
त्वयि	= तुझी में	क्षुद्रचित्तताम्	= विपरीतचित्तवृत्तिको
प्रोतम्	= परोया है		
त्वम्	= तू	मागमः	= मतप्राप्तहो

भावार्थ ॥

हे जनक! जैसे स्वर्ण करके कंकणादिक व्याप्तहैं और मृत्तिका करके जैसे घटादिक व्याप्त हैं तैसे यह साराजगत् तुझ चेतन करके व्याप्त है और जैसे मालाके सूत में दाने सब पुरोये हुये रहतेहैं तैसे यह साराजगत् तेरे चेतनरूप तागे करके पुरोये हुये हैं जैसे मिथ्या रजत शुक्तिकी सत्ता करके सत्यवत् प्रतीत होतीहै वास्तव से वह सत्य नहीं है तैसे चेतनकी सत्ता करके जगत् सत्यकी तरह प्रतीत होताहै वास्तव से जगत् सत्य नहीं है जगत् की अपनी सत्ता कुछभी नहीं है तेरे संकल्पसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है तेरे संकल्पके निवृत्त होनेसे यह जगत्भी निवृत्तहोजावैगा तू अपने शुद्धस्वरूप में स्थित हो क्षुद्रताको मत प्राप्तहो॥ मन्दालसाने भी अपने पुत्रोंको यही उपदेश करके संसार बन्धनसे छुड़ादियाथा॥ शुद्धोसिबुद्धोसि निरंजनोसि संसारमायापरिवर्जितोसि॥ संसारस्वप्न त्यजमोहनिद्रां मन्दालसावाक्यमुवाचपुत्रम् १॥ हे तात! तू शुद्ध है ज्ञानस्वरूप है मायामलसे तू रहित है तू संसाररूपी असत् माया नहीं है संसाररूपी स्वप्नः मोहरूपी निद्रा करके प्रतीत होरहा है इसको तू त्याग इसप्रकार माता के उपदेश से वे जीवन्मु-

होगये हे जनक! तू भी ऐसा विचार करके संसार में जीवन्मुक्त होकर विचर १६ ॥

मूलम् ॥

निरपेक्षोनिर्विकारोनिर्भरःशीतलाशयः ॥ अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भवचिन्मात्रवासनः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

निरपेक्षः निर्विकारः निर्भरः शीतलाशयः अगाधबुद्धिः अक्षुब्धः भव चिन्मात्रवासनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्	= तू	शीतलाशयः	= शान्ति और मुक्तिका स्थान है
निरपेक्षः	= अपेक्षा रहितहै		
निर्विकारः	= विकाररहितहै	अगाधबुद्धिः	= अगाध चैतन्य बुद्धिरूप है
निर्भरः	= चिद्घन रूपहै		

अक्षुब्धः = { अविद्या केक्षोभ सेरहित है | चिन्मात्र वासनः } = चैतन्यमात्रविषे भव = निष्ठावाला हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहतेहैं हे जनक ! तू निरपेक्षहो याने षडूर्मियों से रहित हो ॥ भूख १ प्यास २ शोक ३ मोह ४ जन्म ५ मरण ६ इन छहोंका नाम षट्ऊर्मि है इनमें से भूख और प्यास ये दो प्राण के धर्म हैं शोक मोह ये दो मनके धर्म हैं जन्म और मरण ये दो सूक्ष्मदेह के धर्म हैं तुझ आत्मा के धर्म ये कोई नहीं हैं ॥ जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति ॥ जो उत्पन्न होता है, स्थित है, बढ़ता है, परिणाम को प्राप्त होता है, क्षण २ में क्षीण होताहै, और नाश होजाताहै, ये षट्भावविकार स्थूल देहके धर्म हैं तुझ आत्माके धर्म नहीं हैं, क्योंकि तू सूक्ष्मदेह और स्थूलदेह से परे है और इन दोनों का द्रष्टाहै इसीसे तू निर्विकार है सच्चिदानन्द रूप है शीतल है याने सुखरूप है अगाधबुद्धिवाला है अक्षुब्धहै अर्थात् अविद्याकृत क्षोभ से रहित है तू

क्रियासे रहित होकर चैतन्य स्वरूप में निष्ठावाला हो॥ १७॥ अष्टावक्रजीने उत्थानका दूसरे श्लोक में जनक जीको मोक्षका उपाय इस प्रकार उपदेशकिया कि विषयों को तू विषके तुल्य त्यागकर और सत्यको तू अमृत के तुल्य पानकर परन्तु विषयों की विषकी तुल्यता में और सत्यरूप आत्मा की अमृतकी तुल्यता में कोईभी हेतु नहीं कहा अब आगे उसको कहते हैं॥

मूलम्॥

साकारमनृतंविद्धिनिराकारंतुनिश्चलम्॥ एतत्तत्त्वोपदेशेन नपुनर्भवसम्भवः॥ १८॥

पदच्छेदः॥

साकारम् अनृतम् विद्धि निराकारम् तु निश्चलम् एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनः भवसम्भवः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
साकारम् =	शरीरादिकोंको	अनृतम् =	मिथ्या
		विद्धि =	जान

निराकारम् = निराकार आत्मतत्त्वको | एतत्तत्त्वोपदेशेन = इस यथार्थ उपदेशसे
निश्चलम् = निश्चल नित्य | पुनः = फिर
विद्धि = जान | भवसम्भवः = संसारविषे उत्पत्ति
 | न = नहीं
 | भवति = होतीहै

भावार्थ ॥

हे जनक ! साकार जो शरीरादिक हैं इनको तू मिथ्याजान जो मिथ्या होकर बन्धका हेतु होता है वही विषके तुल्य त्यागने योग्य भी होताहै इसीमें एक दृष्टान्त कहते हैं ॥ एक बनिये के घरमें लड़का नहीं होताथा एकदिन रात्रीके समय वह पलंगपर अपनी स्त्री के साथ सोया था उसकी स्त्रीने उस बनियेसे कहा यदि परमेश्वर हमको एकलड़का देदेवै तब उसको कहांपर सुलावैंगे बनिया थोड़ासा पीछे हटा और कहा कि उस लड़केको यहां बीचमें सुलावैंगे फिर स्त्री ने कहा यदि एक और होजावै तब उसको कहांपर सुलावैंगे वह थोड़ासा और पीछे हटकर कहनेलगा उसकोभी बीचमें सुलालेवैंगे फिर स्त्रीने कहा यदि एक

और होजावैं तब उसको कहां सुलावैंगे फिर पीछे हटकर यह कहताहीथा कि इतने में नीचे गिरपड़ा और उसकी टांग टूटगई हाय हाय करके रोनेलगा तब इधर उधर से पड़ोसके लोग आकर पूछने लगे क्याहुआ कैसे टांगतेरी टूटगई तब बनियेंने कहा विना हुये मिथ्या लड़के ने मेरीटांग तोड़दी यदि सच्चा होता तब न जाने क्या अनर्थ करता तैसेही साकार जितने स्त्रीपुत्रादिक विषय हैं वे सब दुःखके हेतु हैं ये विषके तुल्य त्यागने योग्य हैं॥ और हे जनक! जो निराकार आत्मतत्त्व है वह निश्चल है नित्य है श्रुति भी ऐसी कहती है "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" आत्मा नित्य विज्ञान आनन्दस्वरूप है उसी आत्मतत्त्व में स्थिरता को पाकर हे जनक! फिर तू जन्ममरणरूपी संसारको नहीं प्राप्त होवेगा॥ १८॥ अब अष्टावक्र जी वर्णाश्रमी धर्म्मवाले स्थूलशरीरसे और धर्म्माऽधर्म्मरूपी संस्कारवाले लिंगशरीरसे विलक्षण परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप आत्माको दृष्टान्त के सहित कहते हैं॥

मूलम्॥

यथैवादर्शमध्यस्थेरूपेंतः परितस्तु

सः ॥ तथैवास्मिञ्छरीरेन्तःपरितःपरमेश्वरः ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा एव आदर्शमध्यस्थे रूपे अन्तः परितः तु सः तथा एव अस्मिन् शरीरे अन्तः परितः परमेश्वरः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	= जैसे	भासते	= भासता है
एव	= निश्चयकरके	तथाएव	= वैसाही
आदर्शमध्यस्थे	= दर्पणमध्यस्थितहुये	अस्मिन् शरीरे	= इसशरीरमें
रूपे	= प्रतिबिम्बमें	अन्तः परितः	= भीतर और बाहरसे
सः	= वह यानी शरीर	परमेश्वरः	= परमेश्वर भासताहै

भावार्थ ॥

हे जनक ! जैसे दर्प्पण में प्रतिबिम्बित जो शरीरादिक हैं उनके अन्तर मध्य बाहर चारोंतरफ़ दर्प्पण

व्याप करके वर्तता है याने वह प्रतिबिम्ब अध्यस्त है दर्पण में देखनेमात्रही है स्वरूपसे सत्य नहीं है तैसे ही अपने आत्मा में अध्यस्त जो शरीरहै उसके भीतर बाहर मध्य सर्वओर चेतनआत्माही व्याप्यकरके स्थित है हे राजन्! कल्पित पदार्थ की अधिष्ठान से भिन्न अपनी सत्ता कुछभी नहीं होती है अधिष्ठानकी सत्ता करके वह सत्यवत् प्रतीत होताहै जैसे शुक्ति में रजत दर्पण में प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है तैसे शरीरादिक भी आत्मा में उसी की सत्ताकरके सत्यकी नाईं प्रतीत होते हैं वास्तव से येभी सत्य नहीं हैं मिथ्या हैं॥१९॥ दर्पण के दृष्टांत से कदाचित् जनकको ऐसा भ्रम हो जावै कि जैसे दर्पण परिच्छिन्न है तैसे ही आत्माभी परिच्छिन्न होगा इस भ्रम के दूरकरने के लिये ऋषि दूसरा दृष्टान्त देते हैं॥

मूलम्॥

एकंसर्वगतंव्योम बहिरन्तर्यथाघटे॥ नित्यंनिरन्तरंब्रह्म सर्वभूतगणेतथा॥२०॥

पदच्छेदः॥

एकम् सर्वगतम् व्योम बहिः अ-

न्तः यथा घटे नित्यम् निरन्तरम् ब्र- ह्म सर्वभूतगणे तथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	जैसे	अस्ति	स्थितहै
सर्वगतम्	सर्वगत	तथा	तैसेही
एकम्	एक	नित्यम्	नित्य
व्योम	आकाश	निरन्तरम्	निरंतर
बहिः	बाहर	ब्रह्म	ब्रह्म
अन्तः	भीतर	सर्वभूत गणे	सबभूतोंके शरीरविषे
घटे	घटमें	अस्ति	स्थितहै

भावार्थ ॥

जैसे सर्वगत एकही आकाश घटपटादिकों में बाहर भीतर मध्यसे व्यापकहै तैसेही नित्यअविनाशी आत्माभी संपूर्ण भूतोंके गणों में बाहर भीतर मध्यसे व्यापकहै ॥" एपते आत्मासर्वस्यान्तर इतिश्रुतेः "यह तेराही आत्मा सर्वके अंतर व्यापक है ऐसा जानकर हे जनक! तू सुखपूर्वक विचर ॥ २० ॥ इति श्रीअष्टा- वक्रगीतायांप्रथमंप्रकरणंसमाप्तम् ॥

दूसरा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अहोनिरञ्जनःशान्तो बोधोहंप्रकृतेःपरः ॥ एतावन्तमहंकालं मोहेनैव विडंबितः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो निरञ्जनः शान्तः बोधः अहम् प्रकृतेः परः एतावन्तम् अहम् कालम् मोहेन एव विडंबितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	परः	= परे हूं
निरञ्जनः	= निर्दोषहूं	अहो	= आश्चर्य है कि
शान्तः	= शांतहूं	अहम्	= मैं
बोधः	= बोधरूप हूं	एतावन्तम्	= इतने
प्रकृतेः	= प्रकृति से	कालम्	= कालपर्यन्त

मोहेन = अज्ञान करके	एव = निःसंदेह
	विडंबितः = ठगागयाहूं

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी के उपदेश से जनकजी को आत्माका साक्षात्कार जब उदय हुआ तब जनकजी अपने चेतन स्वरूप आत्माको साक्षात्कार के अपने अनुभव को प्रकट करतेहुये बाधितानुवृत्ति से पूर्व प्रतीत हुये मोहके स्मरण को बड़े आश्चर्य के साथ प्रकट करते हैं॥ मैं निरंजन याने संपूर्ण उपाधियों से रहित होकर शांतस्वरूप होकर अर्थात् संपूर्ण विकारों से रहित होकर और प्रकृति जो मायारूपी अंधकार है उससे भी परेहोकर और बोधस्वरूप याने ज्ञानस्वरूप होकर इतने कालतक देह और आत्माके अविवेक करके दुःखी होता रहा आज हे गुरो! आपकी कृपाकरके मैं आत्मानंद अनुभवको प्राप्तहुआहूं॥ १॥

मूलम् ॥

यथाप्रकाशयाम्येको देहमेनंतथा जगत् ॥ अतोममजगत्सर्वमथवानच किंचन ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा प्रकाशयामि एकः देहम् एनम् तथा जगत् अतः मम जगत् सर्वम् अथवा न च किञ्चन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	= जैसे	प्रकाशयामि	= प्रकाशकरताहूं
एनम्	= इस	अतः	= इसलिये
देहम्	= देह को	मम	= मेरा
एकः	= अकेलाही	सर्वम्	= सम्पूर्ण
प्रकाशयामि	= मैं प्रकाश करता हूं	जगत्	= संसारहै
तथा	= तैसेही	अथवा	= या
जगत्	= संसार को भी	+ मम	= मेरा
		किञ्चन	= कुछ भी
		न	= नहीं है

भावार्थ ॥

पूर्ववाक्य करके जनकजीने मोहकी महिमाको कहा अब इसवाक्यकरके गुरुकी कृपासे जो उनको देह और आत्माका विवेक ज्ञानहुआ है उसको सहित युक्तिके कथनकरतेहैं ॥ मैं एकही सारेजगत्को प्रकाश

करताहूं और इस स्थूलदेहका भी प्रकाशकहूं॥यह देह अनात्माहै यानी जड़होने से अप्रकाश जगत्की तरह है॥जड़देह और चेतन आत्मा का आध्यासिकसम्बन्ध है अर्थात् कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है सत्य और मिथ्याका वास्तव सम्बन्ध न होने से इन दोनों का पारमार्थिक सम्बन्ध नहीं है जैसे शुक्ति रजतका कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है तैसे देह आत्माकाभी कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है जैसे शुक्तिकी सत्ताकरके रजतभी सत्यवत् भान होती हैं तैसे आत्माकी सत्ता करके देह भी सत्यवत् भान होता है वास्तवसे देह मिथ्या है इसी तरह आत्मा की सत्ता करके ही सारा जगत् सत्यवत् प्रतीत होता है आत्मा से पृथक् जगत् मिथ्या है यानी कभी हुआ नहीं है इसी वार्त्ता को पञ्चदशीकार ने भी कहा है ॥ अस्तिभातिप्रियंरूपं नामचेत्यंशपञ्चकम् ॥ आद्यंत्रयंब्रह्मरूपं जगद्रूपंततोद्वयम्॥ १ ॥ "अस्ति" है "भाति" भान होता है "प्रियम्" प्यारा है रूप और नाम ये पांच अंश सारे जगत् में व्याप्य करके रहते हैं पांचों में से अस्ति भाति प्रिय यह तीन अंश ब्रह्म के हैं सो तीनों अंश सारे जगत्में प्रवेशहोकर स्थितहैं नाम और रूप ये दो अंश जड़ जगत् के हैं यदि नाम रूप को

निकाल दिया जावै तब जगत्की कोई वस्तुभी सत्य नहीं रहसक्ती है नाम रूप दोनों नाशी हैं क्योंकि एक हालत में नहीं रहते हैं इसी से सारा जगत् मिथ्या साबित होता है परब्रह्मकी अस्ति भाति प्रिय अंशों करके ही सत्यवत् प्रतीत होता है यदि इन तीनों अंशों की हरएक पदार्थ से पृथक् कर दिया जाय तब जगत् का कोई भी पदार्थ सत्यवत् भान नहीं होसक्ता है इसी से सिद्ध होता है कि जगत् तीनों कालमें मिथ्याहै और ब्रह्मही तीनों काल में सत्य है इस युक्तिसहित अनुभव करके जनक जी कहते हैं जितना दृश्य जगत् है सो मेरेमें ही अध्यस्त याने कल्पित है परमार्थदृष्टि से कोई भी देहादिक मेरेमें नहीं हैं जैसे आकाश में नीलता मरुस्थल में जल बन्ध्या का पुत्र शशेके शृङ्ग ये सब तीनों काल में नहीं हैं तैसेही जगत् भी वास्तव से तीनों काल में नहीं है और न कोई मेरे देहादिक हैं मैं माया और तिसके कार्य से परे ज्ञानस्वरूप हूं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

सशरीरमहोविश्वं परित्यज्यमया

धुना ॥ कुतश्चितकौशलादेव परमा त्माविलोक्यते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

सशरीरम् अहो विश्वम् परित्यज्य मया अधुना कुतश्चित् कौशलात् एव परमात्मा विलोक्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहो	आश्चर्य्य है कि	कुतश्चित्	कहीं
सशरीरम्	शरीर सहित	कौशलात्	कुशलता से यानेउपदेश से
विश्वम्	विश्व को	एव	ही
परित्यज्य	त्यागकरके याने अपने से पृथक् समझकर	मया	मुझकरके
		अधुना	अब
		परमात्मा	ईश्वर
		विलोक्यते	देखा जाताहै

भावार्थ ॥

जनक जी फिर भी कहते हैं कि लिंगशरीर और कारणशरीर के सहित सम्पूर्ण विश्व जो विचार करके शास्त्र और आचार्य्य के उपदेश करके और चातुर्य्य-ता करके आत्मा से पृथक् अपनी सत्ता से शून्य आत्माकी सत्ता करके सत्यवत् भान होता था उस को मैं अब मिथ्या जानकर अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा का अवलोकन कररहाहूं ॥ आत्मज्ञान से अति-रिक्त और कोई भी आत्मा के अवलोकन का उपाय नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

यथानतोयतोभिन्नास्तरङ्गाःफेनबुद्बुदाः ॥ आत्मनोनतथाभिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा न तोयतः भिन्नाः तरङ्गाः फेनबुद्बुदाः आत्मनः न तथा भिन्न-म् विश्वम् आत्मविनिर्गतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	= जैसे	आत्मविनिर्गतम्	= आत्मविशिष्ट
तोयतः	= जल से	विश्वम्	= विश्व
तरङ्गाः	= तरङ्ग	आत्मनः	= आत्मासे
फेनबुद्बुदाः	= फेन और बुल्ला	भिन्नम् न	= भिन्न नहीं है
भिन्नाः	= भिन्न		
न	= नहीं		
तथा	= वैसाही		

भावार्थ ॥

(दृष्टान्त) जैसे तरंग और फेन जल से भिन्न नहीं हैं क्योंकि जलही उन सबका उपादान कारणहै तैसेही आत्मा से उत्पन्न जो विश्व है अर्थात् आत्मा ही उपादान कारण है जिस का ऐसा जो जगत् है वह भी आत्मा से भिन्न नहीं है जैसे तरंग बुद्बुदादि में जल अनुगत है तैसे स्वच्छ चैतन्य भी सम्पूर्ण विश्व में अनुगत है जैसे कल्पित सर्प्प अपने अधिष्ठानभूत रज्जु से भिन्न नहीं है किन्तु रज्जुरूपही है तैसे कल्पित जगत् भी अधिष्ठानभूत चेतन से भिन्न नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

तन्तुमात्रोभवेदेव पटोयद्वद्विचारतः ॥ आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वंविचारितम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

तन्तुमात्रः भवेत् एव पटः यद्वत् विचारतः आत्मतन्मात्रम् एव इदम् तद्वत् विश्वम् विचारितम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यद्वत्	= जैसे	इदम्	= यह
पटः	= कपड़ा	विश्वम्	= संसार
तन्तुमात्रः	= तंतुमात्र	आत्मतन्मात्रम्	= आत्मसत्तामात्र
एव	= ही	एव	= ही
भवेत्	= होता है	विचारितम्	= प्रतीत होता है
तद्वत्	= वैसाही		
विचारतः	= विचारसे		

भावार्थ ॥

जैसे स्थूल दृष्टि करके तन्तुओं से विलक्षण पट

प्रतीत होताभी है परन्तु विचारकर देखने से तन्तुरूपही पट हैं तन्तुओं से भिन्न पट कोई वस्तु नहीं है तैसेही स्थूलदृष्टि कर देखने से ब्रह्मसे विलक्षण जगत् प्रतीत होता है परन्तु युक्ति और विचार से आत्मरूप ही जगत् है जैसे तन्तु अपनी सत्ता करके पट में अनुगत है तैसेही आत्मा भी अपनी सत्ता करके अधिष्ठान भूतरूप होकर सारे जगत् में अनुगत है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

यथैवेक्षुरसे क्लृप्ता तेन व्याप्तैव शर्करा ॥ तथा विश्वं मयि क्लृप्तं मया व्याप्तं निरन्तरम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा एव इक्षुरसे क्लृप्ता तेन व्याप्ता एव शर्करा तथा विश्वम् मयि क्लृप्तम् मया व्याप्तम् निरन्तरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	= जैसे	इक्षुरसे	= इक्षु के रस में
एव	= निश्चय करके	क्लृप्ता	= अध्यस्तहुई

शर्करा = शक्कर	कृतम् = अध्यस्त हुआ
तेन = उसीकरके	विश्वम् = संसार
व्याप्ताएव = व्याप्त है	मया = मुझ करके
तथाएव = वैसाही	निरन्तरम् = सदा
मयि = मेरे में	व्याप्तम् = व्याप्त है

भावार्थ ॥

(आत्मा करकेही सारा जगत् व्याप्त है इस बिषे जनकजी दृष्टान्त कहते हैं) ॥ जैसे इक्षु जो गन्ना है सो रस में अध्यस्त है और तिसी मधुररस करके गन्ना भी व्याप्त है तैसेही मेरे नित्य आनन्दस्वरूप में यह सारा जगत् अध्यस्त है और मेरे नित्य आनन्दरूप करके बाहर और भीतर से व्याप्त भी है इसवास्ते यह विश्व भी आत्मस्वरूप ही है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

आत्माऽज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्नभासते ॥ रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासतेनहि ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्माऽज्ञानात् जगत् भाति आत्मज्ञानात् न भासते रज्ज्वज्ञानात् अहिः भाति तज्ज्ञानात् भासते न हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्माऽज्ञानात्	= आत्माके अज्ञानसे	रज्ज्वज्ञानात्	= रज्जु के अज्ञान से
जगत्	= संसार	अहिः	= सर्प
भाति	= भासताहै	भाति	= भासताहै
आत्मज्ञानात्	= आत्मा के ज्ञानसे	च	= और
नभासते	= नहीं भासता है	तज्ज्ञानात्	= तिस के ज्ञान से
यथा	= जैसे	नहि	= नहीं
		भासते	= भासताहै

भावार्थ ॥

आत्मा के स्वरूप के अज्ञान करके जगत् सत्य प्रतीत होता है और अधिष्ठान स्वरूप आत्मा के ज्ञान करके असत् प्रतीत होता है. (इस से लोक प्र-

सिद्ध दृष्टान्त कहते हैं) ॥ रज्जु के स्वरूप के अज्ञान से जैसे सर्प्प प्रतीत होता है और रज्जु के स्वरूप के ज्ञान से सर्प्प उस में प्रतीत नहीं होता है तैसेही आत्मा के स्वरूप के अज्ञान करके जगत् प्रतीत होता है और आत्मा के स्वरूप के ज्ञान करके जगत् प्रतीत नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

प्रकाशोमेनिजंरूपं नातिरिक्तोस्म्यहन्ततः ॥ यदाप्रकाशतेविश्वंतदाहंभासएवहि ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकाशः मे निजम् रूपम् न अतिरिक्तः अस्मि अहम् ततः यदा प्रकाशते विश्वम् तदा अहम्भासः एव हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रकाशः	प्रकाश	निजम्	निज
मे	मेरा	रूपम्	रूपहै

अहम् = मैं	तदा = तब
ततः = उस से	तत = वह
अतिरिक्तः = अलग	अहंभासः = मेरेप्रकाशसे
नअस्मि = नहीं हूं	एवहि = ही
यदा = जब	+प्रकाशते = प्रकाशता है
विश्वम् = संसार	
प्रकाशते = प्रकाशता है	

भावार्थ॥

प्रश्न॥ आत्मा के स्वरूप का जबतक अज्ञान बना है तबतक आत्मा के प्रकाशका भी अभाव ही रहता है तब फिर आत्मा के स्वरूप के प्रकाश का अभाव होने से जगत् का भान कैसे होसक्ता है॥ उत्तर॥ जनक जी कहते हैं मेरा जो प्रकाश याने नित्यज्ञान है सो मेरा स्वाभाविक स्वरूप है मैं उस प्रकाश से भिन्न नहीं हूं इसी वास्ते जिस काल में मेरेको विश्व प्रतीत होता है तब आत्मा के प्रकाश से ही प्रतीत होता है॥ प्रश्न॥ यदि स्वरूप भूतचेतन ही प्रकाशक है तब फिर अज्ञान कैसे रहसक्ता है क्योंकि ज्ञान और अज्ञान दोनों परस्पर

विरोधी हैं तम प्रकाश की तरह ॥ उत्तर ॥ दो प्रकारका चेतन है एक सामान्यचेतन है दूसरा विशेषचेतन है विशेषचेतन अज्ञान का विरोधीहै याने बाधक है सामान्यचेतन अज्ञान का विरोधी नहीं है किन्तु साधक है अर्थात् अज्ञान को सिद्ध करता है जैसे दो प्रकार की अग्नि है एक सामान्य अग्नि है दूसरी विशेष अग्नि है सामान्य अग्नि तो सब काष्ठों में व्यापक है परन्तु काष्ठों के स्वरूप को जलाती नहीं है किन्तु बनाती है क्योंकि जितने जगत् के पदार्थ हैं सब भूतों के पञ्चीकरण से बने हैं जैसे लकड़ी जो पंचतत्त्वों से बनी है उसको सामान्य तेज याने अग्नि जो उसके भीतर है जलाती नहीं है पर जब दो लकड़ियों के परस्पर रगड़से जो विशेष अग्निरूप तेज उस में से उत्पन्न होताहै वह तुरन्त उस लकड़ीको जला देताहै क्योंकि वह उस का विरोधी है तैसे सामान्यचेतन जो सर्व्वत्र व्यापक है वह उस अज्ञान का विरोधी याने बाधक नहीं है बल्कि अपने सत्ता करके उस का साधक है और आत्माकारवृत्त्यवच्छिन्न विशेषचेतन है वही उस अज्ञान का बाधक याने नाशक है यदि स्वरूप चेतन अज्ञान का विरोधी होवै तब जड़ की

सिद्धि भी न होवैगी यदि आत्मा के प्रकाश का भी अभाव माना जावै तब जगदान्ध्य प्रसंग होजावैगा इस वास्ते आत्मा के स्वरूप प्रकाश करकेही जगत् भी प्रकाशमान होरहा है स्वतः जगत् मिथ्या है॥ ८ ॥

मूलम्॥

अहोविकल्पितंविश्वमज्ञानान्मयि भासते ॥ रूप्यंशुक्तौफणीरज्जौवारि सूर्य्यकरेयथा ॥ ९ ॥

पदच्छेदः॥

अहो विकल्पितम् विश्वम् अज्ञानात् मयि भासते रूप्यम् शुक्तौ फणी रज्जौ वारि सूर्य्यकरे यथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहो	= आश्चर्य्य है कि	विकल्पितम्.	= कल्पित

विश्वम् = संसार	रूप्यम् = चांदी
अज्ञानात् = अज्ञान से	रज्जौ = रस्सी में
मयि = मेरे में	फणी = सर्प्प
ईदृशम् = ऐसा	सूर्यकरे = सूर्य के कि-रणों में
भासते = भासता है	वारि = जल
यथा = जैसे	भासते = भासता है
शुक्तौ = शुक्ति में	

भावार्थ ॥

जनक जी कहते हैं जैसे शुक्ति के अज्ञान से शुक्ति में रजत असत् प्रतीत होती है तैसेही अज्ञान करके मुझ स्वप्रकाश आत्मा में असत् जगत् प्रतीत होरहा है यही बड़ाभारी आश्चर्य्य है ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

मत्तोविनिर्ग्गतंविश्वं मय्येवलयमेष्यति ॥ मृदिकुम्भोजलेवीचिःकनकेकटकंयथा ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

मत्तः विनिर्गतम् विश्वम् मयि एव

लयम् एष्यति मृदि कुम्भः जले वीचिः कनके कटकम् यथा॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मत्तः	मुझ से	यथा	जैसे
विनिर्गतम्	उत्पन्न हुआ	मृदि	मिट्टी में
इदम्	यह	कुम्भः	घड़ा
विश्वम्	संसार	जले	जल में
मयि	मेरे में	वीचिः	लहर
लयम्	लय को	कनके	स्वर्ण में
एष्यति	प्राप्तहोगा	कटकम्	भूषण
		लयम् सन्ति	लय हैं

भावार्थ॥

जैसे घट मृत्तिकाकार्य्य है याने मृत्तिकासे ही उत्पन्न होता है और फिर फूटकर मृत्तिकामें ही लय होजाता है तैसेही जगत् भी प्रकृति का कार्य्य है प्रकृतिसे ही उत्पन्न होता है और प्रकृतिमें ही लय होजाता है चेतन आत्मा से न जगत् उत्पन्न होता है और न उस में लय होता है क्योंकि जगत् जड़ है आत्मा चेतन है चेतन से जड़ की उत्पत्ति च-

नती नहीं है ऐसी सांख्यी की शङ्का है॥ उस के उत्तर को कहते हैं॥ सांख्यी परिणामवादि है पूर्व्व-वाली अवस्थासे अवस्थान्तरताको प्राप्त होनेका नाम ही परिणाम है जैसे दूध का परिणाम दधि है मृ-त्तिका का घट है स्वर्ण का कुण्डल है तैसे प्र-कृतिका परिणाम जगत् है ऐसे सांख्यी मानता है और नैयायिक आरम्भवादि है अन्यवस्तु से अन्यवस्तु की उत्पत्ति का नाम आरम्भवाद है जैसे अन्य त-न्तु से अन्य पटकी उत्पत्ति होती है तैसे अन्य परमाणुओं से अन्य रूप जगत्की भी उत्पत्ति होती है और वेदान्ती का विवर्त्तवाद है जो एकही वस्तु अ-पनी पूर्व्ववाली अवस्था से अन्य अवस्था करके प्र-तीत होवै उसी का नाम विवर्त्त है जैसे रज्जु का वि-वर्त्त सर्प्प है वह रज्जुही सर्प्परूप करके प्रतीत होती है यदि जगत् ब्रह्म का परिणाम माना जावै तब तो दोष आवै जो चेतन से जड़ कैसे उत्पन्न होता है और कैसे जगत् चेतन में लय होजाता है यह सब दोष वेदान्तीके मत में नहीं आते हैं क्योंकि जैसे रज्जु के अज्ञान से रज्जु सर्प्परूप प्रतीति होती है और रज्जु ज्ञान करके उस सर्प्पकी निवृत्ति होजाती है तैसे ब्रह्म आत्मा के स्वरूप के अज्ञान से जगत् की प्रतीति

होती है आत्मा के स्वरूप के ज्ञान करके जगत् की निवृत्ति होजाती है ॥ सांख्यी और नैयायिक के मत में अनेक दोष पड़ते हैं एक तो वेदमें परिणामवाद और आरम्भवाद कहीं भी नहीं लिखा है उनका मत वेदविरुद्ध है दूसरी युक्तियों से भी परिणामवाद और आरम्भवाद सिद्ध नहीं होताहै क्योंकि घट मृत्तिकाका परिणाम नहीं है न स्वर्णका परिणाम कुण्डल होसक्ते हैं उत्पत्तिकाल में भी घट मृत्तिका रूपही है गोलाकार उस का रूप और घट यह नाम दोनों कल्पित हैं यदि घट से मृत्तिका निकाल दीजावै तब घट का कहीं पता नहीं लगसक्ता है घट मिथ्या है इसी तरह स्वर्ण के कुण्डल भी मिथ्या हैं घट और कुण्डल भी मृत्तिका का विवर्त्त ही है क्यों मृत्तिकाही और स्वर्ण ही अन्यरूप से घट और कुण्डल प्रतीत होरहे हैं ॥ सो व्यवर्त्तवादही ठीक है इसी तात्पर्य्य को लेकर जनकजी कहते हैं यह सारा जगत् मेरेसे ही उत्पन्न होता है और फिर मेरेमें ही लय होजाता है जैसे मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है और फिर मृत्तिका में ही लय होजाता है ॥ प्रश्न ॥ इस में कोई वेदवाक्यभी प्रमाण है ॥ उत्तर ॥ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसं-

विशन्ति ॥ इति श्रुतेः ॥ जिस आत्माब्रह्म से ये सब भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं जिस ब्रह्मकी सत्ता करके उत्पन्न हुये जीते हैं फिर मरकरके सब जिसमें लय होजाते हैं उसी को तुम अपना आत्मा जानो ॥ यह वेदवाक्य भी प्रमाण है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

अहो अहन्नमोमह्यं विनाशोयस्य नास्तिमे ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंतंजगन्नाशेपितिष्ठतः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् विनाशः यस्य न अस्ति मे ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यंतम् जगन्नाशे अपि तिष्ठतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तम् =	ब्रह्मा से लेकर तृण पर्य्यन्त	जगन्नाशे =	जगत्के नाशहोने पर

अपि = भी	+अतःएव = इसलिये
यस्यमे = जिसमेरे	अहम् = मैं
तिष्ठतः = होते हुये का	अहो = आश्चर्य्य रूपहूं
विनाशः = नाश	मह्यम् = मेरे लिये
नअस्ति = नहीं है	नमः = नमस्कार है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानोगे तब वह विकारी होजावैगा और विकारी होनेसे नाशी भी होजावैगा ॥ उत्तर ॥ ब्रह्म विकारी और नाशी तब होवै जब हम जगत् को ब्रह्म का परिणामि उपादान कारण मानैं सोतो नहीं है किन्तु जगत् को हम ब्रह्म का विवर्त्त मानते हैं इस वास्ते विकारी और नाशी ब्रह्म कदापि नहीं होसक्ता है॥ जनक जी कहते हैं मैं आश्चर्य्यरूप हौं क्योंकि सारे जगत्का उपादानकारण होने परभी मेरा नाश कदापि नहीं होता है स्वर्णादिकों की नाईं विकारता भी मेरे में नहीं है मैं अविकारी हूं जगत् मेरा विवर्त्त हैं इसी कारण वह विवर्त्त का अधिष्ठानरूप है ॥ उपादान

की सत्ता से कार्य्य की सत्ता विषम होना इसी का नाम विवर्त्त है ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है और जगत् की प्रतिभासिक सत्ता है ब्रह्म तीनों काल में नित्य है जगत् तीनों काल में अनित्य है किन्तु केवल प्रतीतमात्रही है इस वास्ते जगत् ब्रह्म का विवर्त्त है जगत् की उत्पत्ति आदिकों के होने से ब्रह्म का एक रोवां भी नहीं विगड़ता है याने ब्रह्म की किञ्चिन्मात्र भी हानि नहीं होती है ब्रह्मा से लेकर चींटीपर्य्यन्त जगत् के नाश होने परभी ब्रह्म ज्योंका त्यों एकरस रहता है सोई मेरा पारमार्थिक स्वरूप है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

अहो अहन्नमोमह्यमेकोहं देहवानपि ॥ क्वचिन्नगन्तानागन्ताव्याप्यविश्वमवस्थितः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् एकः अहम् देहवान् अपि क्वचित् न ग-

न्ता न आगन्ता व्याप्य विश्वम् अ-
वस्थितः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	मैं	एकः	अद्वैतहूं
अहो	आश्चर्य रूप हूं	न क्वचित्	न कहीं
मह्यम्	मेरे लिये	गन्ता	जानेवाला हूं
नमः	नमस्कार है	न क्वचित्	न कहीं
अहम्	मैं	आगन्ता	आनेवालाहूं
देहवान्	देहधारीहोताहुआ	विश्वम्	संसारको
अपि	भी	व्याप्य	आच्छादित करके
		अवस्थितः	स्थितहूं

भावार्थ॥

प्रश्न॥ आत्मा नाना प्रतीत होते हैं प्रत्येक देह में आत्मा सुख दुःखादिकवाला जुदाही प्रतीत होताहै यदि आत्मा एक होवै तब एक के सुखी होने से सब को सुखी होना चाहिये एक के दुःखी होने से सब को दुःखी होना चाहिये एक के चलने से

सब का चलना और एकके बैठनें से सबका बैठना होना चांहिये ॥ उत्तर ॥ जनक जी कहते हैं बड़ा आश्चर्य्य है मेरा आत्मा एकही है तथापि नाना देह रूपी उपाधियों के भेद करके नाना आत्मा प्रतीत होरहा है जैसे एकही जल नाना घटरूपी उपाधियों में नाना रूपवाला प्रतीत होता है जैसे एकही सूर्य्य का प्रतिबिम्ब नाना जलोपाधियों में हिलता चलता प्रतीत होता और जैसे एकही आकाश नाना घटमठादिक उपाधियों में क्रिया आदिकवाला प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में वे क्रिया आदिक सब उपाधियोंके धर्म्म हैं आकाश के नहीं हैं तैसे सुख दुःख गमनागमनादिक भी सब देहादि उपाधियों के धर्म्म हैं आत्मा के नहीं हैं इसी से एकही आत्मा गमनादिकों से रहित व्यापक होकर स्थित है ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

अहोअहंनमोमह्यं दक्षोनास्तीह मत्समः ॥ असंस्पृश्यशरीरेण येनविश्वंचिरंधृतम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् दक्षः न

अस्ति इह मत्समः असंस्पृश्य शरीरेण येन विश्वम् चिरम् धृतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	शरीरेण	= शरीरसे
अहो	= आश्चर्य्य रूपहूं	असंस्पृश्य	= पृथक्
नमः	= नमस्कार है	मया	= मुझ करके
मह्यम्	= मुझको	+इदम्	= यह
इह	= इस संसारमें	चिरम्	= चिरकाल पर्य्यन्त
मत्समः	= मेरेतुल्य	विश्वम्	= विश्व
दक्षः	= चतुर	धृतम्	= धारणकिया गया है
न अस्ति	= नहीं है कोई		
येन	= क्योंकि		

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ असंग आत्मा का शरीरादिकों के साथ संसर्ग कैसे होसक्ता है और जगत् को कैसे धारण कर सक्ता है ॥ उत्तर ॥ जनकजी कहते हैं यही तो

बड़ा आश्चर्य है जो मैं असंग होकरके भी शरीरादिकों को चेष्टा कराता हूं जैसे चुम्बक पत्थर आप क्रिया से रहित भी है तथापि लोहे को चेष्टा कराताहै जैसे उस में एक विलक्षण शक्ति है तैसे आत्मा में भी एक विलक्षण शक्ति है शरीरादिकों के अन्तर असंग स्थित है पर क्रियारहितहै शरीर इन्द्रियादिक सब अपने अपने काम को करते हैं जैसे अग्नि घृत के पिण्ड से अलग रहकरके भी उस को पिघला देती है तैसेही आत्मा भी सब से असंग रहकरके भी और क्रिया से रहित होकरके भी सारे जगत्को क्रियावान् कर देता है इसी से मेरे तुल्य जनक जी कहते हैं कोई चतुर नहीं है इसी कारण मैं अपने आपको ही नमस्कार करताहूं ॥ मुझसे अन्य दूसरा कोई नहीं है कि उस को नमस्कार करूं ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

अहोअहंनमोमह्यं यस्यमेनास्तिकिंचन ॥ अथवायस्यमेसर्वं यद्वाङ्मनसगोचरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् यस्य मे न अस्ति किंचन अथवा यस्य मे सर्वम् यत् वाङ्मनसगोचरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	अस्ति	= है
अहो	= आश्चर्यरूप हूं	अथवा	= या
मह्यम्	= मुझको	यस्य	= जिस
नमः	= नमस्कार है	मे	= मेरेका
यस्य	= जिस	+तत्	= वह
मे	= मेरेका	सर्वम्	= सब है
किंचन	= कुछ	यत्	= जो कुछ
न	= नहीं	वाङ्मनसगोचरम्	= वाणी और मनका विषय है

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं मेरे में सम्बन्धवाला कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि वास्तव से कोई पदार्थ सत्य नहीं है केवल एक ब्रह्मात्माही परमार्थ से सत्य है ॥

नेहनानानास्ति किञ्चन ॥ इस चेतन आत्मा में नानारूप करके जो जगत् प्रतीत होता है सो वास्तव से नहीं है ऐसे श्रुति कहती है ॥ मृत्योर्वै मृत्युमाप्नोतियइहनानैव पश्यति ॥ वह मृत्युसे भी मृत्यु को प्राप्त होता है जो ब्रह्म में नानात्व को देखता है याने नाना आत्मा को देखता है इत्यादि अनेक श्रुतिवाक्यहैं जो द्वैतका निषेध करते हैं फिर जनकजी कहते हैं जितना कि मन वाणीका विषय है वह सब मिथ्या उस का मुझ चैतन्य स्वरूप आत्माके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है ॥ इसी वास्ते मैं अपने ही आश्चर्य्य रूप आत्मा को नमस्कार करताहूं १४॥

मूलम् ॥

ज्ञानंज्ञेयंतथाज्ञाता त्रितयंनास्तिवास्तवम् ॥ अज्ञानाद्भातियत्रेदं सोहमस्मिनिरंजनः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

ज्ञानम् ज्ञेयम् तथा ज्ञाता त्रितयम् न अस्ति वास्तवम् अज्ञानात् भाति यत्र इदम् सः अहम् अस्मि निरंजनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानम्	ज्ञान
ज्ञेयम्	ज्ञेय
तथा	और
ज्ञाता	ज्ञाता
त्रितयम्	तीनों
यत्र	जिसविषे
वास्तवम्	यथार्थ से
न अस्ति	नहीं है
+च	और

अन्वयः	शब्दार्थ
अज्ञानात्	अज्ञानसे
+यत्र	जिसविषे
इदम्	यहतीनों
भाति	भासता है
सः	सोई
अहम्	मैं
निरंजनः	निरंजन रूप
अस्मि	हूं

भावार्थ॥

जनकजी कहते हैं ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय यह जो त्रिपुटी रूप है सोभी वास्तव से नहीं है किन्तु अज्ञान करके चेतन में ये तीनों प्रतीत होते हैं वास्तव से चेतन का इन के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं है जो माया और माया के कार्य्य से रहित चेतन आत्मा है सो मैंही हूं॥ १५॥

मूलम्॥

द्वैतमूलमहोदुःखं नान्यत्तस्यास्ति

भेषजम् ॥ दृश्यमेतन्मृषासर्वमेकोऽहं चिद्रसोमलः ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

द्वैतमूलम् अहो दुःखम् न अन्यत् तस्य अस्ति भेषजम् दृश्यम् एतत् मृषा सर्वम् एकः अहम् चिद्रसः अमलः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अहो	आश्चर्य है कि
द्वैतमूलम्	द्वैतहै मूल कारणजिसका ऐसा
यत्	जो
दुःखम्	दुःखहै
तस्य	उसकी
भेषजम्	ओषधि
अन्यत्	कोई
न अस्ति	नहीं है
एतत्	यह
सर्वम्	सब
दृश्यम्	दृश्य
मृषा	झूठ है
अहम्	मैं
एकः	एक अद्वैत
अमलः	शुद्ध
चिद्रसः	चैतन्य रस हूं

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ जब आत्मा निरञ्जन है तब उस का दुःख के साथ सम्बन्ध कैसे होसक्ता है पर देखने में आताहै और लोकभी कहते हैं कि हम बड़े दुःखी हैं ॥ उत्तर ॥ निरञ्जन आत्माको भी द्वैत भ्रमसे दुःख प्रतीत होता है वास्तव से वह दुःखी नहीं है॥ प्रश्न ॥ इस भ्रमरूपी महान् व्याधिकी ओषधि क्या है॥उत्तर॥ जो द्वैत प्रतीत होरहा है यह सब मिथ्या है वास्तव से सत्य नहीं है वास्तव सत्यबोधरूप आत्मा ही है ऐसा जो ज्ञान है वही त्रिविध दुःखकी निवृत्ति की ओषधि है और कोई उसकी ओषधि नहीं है १६ ॥

मूलम् ॥

बोधमात्रोहमज्ञानादुपाधिःकल्पितोमया ॥ एवंविमृश्यतोनित्यं निर्विकल्पेस्थितिर्मम ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

बोधमात्रः अहम् अज्ञानात् उपाधिः कल्पितः मया एवम् विमृश्यतः नित्यम् निर्विकल्पे स्थितिः मम ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	एवम्	= इसप्रकार
बोधमात्रः	= बोधरूपहूं	नित्यम्	= नित्य
मया	= मुझकरके	विमृश्यतः	= विचारकरतेहुये
अज्ञानात्	= अज्ञानसे	मम	= मेरी
उपाधिः	= उपाधि	स्थितिः	= स्थिति
कल्पितः	= कल्पना कियागयाहै	निर्विकल्पे	= निर्विकल्पमें है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यह जो द्वैतप्रपंचका अध्यास है इसका उपादान कारण कौन है ॥ उ० ॥ जनकजी कहते हैं नित्यज्ञानस्वरूप जो मैं हूं सो मैंही अज्ञान द्वारा सारे प्रपंचका उपादान कारणहूं अथवा अज्ञान के सहित जो कल्पित साराप्रपंच है उसका अधिष्ठान रूप होने से मैंही उपादान कारणहूं विचार से विना जो सब मिथ्या प्रपंच सत्यकी तरह प्रतीत होताथा सो नित्य विचार करने से असत्य भानहोनेलगा अब अपने स्वरूप चैतन्य में प्राप्त होकर जीवन्मुक्ति को प्राप्त हुआहूं १७ ॥

मूलम् ॥

अहोमयिस्थितंविश्वंवस्तुतोनमयि स्थितम् ॥ नमेबन्धोऽस्तिमोक्षोवा भ्रान्तिःशान्तानिराश्रया ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो मयि स्थितम् विश्वम् वस्तुतः न मयि स्थितम् न मे बन्धः अस्ति मोक्षः वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मे	मेरा	मयि	मेरे में स्थित हुआ
बन्धः	बन्ध	विश्वम्	जगत्
वा	या	वस्तुतः	वास्तव से
मोक्षः	मोक्ष	मयि	मेरे विषे
न	नहीं	न	नहीं
अस्ति	है	स्थितम्	स्थित है
अहो	आश्चर्य्य है कि		

+इतिवि चारतः = ऐसे विचार से	भ्रान्तिः = भ्रान्ति
निराश्रया = आश्रय रहित	शान्ता = शान्त हुई है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ मुक्ति क्या पदार्थ है ॥ उ० ॥ आनंदात्मक ब्रह्मावाप्तिश्चमोक्षः ॥ आनंदस्वरूप आत्माकी प्राप्तिका नामही मुक्तिहै ॥ प्र० ॥ यदि पूर्वोक्त मुक्तिको विचारसे जन्य मानोगे तब मुक्तिभी अनित्य होजावैगी क्योंकि जो जो उत्पत्तिवाला पदार्थ होता है सो सो अनित्य होता है ऐसा नियम है यदि मुक्तिको विचारसे अजन्य मानोगे तब फिर विचारसे रहित पुरुषोंकी भी मुक्ति होनी चाहिये ॥ उ० ॥ जनकजी कहते हैं वास्तव से तो मेरे में न बंध है न मोक्ष है क्योंकि मैं नित्य चैतन्यस्वरूप हूं ॥ प्र० ॥ जब कि वास्तव से तुम्हारे में बंध मोक्ष कोई नहीं है तब फिर शास्त्रके विचारका और गुरुके उपदेशका क्या फल हुआ ॥ उ० ॥ चिरकालकी जो देहादिकोंमें आत्मभ्रान्ति होरही है मैं देहहूं मैं इन्द्रियहूं मैं ब्राह्मणहूं मैं कर्ता भोक्ताहूं इस भ्रान्ति की जो निवृत्ति है न मैं देहहूं न इन्द्रियहूं न मैं ब्राह्मणत्वादि जातिवाला हूं न मैं कर्ता भोक्ता हूं

किंतु देहादिकों से परे इन सबका मैं साक्षी शुद्ध ज्ञानस्वरूपहूं ऐसा अपने स्वरूपका जो यथार्थ बोध है यही शास्त्र विचारका और गुरुके उपदेश का फल है जनकजी कहते हैं अहो बड़ा आश्चर्य्य है कि मेरे स्थित भी संपूर्ण विश्व वास्तवसे तीनों काल मेरेमें नहींहै ऐसा विचारकरनेसे मेरी भ्रान्ति दूरहोगई है १८॥

मूलम्॥

सशरीरमिदंविश्वं नकिञ्चिदिति निश्चितम्॥ शुद्धचिन्मात्रआत्माचतत्कस्मिन्कल्पनाधुना॥ १९॥

पदच्छेदः॥

सशरीरम् इदम् विश्वम् न किंचित् इति निश्चितम् शुद्धचिन्मात्रः आत्मा च तत् कस्मिन् कल्पना अधुना॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सशरीरम्	शरीर सहित	इदम्	यह
		विश्वम्	जगत्

किंचित् न = कुछ नहींहै याने न सत् है और न असत् है	इति = ऐसा
च = और	यदा = जब
आत्मा = आत्मा	निश्चितम् = निश्चय हुआ
शुद्धचिन्मात्रः = शुद्ध चैतन्यं मात्र है	तदा = तब
	कस्मिन् = किसविषे
	अधुना = अब
	कल्पना = विश्वकी कल्पना होवै

भावार्थ ॥

प्र० ॥ रज्जुरूपी अधिष्ठान के विद्यमान होते कभी न कभी मंद अंधकारमें फिरभी सर्पका भ्रमहोसक्ता है तैसे अधिष्ठान चेतन के होतेहुये भी मुक्ति में कभी न कभी प्रपंच भी होजावैगा ॥ उ० ॥ शरीरके सहित यह विश्व किंचित् भी सत्य नहीं है और न असत्य है किंतु अनिर्वचनीय अज्ञानका कार्यहोने से अनिर्वचनीयहैउस अनिर्वचनीय अज्ञान की निवृत्ति होनेसे उसके कार्य्य विश्वकी भी निवृत्ति

होजाती है अज्ञान ही कल्पित विश्वका कारण था उसके नाशहोजाने से फिर मुक्त पुरुष में विश्व उत्पन्न नहीं होता है जैसे मंद अंधकारके दूर होने से फिर सर्प की भ्रान्तिभी नहीं होती है तैसे प्रकाश स्वरूप आत्माके ज्ञान से फिर कदापि विश्वकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

शरीरंस्वर्गनरकौबन्धमोक्षौभयन्तथा ॥ कल्पनामात्रमेवैतत्किंमेकार्यंचिदात्मनः ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

शरीरम् स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ भयम् तथा कल्पनामात्रम् एव एतत् किम् मे कार्य्यम् चिदात्मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एतत् =	यह	बंधमोक्षौ =	बन्ध और मोक्ष
शरीरम् =	शरीर	तथा =	और
स्वर्गनरकौ =	स्वर्ग और नरक	भयम् =	भय

एवं = निःसंदेह
कल्पनामात्रम् } = कल्पना-मात्रहै

मेचिदात्मनः } = { मुझ चैतन्य आत्मा को
किम् = क्या
कार्यम् = कर्त्तव्य है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि संपूर्ण प्रपंच अवास्तव मानाजावै तब वर्ण और जाति आदिकों का आश्रय जो स्थूलशरीर है वहभी अवास्तवही होगा और शरीरको आश्रयण करके प्रवृत्त जो विधिनिषेध शास्त्रहै वहभी अवास्तव हीहोगा फिर तिस शास्त्रने बोधनकियेजो स्वर्ग नरक हैं वे भी सब अवास्तव याने मिथ्याही होवैंगे फिर स्वर्गादिकों में राग और नरकादिकों से भयभी मिथ्याहोंगे और शास्त्र ने बोधन करे जो बन्ध मोक्ष कहे हैं वेभी सब मिथ्याही होंगे ॥ उत्तर ॥ जनकजी कहते हैं शरीरादिक सब कल्पना मात्रही हैं सच्चिदानन्द स्वरूप मुझ आत्माका इन शरीरादिकोंके साथ कौन सम्बन्ध है किन्तु कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि सत्य मिथ्या का वास्तव सम्बन्ध नहीं बन

सत्ता है और मेरा शरीरादिकों के साथ कोई भी प्रयोजन नहींहै और जितने कि विधिनिषेध वाक्य हैं वे सब अज्ञानी के लियेहैं ज्ञानवान्का उनमें अधिकार नहींहै इसवास्ते ज्ञानवान्की दृष्टिसें शरीरादिक और विधिनिषेध सब अवास्तवही हैं ॥ २० ॥

मूलम् ॥

अहोजनसमूहेऽपि नद्वैतंपश्यतो मम ॥ अरण्यमिवसंवृत्तंकरतिंकरवाण्यहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो जनसमूहे अपि न द्वैतम् पश्यतः मम अरण्यम् इव संवृत्तम् क रतिम् करवाणि अहम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अहो	= आश्चर्य है कि
जनसमूहे	= जीवों के बीचमें
अपि	= भी
मम	= मुझ
पश्यतः	= देखतेहुये का
अरण्यम्इव	= अरण्यवत्
द्वैतम्	= द्वैत

नसंवृत्तम् = नहीं वर्त- ताहै	अहम् = मैं
तस्मात् = तब	रतिम् = मोहको
क्व = कैसे	करवाणि = करूं

भावार्थ ॥

पूर्ववाले वाक्यकरके जनकजी ने कहा कि स्वर्गादिकों के साथ मेरा कुछभी प्रयोजन नहींहै अब इस वाक्य करके कहते हैं कि इस लोकके साथ भी मेरा कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ जनकजी कहतेहैं हे प्रभो ! बड़ा आश्चर्यहै कि मैं द्वैतको देखताभी हूं तबभी जनोंका जो समूहरूपी द्वैत वनकी तरह उत्पन्नहुआहै उसके बीचमें होताहुआ भी उसके साथ मुझको कोई प्रीति नहींहै क्योंकि मैंने उसको मिथ्या जानलियाहै मिथ्या वस्तुके साथ ज्ञानवान् प्रीतिको नहीं करते हैं अज्ञानी मिथ्या पदार्थों के साथ प्रीति करते हैं इतनाही ज्ञानी अज्ञानीका भेद है २१ ॥

मूलम् ॥

नाहंदेहोनमेदेहोजीवोनाहमहंहिचित् ॥ अयमेवहिमेबंधआसीद्याजीविते स्पृहा ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ॥

न अहम् देहः न मे देहः जीवः न अहम् अहम् हि चित् अयम् एव हि मे बन्धः आसीत् या जीविते स्पृहा॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	मैं	हि	निश्चयकर करके
देहः	शरीर	चित्	चैतन्यरूप हूं
न	नहींहूं	मे	मेरा
मे	मेरा	अयमेव	यही
देहः	शरीर	बन्धः	बन्धथा
न	नहीं है	या	जो
अहम्	मैं	जीविते	जीनेमें
जीवः	जीव	स्पृहा	इच्छा
न	नहींहूं	आसीत्	थी
अहम्	मैं		

भावार्थ ॥

प्रश्न॥ शरीरमें अहंता ममता अवश्य करनीहोगी

क्योंकि विना अहंता ममताके व्यवहारकी सिद्धिन होतीहै ॥उत्तर॥जनकजीकहतेहैं मैं देह नहींहूं क्यों देहजड़है मैं चेतनहूं और मेरा देहभी नहींहै क्योंकि असंगहूं मैं जीव अहंकारी भी नहींहूं क्योंकि अह कार का कर्तृत्व धर्म है और मेरा अकर्तृत्व धर्महै प्रश्न ॥ फिर तुम कौनहो ॥ उत्तर ॥ मैं चैतन्य र अहंकारका भी साक्षी अकर्त्ता अभोक्ताहूं ॥ प्रश्न ॥ ज तुम खानपानादिक सब व्यवहारोंको करतेहो तो तु अकर्ता कैसे होसक्ते हो ॥ उत्तर ॥ अज्ञानी पुरुषों कं दृष्टिमें मैं व्यवहारों का कर्त्ता प्रतीत होताहूं वास्तः से मैं कर्त्ता नहींहूं कर्तृत्व भोक्तृत्वपना अहंकारादिकं का धर्म है मुझ आत्माके ये धर्म नहीं हैं और ऐस भी कहाहै ॥ निद्राभिक्षेस्नानशौचेनेच्छामिनकरोमिच। द्रष्टारश्चेत्कल्पयन्ति किम्मेस्यादन्यकल्पनात् ॥ १ ॥ सोना जागना भिक्षामांगना स्नानकरना पवित्र रहना इन सबकी मैं इच्छा नहीं करताहूं और न मैं इनको क-रताहूं यदि कोई देखनेवाला मेरेमें ऐसी कल्पना कर-ताहै कि मैं इनको करताहूं तो दूसरेकी कल्पना करने से मेरी क्या हानि होसक्ती है ॥ १ ॥ अब इस बिषे दृष्टांत कहते हैं ॥ गुंजापुंजादिदह्येतनान्यारोपितव ह्निना ॥ नान्यारोपितसंसारधर्मानेवमहंभजे ॥ २ ॥

दिनोंमें वन विषे जब कि बंदरोंको सरदी लग-
तब वह घुंघची का ढेर लगाकर उसके पास
रके बैठजाते हैं और उन घुंघचियोंके याने गुंजा
में अग्निकी मिथ्या कल्पना करतेहैं कारण यह है
लकर बैठने से उनमें गरमी उत्पन्न होती है पर
जानतेहैं कि इस गुंजे के पुंजसे हम सबको गर-
रहीहै जैसे बंदरों करके कल्पीहुई गुंजामें अग्नि
। कारण नहीं होसक्ती है तैसेही मूर्ख अज्ञानि-
के कल्पेहुये खान पानादि व्यवहार भी विद्वान्
नि नहीं करसक्ते हैं क्योंकि विद्वान् वास्तव से
। अभोक्ता है उसकी दृष्टिमें न तो देहादिक हैं
न उनके कर्तृत्वभोक्तृत्व धर्म हैं किंतु वे असंग
स्वरूपहैं ॥ प्रश्न ॥ अविवेकी विवेकियों को जी-
इच्छा क्यों होती है ॥ उत्तर ॥ जो उनके जीनेकी
है यही उन का बंधहै जीनेकी इच्छाकरकेही
की पुरुष अनर्थों को करतेहैं विवेकी पुरुष नहीं
हैं इसवास्ते जनकजी कहते हैं मेरेको जीने
की इच्छा भी नहीं है जीने मरनेकी इच्छा सब
करण के धर्म हैं मुझ असंग चैतन्यस्वरूप आ-
के धर्म नहीं हैं ॥ २२ ॥

मूलम् ॥

अहोभुवनकल्लोलैर्विचित्रै
त्थितम् ॥मय्यनन्तमहांभोधौ
समुद्यते ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो भुवनकल्लोलैः विचि
समुत्थितम् मयि अनन्तम
चित्तवाते समुद्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	
अहो =	आश्चर्य्य है कि	विचित्रैः =	
अनन्त महाम्भोधौ =	अपारसमुद्ररूप	भुवनकल्लोलैः =	
मयि =	मुझविषे	मम =	
चित्तवाते समुद्यते =	चित्तरूपीपवन के उठने परभी	द्राक् =	
		समुत्थितम् =	

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं जैसे वायुके चलने से समुद्र
ड़े छोटे अनेक प्रकार के तरंग उत्पन्न होते हैं
वायु के स्थिरहोने से वे तरंग लय होजाते हैं तैसे
नारूपी महान् समुद्र में चित्तरूपी वायु के फुरने
नेक ब्रह्मांडरूपी तरंग उत्पन्न होते हैं और चित्त
न्त होने से वे लय होजातेहैं और जैसे समुद्रके
समुद्रसेही उत्पन्न होते हैं और समुद्रमेंही लय
तेहैं और समुद्रके तरंग जैसे समुद्र से भिन्न नहीं
। ब्रह्मांडरूपी अनेक तरंगभी मेरेसे भिन्न नहीं हैं
उत्पन्नहोतेहैं और मेरेमेंही लयहोतेहैं क्योंकि सब
कल्पितहैं कल्पित पदार्थ अधिष्ठानसे भिन्ननहीं
हैं॥ २३ ॥

मूलम् ॥

य्यनन्तमहांभोधौचित्तवातेप्रशा
॥ अभाग्याज्जीववणिजोजगत्पो
नश्वरः ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ॥

थि अनन्तमहांभोधौ चित्तवाते
म्यति अभाग्यात् जीववणिजः ज-
तः विनश्वरः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनन्तमहांभोधा	अपार समुद्ररूप	जीववणिजः	जीवरूपीवणिक्के
मयि	मुझ विषे	अभाग्यात्	अभाग्यसे
चित्तवाते प्रशाम्यति	चित्तरूपीपवन के शान्तहोने पर	जगत्पोतः	जगत्रूपीनौकायानेशरीर
		विनश्वरः	नाश हुआ है

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं मुझ अनंत महान् समुद्र में जब संकल्पविकल्पात्मक मनरूपी वायु शांतहोजाता है अर्थात् जब मन संकल्पादिकों से रहित होता है तब जीवरूपी व्यापारी की शरीररूपी नौका प्रारब्धकर्मरूपी नदी के क्षय होनेपर नाश होजातीहै ॥२४॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधावाश्चर्यं जीववी-

चयः ॥ उद्यन्तिघ्नन्तिखेलन्ति प्रविशन्तिस्वभावतः ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहांभोधौ आश्चर्यम् जीववीचयः उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आश्चर्यम्	= आश्चर्य है कि	घ्नन्ति	= परस्परलड़ती हैं
मयि	= मुझ	च	= और
अनन्त महाम्भोधौ	= अपार समुद्र विषे	खेलन्ति	= खेलती हैं
		च	= और
जीववीचयः	= जीवरूपीतरंगें	स्वभावतः	= स्वभावसे
उद्यन्ति	= उठती हैं	प्रविशन्ति	= लयहोती हैं

भावार्थ ॥

अबाधितानुवृत्ति करके अपने में संपूर्ण व्यवहार को देखतेहुये जनकजी कहते हैं ॥ प्रश्न ॥ बाधिताअ-

नुवृत्ति का क्या अर्थ है॥ उत्तर॥ बाधितहुये पदार्थकी जो पुनःअनुवृत्ति याने प्रतीति है उसका नाम बाधिता-नुवृत्ति है (दृष्टांत) जैसे एक पुरुष किसी वृक्षके नीचे गर्मी के दिनों में दोपहर के समय बैठाथा उसको प्या-सलगी वह पानीकी खोजकरनेलगा तब उसको दूरसे जल दिखाई दिया वह उस जलके पीनेके वास्ते जब गया तब उसको जल न मिला क्योंकि रेतेमें जो सू-र्य्य की किरण पड़ती थी वही दूरसे जलरूप होकर दिखाई पड़ती थी उसने जान लिया कि यह रेताही मुझको भ्रमकरके जल दिखाई देताथा वह तो जल है नहीं तब वह लौटकरके उसी वृक्षके नीचे आकर बैठगया और फिर उसको वही रेता किरण के सम्बन्ध से चमकता हुआ जलरूप से दिखाई देनेलगा परन्तु वह पुरुष जलकी इच्छाकरके वहां न गया क्योंकि उसको निश्चय होगया कि यह जल नहीं है दूरत्व दोषसे और किरणके सम्बन्ध से मुझको जल दिखाई देता है पुरुष के यथार्थ ज्ञानकरके बाधित हुये परभी जलज्ञान की जो पुनः अनुवृत्ति याने प्रतीति है उसीका नाम बाधिता अनुवृत्तिहै (दार्ष्टांत) आत्माके अज्ञान करके जो जगत् सत्यकी तरह प्रतीत होताथा उसके सत्यवत् ज्ञानका बाधा आत्माके ज्ञानसे भी होगया

तथापि उसकी अनुवृत्ति अर्थात् पुनः जो उसकी प्रतीति विद्वान् को होती है वही बाधिताअनुवृत्ति कही जाती है वह प्रतीति विद्वान्की कुछ हानि नहीं करसक्ती है क्योंकि विद्वान् उसको असत्य जानकर उसमें फिर आसक्ति नहीं करता है किंतु मिथ्या जानकर अपने आत्मानंदमेंही मग्न रहता है जनकजी कहते हैं क्रियासे रहित निर्विकार आत्मारूपी महान् समुद्र में जीवरूपी वीचियां याने अनेक तरङ्ग उत्पन्न होते हैं और परस्पर अध्याससे वे जीव आपसमें मार पीटकरते हैं खेलते हैं लड़तेहैं जैसे मेरे स्वप्नके जीव स्वप्नमें परस्पर विरोधादिकों को करतेहैं और जब उनके अविद्यादिका नाश होजाताहै तब फिर मेरेअसली स्वरूपमेंही लय होजाते हैं फिर अविद्यादिकों करके उत्पन्न होतेहैं फिर लय होतेहैं और जैसे घटरूप उपाधिकी उत्पत्तिसे घटाकाश में उत्पत्ति व्यवहार होताहै और घटरूपी उपाधिके नाश होनेसे घटाकाशमें नाश व्यवहार होता है वास्तव से आकाशकी न तो उत्पत्ति होतीहै और न नाश होताहै तैसेही शरीरस्थ आत्माकी भी न उत्पत्ति होती है और न नाश होता है ज्ञानवान् को बाधितानुवृत्ति करके जगत्की प्रतीति भी होती है तबभी उसकी कोई हानि नहींहै २५ ॥ इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायांगीतायांद्वितीयंप्रकरणंसमाप्तम् ॥२॥

तीसरा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अविनाशिनमात्मानमेकंविज्ञायतत्त्वतः ॥ तवात्मज्ञस्यधीरस्यकथमर्थार्जनेरतिः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अविनाशिनम् आत्मानम् एकम् विज्ञाय तत्त्वतः तव आत्मज्ञस्य धीरस्य कथम् अर्थार्जने रतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एकम्	अद्वैत	आत्मज्ञस्य	आत्मज्ञानी
अविनाशिनम्	अविनाशी	धीरस्य	धीरको
आत्मानम्	आत्माको	कथम्	क्यों
तत्त्वतः	यथार्थ	अर्थार्जने	धनकेसंपादनकरनेविषे-
विज्ञाय	जानकरके	रतिः	प्रीतिहै
तव	तुझ		

भावार्थ ॥

जनकजीके अनुभवकी परीक्षा करके अष्टावक्रजी फिर उसकी परीक्षा करते हैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! नाशसे रहित निर्विकल्प, कालपरिच्छेदसे रहित, देशपरिच्छेद से रहित, वस्तुपरिच्छेदसे रहित, द्वैतभावसे रहित, चैतन्यस्वरूप आत्माको जानकर के फिर तुझधीरकी व्यवहारिक धनके संग्रह करनेमें कैसे प्रीति होती है अर्थात् आत्मज्ञानी होकर फिरभी तू धनादिकों में प्रीतिवाला दिखाई पड़ताहै इसमें क्या कारणहै ॥ १ ॥ मुनिके प्रश्नके उत्तरको मुनिसे सुनने की इच्छा करके उनसे आपही प्रश्न पूछते हैं ॥

मूलम् ॥

आत्माज्ञानादहोप्रीतिर्विषयभ्रमगोचरे ॥ शुक्तेरज्ञानतोलोभोयथारजतविभ्रमे ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्माज्ञानात् अहो प्रीतिः विषयभ्रमगोचरे शुक्तेः अज्ञानतः लोभः यथा रजतविभ्रमे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्माऽज्ञानात्	= आत्मा के अज्ञान से	यथा	= जैसे
विषयभ्रमगोचरे	= विषय के भ्रम के होने पर	शुक्तेः	= सीपीके
प्रीतिः	= प्रीतिहोतीहै	अज्ञानतः	= अज्ञानसे
		रजतविभ्रमे	= रजतकी भ्रांति में
		लोभः	= लोभहोता है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ हे भगवन्! आत्मज्ञानके प्राप्तहोनेपर धनादिकों के संग्रह करने में क्या दोष है ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य! विषयों में अर्थात् स्त्री पुत्र धनादिकों में जो प्रीति होतीहै सो आत्माके स्वरूपके अज्ञानसेही होतीहै आत्माके ज्ञानसे नहीं होतीहै क्योंकि जब आत्मा का ज्ञान होताहै तब विषयोंका बाधहोजाता है इसमें लोकप्रसिद्ध दृष्टांत को कहतेहैं जैसे शुक्तिके अज्ञान से और उसमें रजत भ्रमके होने से उस रजतमें लोभ होजाता है ॥ २ ॥ मूलम् ॥

विश्वंस्फुरतियत्रेदंतरंगाइवसागरे॥

सोहमस्मीतिविज्ञाय किंदीनइवधावसि ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

विश्वम् स्फुरति यत्र इदम् तरंगाः इव सागरे सः अहम् अस्मि इति विज्ञाय किम् दीनः इव धावसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र	= जिसआत्मारूपीसमुद्रमें	सः	= सोई
इदम्	= यह	अहम्	= मैं
विश्वम्	= संसार	अस्मि	= हूं
तरंगाः	= तरंगोंके	इति	= इसप्रकार
इव	= समान	विज्ञाय	= जानकरके
स्फुरति	= स्फुरणहोताहै	किम्	= क्यों
		दीनःइव	= दीनकीतरह
		धावसि	= दौड़ताहै तू

भावार्थ ॥

और जैसे समुद्र में तरंगादिक अपनी सत्ता से रहित प्रतीत होते हैं तैसेही यह जगत् भी अपनी

सत्तासे रहित स्फुरणहोता है सबका अधिष्ठान आत्मा ज्योंका त्यों मैं हूं इसप्रकार जिसने आत्माका साक्षात्कार करलिया है वह दीनकी तृष्णाकरके व्याकुलहुये की तरह विषयों की तरफ नहीं दौड़ता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

श्रुत्वापिशुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुन्दरम् ॥ उपस्थेत्यंतसंसक्तोमालिन्यमधिगच्छति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

श्रुत्वा अपि शुद्धचैतन्यम् आत्मानम् अतिसुंदरम् उपस्थे अत्यन्तसंसक्तः मालिन्यम् अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहो	आश्चर्यहै कि	आत्मानम्	आत्माको
अतिसुंदरम्	अत्यन्त सुंदर	श्रुत्वाअपि	जानकरके भी
शुद्धचैतन्यम्	शुद्ध चैतन्य	उपस्थे	समीपवर्तिविषय में

अत्यन्त संसक्तः	=	अत्यन्त आसक्त हुआपुरुष	मालिन्यम् = मूढ़ताको अधिगच्छति=प्राप्तहोता है

भावार्थ ॥

आचार्य ने ऊपरवाले तीनों श्लोकोंकरके ज्ञानी शिष्य के लिये दृश्यमान विषय व्यवहार की निन्दाकी अब सब ज्ञानियोंके प्रति विषय विषयक व्यवहारकी निन्दा शिष्य की परीक्षाके लिये करते हैं ॥ आत्मवित् गुरुके मुखसे और वेदांत वाक्य से आत्माका शुद्ध स्वरूप श्रवण करके और साक्षात्कार करके भी जो पुरुष समीपवर्ति विषयों में अत्यन्त संसक्त होता है वह कैसे मूढ़ता को प्राप्त होताहै यह बड़े आश्चर्य की वार्ता है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

सर्वभूतेषुचात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि ॥ मुनेर्जानतआश्चर्यममत्वमनुवर्तते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्वभूतेषु च आत्मानम् सर्वभूतानि

च आत्मनि मुनेः जानतः आश्चर्यम्
ममत्वम् अनुवर्तते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मानम्	= आत्मा को	जानतः	= जानतेहुये
सर्वभूतेषु	= सबभूतोंमें	मुनेः	= मुनिको
च	= और	ममत्वम्	= ममता
आत्मनि	= आत्मा में	अनुवर्तते	= होती है
सर्वभूतानि	= सबभूतों को	आश्चर्य्यम्	= यहीआश्चर्य है

भावार्थ ॥

ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यंत सम्पूर्ण भूतोंमें जिसने अधिष्ठान भूत आत्माको जानलियाहै और फिर सम्पूर्ण भूतोंको जिसने आत्मामें जानलिया है याने सम्पूर्ण भूत रज्जुसर्पकी तरह आत्मामें कल्पितहैं ऐसा जानकरके भी फिर जिसका विषयों में ममत्वहोवै तो आश्चर्यकी वार्ता है क्योंकि जिसने शुक्तिमें अध्यस्त रजतको जानलिया है उसकी प्रवृत्ति फिर उसरजतके लिये नहीं होती है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

आस्थितःपरमाद्वैतंमोक्षार्थेपिव्यव स्थितः ॥ आश्चर्य्यंकामवशगोविक लःकेलिशिक्षया ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

आस्थितः परमाद्वैतम् मोक्षार्थे अपि व्यवस्थितः आश्चर्यम् कामवश गः विकलः केलिशिक्षया ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
परमाद्वैतम्	= परमअद्वैतको	कामवशगः	=कामकेवशहो
आस्थितः	= आश्रयकियाहुआ	केलिशिक्षया	= क्रीड़ाकेअभ्याससे
+च	= और	विकलः	= व्याकुलहोताहै
मोक्षार्थेअपि	=मोक्षकेलियेभी	आश्चर्यम्	= यहीआश्चर्यहै
व्यवस्थितः	=उद्यतहुआपुरुष		

भावार्थ ॥

जिसने सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे शून्य अद्वैत आत्माका साक्षात्कार करलियाहै और सच्चिदानन्द आत्मामें जिसकी निष्ठा होचुकी है यदि फिर वह पुरुष कामके वश्यहोकर नानाप्रकारकी क्रीड़ा करता हुआ दिखाईपड़े तो महान् आश्चर्य्य है ६ ॥

मूलम् ॥

उद्भूतंज्ञानदुर्मित्रमवधार्यातिदुर्बलः ॥ आश्चर्यं काममाकांक्षेत्कालमन्तमनुश्रितः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

उद्भूतम् ज्ञानदुर्मित्रम् अवधार्य्य अतिदुर्बलः आश्चर्य्यम् कामम् आकांक्षेत् कालम् अन्तम् अनुश्रितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
उद्भूतम्	= उत्पन्नहुये	अवधार्य्य	= धारणकरके
ज्ञानदुर्मित्रम्	= ज्ञान के शत्रुकामको	अतिदुर्बलः	= दुर्बलहोताहुआ

च = और	कामम् = कामनाको
अन्तंकालम्=अन्तकालको	आकांक्षेत् = इच्छाकरताहै
अनुश्रितः = आश्रय करताहुआपुरुष	आश्चर्य्यम् = यहीआश्चर्यहै

भावार्थ ॥

जो ज्ञानी पुरुष कामको ज्ञानका अत्यन्त वैरी जानताहुआ फिरभी कामकी इच्छा करै तो इससे बढ़कर क्या आश्चर्य्य है जैसे मृत्यु करके ग्रसित हुये पुरुषको समीपवर्ति विषयभोगकी इच्छा नहींहोतीहै तैसेही विवेकी पुरुष को भी विषयभोगकी इच्छा न होनी चाहिये ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

इहामुत्रविरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः ॥ आश्चर्य्यंमोक्षकामस्य मोक्षादेवविभीषिका ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

इह अमुत्र विरक्तस्य नित्यानित्य-

विवेकिनः आश्चर्य्यम् मोक्षकामस्य मोक्षात् एव बिभीषिका ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इह	इसलोकके भोगविषे	च	और
+च	और	मोक्षकामस्य	मोक्षकेचाहनेवालेपुरुषको
अमुत्र	परलोकके भोगविषे	मोक्षात् एव	मोक्षसेही
विरक्तस्य	विरक्त	बिभीषिका	भयहै
नित्यानित्यविवेकिनः	नित्यऔर अनित्यके विचारकरनेवाले	आश्चर्य्यम्	यहीआश्चर्य्य है

भावार्थ ॥

आत्मा नित्यहै और शरीरादिक अनित्यहैं इन दोनोंके विवेचन करनेवालेका नाम विवेकी है और आनन्दरूप ब्रह्मकी प्राप्तिका नाम मोक्षहै उस मोक्षकी कामनावाले ज्ञानीको ऐसा भयहो कि असद्रूप स्त्री पुत्र धनादिकों के साथ मेराबियोग होजायगा तो महान्

आश्चर्य्य है क्योंकि स्वप्न में देखेहुये धनका जाग्रत् में नाश होनेसे मोह किसी को भी नहीं हुआहै॥ ८ ॥

मूलम्॥

धीरस्तुभोज्यमानोपि पीड्यमानोपिसर्वदा॥ आत्मानंकेवलंपश्यन्नतुष्यतिनकुप्यति॥ ९ ॥

पदच्छेदः॥

धीरः तु भोज्यमानः अपि पीड्यमानः अपि सर्वदा आत्मानम् केवलम् पश्यन् न तुष्यति न कुप्यति॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धीरः	ज्ञानीपुरुष	पीड्यमानः	पीड़ितहोताहुआ
तु	तो	अपि	भी
भोज्यमानः	भोगताहुआ	सर्वदा	नित्य
अपि	भी	केवलम्	एक
च	और		

आत्मानम् = आत्माको
पश्यन् = देखताहुआ।
नतुष्यति = न प्रसन्न होताहै
+च = और
नकुप्यति = न कोपकरताहै

भावार्थ ॥

ज्ञानीको शोक और कोपभी न होना चाहिये ॥ ज्ञानीपुरुष लोकोंके दृष्टिमें विषयों को भोक्ताहुआ भी और लोकोंकरके निन्दित पीड़ाको प्राप्तहुआ २ भी सर्वदाकाल सुख दुःखके भोगसे रहित केवल आत्मा को देखताहुआ न हर्षको न कोपको प्राप्तहोता है क्योंकि तोष और रोष आत्मा में नहीं रहसक्तेहैं यदि ज्ञानी में भी तोष रोष रहैं तो बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

चेष्टमानंशरीरंस्वं पश्यत्यन्यशरीरवत् ॥ संस्तवेचापिनिंदायां कथंक्षुभ्येन्महाशयः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

चेष्टमानम् शरीरम् स्वम् पश्यति अन्यशरीरवत् संस्तवे च अपि निं-

दायाम् कथम् क्षुभ्येत् महाशयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
चेष्टमानम्	चेष्टाकरते हुये	+सः	सो
स्वम्	अपने	महाशयः	महाशय पुरुष
शरीरम्	शरीरको आत्मासे भिन्न	संस्तवे	स्तुतिविषे
अन्यशरीरवत्	अन्यशरीरकी तरह	च	और
+ यः	जो	निंदायामपि	निंदाविषे भी
पश्यति	देखताहै	कथम्	कैसे
		क्षुभ्येत्	क्षोभकोप्राप्त होवैगा

भावार्थ ॥

जैसे दूसरे का शरीर अपने आत्मासे भिन्न चेष्टा का आश्रयहै तैसे अपना शरीरभी अपने आत्मासे भिन्न चेष्टाका आश्रयहै इसप्रकार जो ज्ञानी देखताहै वह अपनीस्तुतिमें हर्षको और निंदामें क्षोभको कदापि

प्राप्त नहीं होताहै यदि वह हर्ष और क्षोभको प्राप्त होवे तो वह ज्ञानवान् नहीं है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

मायामात्रमिदंविश्वं पश्यन्विगतकौतुकः॥अपिसंनिहितेमृत्यौकथंत्रस्यतिधीरधीः॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

मायामात्रम् इदम् विश्वम् पश्यन् विगतकौतुकः अपि सन्निहिते मृत्यौ कथम् त्रस्यति धीरधीः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विगतकौतुकः	= दूरहोगईहै अज्ञानता जिसकी ऐसा	मायामात्रम्	= मायारूप
धीरधीः	= धीरपुरुष	पश्यन्	= देखताहुआ
इदम्विश्वम्	= इसविश्वको	मृत्यौसन्निहिते	= मृत्युके आनेपर
		अपि	भी
		कथम्	= क्यों
		त्रस्यति	= डरैगा

भावार्थ ॥

यह जो दृश्यमान जगत्है सो सब मायाका कार्य्य है और मायाका कार्य्य होनेसेही वह सब मिथ्या है जो ज्ञानी इसको मिथ्या देखता है वह फिर ऐसा विचार नहीं करताहै कि कहांसे यह शरीरादिक उत्पन्न होतेहैं और नाशहोकर किसमें लय होजाते हैं यदि ऐसा विचारकरके वह मोहको प्राप्तहोवे तो वह ज्ञानी नहीं होसक्ता है जो विद्वान् अपने स्वरूपमें अचलहै वह मृत्युके समीप आने परभी भयको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

निःस्पृहंमानसंयस्यनैराश्येपिमहात्मनः॥तस्यात्मज्ञानतृप्तस्यतुलनाकेन जायते ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

निःस्पृहम् मानसम् यस्य नैराश्ये अपि महात्मनः तस्य आत्मज्ञानतृप्तस्य तुलना केन जायते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यस्य	= जिस	आत्मज्ञानतृप्तस्य	= आत्मज्ञानसेतृप्त हुयेकी
महात्मनः	= महात्मा का	तुलना	= बराबरी
मानसम्	= मन	केन	= किसके साथ
नैराश्ये अपि	= मोक्षमेंभी	जायते	= होसकती है
निःस्पृहम्	= इच्छारहितहै		
तस्य	= तिस		

भावार्थ॥

अबज्ञानीकी उत्कृष्टताको दिखातेहैं॥ जिस विद्वान् का मन मोक्षकीभी इच्छासेरहितहै संसारकेकिसीपदार्थ के लाभअलाभमें जिसका मन हर्ष और शोकको नहीं प्राप्त होताहै जिसके सब मनोरथ समाप्त होगयेहैं और अपने आत्माके आनन्द करकेही जो तृप्तहै तिस विद्वान्की किसके साथ तुल्यतादीजावै किन्तु किसीके भी साथ उसकी तुल्यता नहीं दीजासक्तीहै क्योंकि वह अतुल्य है॥ १२॥

मूलम्॥

स्वभावादेवजानानोदृश्यमेतन्नकिञ्चन॥इदंग्राह्यमिदंत्याज्यंसकिंपश्यतिधीरधीः॥१३॥ पदच्छेदः॥

स्वभावात् एव जानानः दृश्यम् एतत् न किंचन इदम् ग्राह्यम् इदम् त्याज्यम् सः किम् पश्यति धीरधीः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एतत् =	यह	किम् =	कैसे
दृश्यम् =	दृश्य	पश्यति =	देखसक्ता है कि
स्वभावात् =	स्वभावसे ही	इदम् =	यह
नकिंचन =	कुछनहीं है	ग्राह्यम् =	ग्रहणकरने योग्यहै
+इति =	ऐसा	+ च =	और
जानानः =	जाननेवालाहै	इदम् =	यह
+ यः =	जो	त्याज्यम् =	त्यागने योग्यहै
सःधीरधीः =	वहज्ञानी		

भावार्थ ॥

यह जो दृश्यमान प्रपंचहै सो सब दृश्य होनेसे शुक्ति रजतकी तरह मिथ्या है अर्थात् जैसे शुक्ति में रजत दृश्यभी है और मिथ्याभी है तैसे यह प्रपंचभी दृश्यहोने से मिथ्या है इस अनुमान प्रमाण करके यह जगत् मिथ्या साबित होताहै ऐसा जिस विद्वान् ने निश्चय करलिया है वह धीरपुरुष ऐसा कब देखताहै कि यह मेरेको ग्रहण करने योग्यहै यह मेरेको त्यागने योग्य है किन्तु कदापि नहीं देखता है अब इस विषे हेतुको आगेवाले वाक्य करके कहतेहैं ॥१३॥

मूलम् ॥

अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः ॥ यदृच्छयाऽऽगतोभोगोन दुःखायचतुष्टये ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः यदृच्छया आगतः भोगः न दुःखाय च तुष्टये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अन्तस्त्यक्तकपायस्य	= अन्तःकरणसे त्यागा है विपयवासना का कपाय जिसने	यदृच्छया	= दैवयोगसे
निर्द्वन्द्वस्य	= द्वन्दसे रहितहै जो	आगतः	= प्राप्तहुई
निराशिपः	= आशारहित है जो ऐसे पुरुषको	भोगः	= वस्तु
		नदुःखाय	= नदुःखके लियेहै
		च	= और
		नतुष्टये	= नसंतोपके लिये है

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् ने अन्तःकरणके मलोंको दूरकर दियाहै वह शीत उष्णादिक द्वन्द्वोंसे अर्थात् शीत उष्णजन्य सुख दुःखादि से भी रहितहै और नष्टहोगई हैं सम्पूर्ण विषयवासना जिसकी ऐसा जो सम-चित्त विद्वान्है उसको दैवयोगसे प्राप्तहुये जो भोगहैं

उनको प्रारब्धवश से भोगताहुआ भी हर्ष शोकको प्राप्तनहीं होता है ॥ १४ ॥

इतिश्रीअष्टावक्रकृतगीतायांतृतीयंप्रकरणंसमाप्तम् ३॥

चौथा अध्याय ॥

मूलम् ॥

हन्तात्मज्ञस्यधीरस्य खेलतोभोगलीलया ॥ नहिसंसारवाहीकैर्मूढैःसहसमानता ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

हन्त आत्मज्ञस्य धीरस्य खेलतः भोगलीलया न हि संसारवाहीकैः मूढैः सह समानता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हन्त	= यथार्थहै कि	भोगलीलया	= भोगलीलासे

खेलतः = खेलतेहुये
आत्मज्ञस्य = आत्मज्ञानी
धीरस्य = धीरपुरुष की
समानता = बराबरी
संसारवासनैः = संसारसे लिप्त
मूढैःसह = मूढ़पुरुषों के साथ
नहि = हरगिज़नहींहोसक्ती है

भावार्थ ॥

तृतीयप्रकरण में जो गुरुने शिष्यकी परीक्षा के लिये ज्ञानीके ऊपर आक्षेप कियेहैं अब उन आक्षेपों के उत्तरोंको शिष्य कहता है कि प्रारब्धवशासे और बधिताऽनुवृत्तिकरके सम्पूर्ण व्यवहारों को करताहुआ भी ज्ञानी दोष को प्राप्त नहीं होता है ॥ जनकजी कहते हैं हे भगवन्! जिस आत्मज्ञानी विद्वान् ने सबका अधिष्ठान अपने आत्माको जान लिया है वह। भयोंकरके विक्षेपको प्राप्त नहीं होता है अर्थात् उसका चित्त विषयों के सम्बन्ध से विक्षेपको प्राप्त नहीं होताहै ॥ यदि विद्वान् प्रारब्धकर्मके वशसे स्त्रीआदि भोगोंमें प्रवृत्तभी होजावे तबभी मूढ़बुद्धि वाले अज्ञानियोंके साथ उसकी तुल्यता किसीप्रकारसे

नहीं होसक्ती है ॥ क्योंकि विद्वान् विषयोंको भोगता हुआभी उनमें आसक्त नहीं होताहै और मूर्खकर्मी आसक्त होजाता है इसीवार्ता को गीतामें भी भगवान् ने कहा है ॥ तत्त्ववित्तुमहाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥ गुणागुणेषुवर्तत इति मत्वानसज्जते १ ॥ हे महाबाहो! तत्त्ववित् जो ज्ञानीहै सो इन्द्रियोंके विषयोंके विभाग को जानता है इन्द्रियां अपने २ विषयोंमें वर्ततीहैं मैं इनका भी साक्षीहूं मेरा इनकेसाथ कोई सम्बन्ध नहीं है १ और पंचदशीकारने भी ज्ञानी अज्ञानीका भेद दिखलाया है ॥ ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चात्र समे प्रारब्ध-कर्मणि ॥ नक्लेशोज्ञानिनोधैर्यान्मूढःक्लिश्यत्यधैर्यतः १॥ प्रारब्धकर्मके भोगमें ज्ञानी और अज्ञानी दोनों तुल्यही हैं कष्टके होनेपर भी ज्ञानी धीर्यतासे क्लेशको नहीं प्राप्त होताहै और मूर्ख अज्ञानी अधीर्यता के कारण क्लेशको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

यत्पदंप्रेप्सवोदीनाः शक्राद्याःसर्वदेवताः ॥ अहोतत्रास्थितोयोगी नहर्षमुपगच्छति ॥ २ ॥

पदच्छेदः॥

यत् पदम् प्रेप्सवः दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः अहो तत्र स्थितः योगी न हर्षम् उपगच्छति॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यत्	जिस
पदम्	पद को
प्रेप्सवः	इच्छा करतेहुये
शक्राद्याः	शक्रादि
सर्वदेवताः	सब देवता
दीनाः	दीन होरहे हैं
तत्र	तिस पद बिषे
स्थितः	स्थितहोता हुआभी
योगी	योगी
हर्षम्	हर्ष को
न उपगच्छति	नहीं प्राप्त होता है
अहो	यही आश्चर्य्य है

भावार्थ॥

प्रश्न॥ संसार बिषे व्यवहार में स्थितहुआ २ ज्ञानी अज्ञानी के तुल्य क्यों नहीं होसक्ता है॥ उत्तर॥ अज्ञानी को लाभ अलाभ में सुख दुःख होते हैं ज्ञान-

वान् को नहीं होते हैं इसी से उनकी तुल्यता नहीं बनसक्ती है ॥ जनकजी कहते हैं हे गुरो! इन्द्र से आदि लेकर सब देवता जिस आत्मपद की प्राप्तिकी इच्छा करतेहुये बड़ी दीनता को प्राप्त होते हैं और जिस पदकी अप्राप्ति होने में बड़े शोक को प्राप्त होतेहैं उसआत्मपद में स्थितहुआ २ योगी विषय भोगकी प्राप्ति होने से न तो वह हर्ष को प्राप्त होता है और विषयों के न प्राप्त होने से या नष्ट होनेपर वह शोक को नहीं प्राप्त होता है क्योंकि आत्मसुख से अधिक और सुख नहीं है सो उस को नित्य प्राप्त है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

तज्ज्ञस्यपुण्यपापाभ्यां स्पर्शोह्यंतर्नजायते ॥ नह्याकाशस्यधूमेनदृश्यमानापिसंगतिः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्याम् स्पर्शः हि अन्तः न जायते न हि आकाशस्य धूमेन दृश्यमाना अपि संगतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तज्ज्ञस्य	= उस पद को जानने वाले के	हि	= क्योंकि
अन्तः	= अन्तःकरण का	आकाशस्य	= आकाश का
पुण्यपापाभ्याम्	= पुण्य और पापकेसाथ	संगतिः	= सम्बन्ध
स्पर्शः	= सम्बन्ध	दृश्यमाना	= देखाजाता हुआ
नजायते	= नहीं होता है	अपि	= भी
		धूमेन	= धूमके साथ
		न	= नहीं है

भावार्थ ॥

ज्ञानवान् विधिवाक्यों का भी किङ्कर नहीं होता है इसी वास्ते उस को पुण्य पापभी स्पर्श नहीं करते हैं जिस विद्वान्ने तत्पद और त्वम्पद के अर्थ को महावाक्योंद्वारा भागत्याग लक्षणा करके अभेद अर्थ को निश्चय कर लिया है उसके अन्तःकरण के धर्म्म जो पुण्य पाप हैं उन के साथ उसका सम्बन्ध किसी प्रकार नहीं होता है ॥ क्योंकि वह पुण्य

पापको अन्तःकरणका धर्म्म मानताहै अपने आत्माका नहीं मानता है जो अपने में मानता है उसी को पुण्य पापभी लगते हैं इस में एक दृष्टान्त कहते है ॥ एक पण्डित किसी ग्राम को जाताथा रस्ते में खेत के किनारे एक वृक्ष के नीचे वह बैठकर सुस्ताने लगा उस खेत में एक जाट हर जोतता था और उस के बैल हरके आगे चलते चलते जब खड़े होजातेथे तब वह जाट बैलोंको गालियां देता तेरे खसमकी लड़की को ऐसा करूं तेरे खसम के मुख में पेशाब करूं ॥ पण्डित ने जब उस को बैलों के प्रति गालियां देते देखा तब विचार करने लगा इन बैलों का खसम तो यह पुरुष आपही है अपनेको ही ये गालियां देरहा है परन्तु इस वार्ता को यह समझता नहीं है इस को समझा देना चाहिये ॥ तब पण्डितने उस जाट से कहा यह जो तू बैलों को गालियां देरहाहै ये गालियां किसको लगती हैं तब जाटने कहा जो साला गालियों को समझता है उसी को लगती हैं पण्डितजी चुप चलेगये जाटका तात्पर्य्य यह था मैं तो समझता नहीं हूं तू समझता है ये गालियां तेरेको ही लगती हैं ॥ (दार्ष्टान्त) अज्ञानी पाप पुण्य को अपने में मानता है इस वास्ते अज्ञानी को ही

पाप पुण्य लगते हैं ज्ञानी अपने में नहीं मानता है उन को अन्तःकरण का धर्म्म मानता है इस वास्ते उस को पाप पुण्य नहीं लगते हैं अथवा जिस को पाप पुण्यका विशेष ज्ञान होता है उसी को पाप पुण्य लगते हैं बालक को या पागल को पाप पुण्य का ज्ञान नहीं होता है इस वास्ते उन को भी पाप पुण्य नहीं लगते हैं ज्ञानवान् को भी पाप पुण्य का ज्ञान नहीं होता है क्योंकि अपने आत्मानन्द में मग्न रहताहै उसको भी पाप पुण्य नहीं लगते हैं इसी पर और दृष्टान्त कहते हैं जैसे आकाश का धूमके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है तैसे आत्मवित् का भी पुण्य पाप के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

आत्मैवेदंजगत्सर्वं ज्ञातंयेनमहात्मना ॥ यदृच्छयावर्त्तमानंतंनिषेद्धुमेतकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा एव इदम् जगत् सर्वम्

ज्ञातम् येन महात्मना यदृच्छया वर्त-
मानम् तम् निषेद्धुम् क्षमेत कः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
येनमहात्मना	= जिसमहात्माकरके	यदृच्छया	= प्रारब्धवशसे
इदम्सर्वम्	= यहसम्पूर्ण	तम्	= तिस
जगत्	= संसार	वर्तमानम्	= वर्तमान ज्ञानीको
आत्माएव	= आत्माही	निषेद्धुम्	= निषेधकरनेको
ज्ञातम्	= जानागयाहै	कः	= कौन
		क्षमेत	= समर्थ है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ अगर ज्ञानी कर्म्मों को करैगा तो उस को पुण्य पापकाभी सम्बन्ध जरूर होगा यह कैसे हो-सक्ता है कि वह कर्म्म करै पर उसको पुण्य पापका सम्बन्ध न हो ॥ उत्तर ॥ जिस विद्वान् ने दृश्य-मान सारे जगत् को अपना आत्मा जान लिया है उस को प्रारब्धवश से कर्म्मों में वर्तमान को कौन वाक्य प्रवृत्त करने में वा निषेध करने में समर्थ है

किन्तु कोई भी नहीं है॥ शारीरक भाष्य में कहा है॥ अविद्यावद्विषयोवेदः ॥ वेदवचन जो विधिनिषेध वाक्य हैं वे भी अज्ञानी के लिये हैं ज्ञानवान् के ऊपर उनकी आज्ञा नहीं है॥ स्मृति भी कहती है॥ प्रबोधनीयएवासौ सुप्तोराजेवबन्धुभिः ॥ जैसे बन्दीगण भाटलोग राजा के चरित्रों का वर्णन करते हैं तैसे वेद भी ज्ञानवान् के चरित्रों का वर्णन करते हैं इसी कारण ज्ञानवान् को पुण्य पाप भी स्पर्श नहीं कर सक्ता है॥ ४॥

मूलम्॥

आब्रह्मस्तंबपर्यन्ते भूतग्रामेचतुर्विधे॥ विज्ञस्यैवहिसामर्थ्यमिच्छानिच्छाविवर्जने॥ ५॥

पदच्छेदः॥

आब्रह्मस्तंबपर्यन्ते भूतग्रामे चतुर्विधे विज्ञस्य एव हि सामर्थ्यम् इच्छानिच्छाविवर्जने॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आब्रह्मस्तंबपर्यन्ते	= ब्रह्मासे चींटीपर्यन्त	इच्छानिच्छाविवर्जने	= इच्छा और अनिच्छाके त्याग विषें
चतुर्विधे	= चारप्रकारके	हि	= निश्चय करके
भूतग्रामे	= जीवोंकेसमूहमेंसे		
विज्ञस्यएव	= ज्ञानीको ही	सामर्थ्यम्	= सामर्थ्यहै

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ ज्ञानीकी प्रवृत्ति यदृच्छासे याने दैवइच्छासे होती है याकि अपनी इच्छासे होतीहै ॥उत्तर॥ ज्ञानीकी प्रवृत्ति यदृच्छासे होतीहै अपनी इच्छा से नहीं होती है ॥ ब्रह्मासे लेकर स्तंबपर्यंत यद्यपि इच्छा अनिच्छा हटाई नहीं जासकती है तथापि ब्रह्मज्ञानी में इच्छा अनिच्छा हटानेकी सामर्थ्यहै इसीवास्ते यदृच्छाकरके भोगोंमें प्रवृत्तहुआ२ या कर्मोंमें प्रवृत्त हुआ विधिनिषेधका किंकर नहीं होसक्ता है ॥ शुकदेवजीने भी कहा है ॥ भेदाभेदौसपदिगलितौ पुण्य

पापेविशीर्णे मायामोहौक्षयमुपगतौ नष्टसंदेहवृत्तेः ॥ शब्दातीतंत्रिगुणरहितं प्राप्यतत्त्वावबोधं निस्त्रैगुण्येप थिविचरतांकोविधिःकोनिषेधः ॥ १ ॥ जिस विद्वान् के आत्मज्ञानके प्रभाव से भेद अभेद यह दोनों वृत्तिज्ञान शीघ्रही नष्टहोगये हैं उसी के पुण्य और पापभी नष्टहोजातेहैं और माया औ मायाका कार्य्य मोह ये दोनों जिसके नाशहोगये हैं और शब्दआदि विषयों से और तीनों गुणों से रहित है जो और आत्मतत्त्व को जो प्राप्तहुआ है और तीनों गुणों से रहित होकर निर्गुणब्रह्मके मार्ग में विचरता रहताहै जो उसके लिये न कोई विधि है और न कोई निषेध है ॥ १ ॥ प्र०॥ अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतंकर्मशुभाऽशुभम् ॥ १ ॥ कियेहुये जो शुभअशुभकर्म हैं वे सब अवश्यही सबजीवोंको भोगनेपड़ते हैं तो फिर इनवाक्योंसे क्या प्रयोजन है ॥ उ० ॥ ये सब वाक्य अज्ञानी प्रति हैं ज्ञानीप्रति नहीं ऐसा वेदमें भी कहाहै ॥ तथाच श्रुतिः ॥ तस्यपुत्रादायमुपयान्ति सुहृदःसाधुकृत्यंद्विषंतःपापकृत्यम् ॥ १ ॥ जो विद्वान् शुभअशुभकर्मोंको करते हैं उसके द्रव्यको उसके पुत्र लेते हैं और उसके मित्र उसके पुण्यकर्मोंको लेतेहैं और द्वेषीउसके पापकर्मोंको लेलेते हैं वह आप पुण्य पापसे रहितहोकर मुक्त

होजाता है॥ तस्यतावदेवचिरंयावन्नविमोक्ष्ये॥ केवल उतनाही काल उस विद्वान्की मोक्षमें विलंब है जितने कालतक वह प्रारब्धकर्म के भोग से नहीं छूटता है॥ अथ संपत्स्ये॥ जब वह प्रारब्धकर्मों से छूटजाता है तब वह शरीररूपी उपाधि से रहितहोकर ब्रह्मसे अभेद्को प्राप्त होजाता है॥ तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूय निरंजनःपरमंसाम्यमुपैति॥ शरीरत्यागतेही विद्वान् पुण्य पापसे रहितहोकर और भाविजन्मकर्म से रहित होकर ब्रह्ममें लीन होजाता है॥ नतस्यप्राणाउत्क्रामन्ति॥ और उस विद्वान् के प्राण लोकांतर में गमन नहीं करते हैं॥ अत्रैव समवलीयन्ते॥ इसी जगह अपने कारण में लय होजाते हैं॥ इसतरह के अनेक श्रुतिवाक्य हैं जो विद्वान् के कर्मों के फलको निषेध करते हैं और गीतामें भी भगवान् ने कहा है कि ज्ञानरूपी अग्नि करके उसके सब कर्म दग्ध होजाते हैं॥ प्र०॥ कारणके नाश होने से कार्य्यकाभी नाश होजाता है जैसे तन्तुवोंके नाश होनेसे पटका भी नाश होजाता है तैसे ही आत्मज्ञान करके अज्ञान के नाश होने से अज्ञानका कार्य्य जो विद्वान् का शरीर है उसकाभी नाश होजाना चाहिये ऐसी शंका किसी नैयायिक की है॥ इसके समाधान को कहते हैं॥

उ० ॥ कारण अज्ञानके नाशसमकाल ही विद्वान् के शरीर इन्द्रियादिकों का भी नाश होजाता है अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि करके विद्वान्के देहादिक सब भस्म होजाते हैं पर दग्धहुये भी उसके कामको देते हैं जैसे महाभारत में ब्रह्मास्त्र करके अर्जुन का रथ भस्म होगयाथा तथापि कृष्णजी की शक्तिसे वह रथ भस्म हुआ २ भी चलता फिरता था तैसे आत्मज्ञान करके कारणके सहित देहादिक विद्वान्के भस्म हुये २ भी प्रारब्धरूपी शक्ति करके अपने २ कार्य्य को करते रहते हैं अथवा नैयायिकके मतमें कारण के नाश से एकक्षणपीछे कार्य्य का नाश होता है जैसे तन्तुवों के नाश से एकक्षणपीछे पट का नाश होता है तैसेही अज्ञानरूपी कारणके नाशके एकक्षणपीछे विद्वान् के देहादिकों का भी नाश होता है यदि कहो देहादिक तो ज्ञानकी उत्पत्तिसे पीछे अनेक वर्षों तक रहतेहैं सो नहीं जैसे अल्पकालतक रहनेवाले पट का नाशभी अल्प है तैसे ही अनादिकालके अज्ञान का कार्य्य जो देहादिक हैं उनके नाशके लिये दीर्घकाल लगताहै पूर्वोक्तयुक्ति और प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि ज्ञानी के ऊपर विधिनिषेधवाक्यों की आज्ञा नहीं है किंतु अज्ञानी के ऊपरही है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

आत्मानमद्वयंकश्चिज्जानातिजगदीश्वरम्॥ यद्वेत्तितत्सकुरुतेनभयंतस्यकुत्रचित् ॥६॥

पदच्छेदः ॥

आत्मानम् अद्वयम् कश्चित् जानाति जगदीश्वरम् यत् वेत्ति तत् सः कुरुते न भयम् तस्य कुत्रचित् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
कश्चित्	कोई एक
आत्मानम्	आत्मा याने जीवको
च	और
जगदीश्वरम्	ईश्वर को
अद्वयम्	अद्वैत
जानाति	जानता है
यत्	जिस कर्म को करने योग्य
वेत्ति	जानता है
तत्	उसको
सः	वह

कुरुते = करता है	भयम् = भय
तस्य = उस आत्म ज्ञानीको	कुत्रचित् = कहीं
	न = नहीं है

भावार्थ ॥

अद्वैतज्ञानकरके द्वैत का बाध होजाता है और द्वैतके बाधहोने से भय का कारण अज्ञान विद्वान्को नहीं रहता है तत्पद और त्वंपदके लक्ष्यार्थ का भागत्यागलक्षणाकरके और महावाक्यों करके अभेदता से जो जानना है वही अद्वैतज्ञान है जिसको अद्वैत ज्ञान प्राप्त है वह विद्वान् है वही बाधितानुवृत्ति करके संपूर्ण व्यवहारों को करताभी है पर उसको किसी का भय नहीं होता है क्योंकि उसके भय का द्वैतज्ञान का बाध होगया है इसी वार्ताको श्रुति भगवती भी कहती है॥ द्वितीयाद्वैभयंभवति १॥ द्वैतसे ही निश्चय करके भय होता है ॥ उदरमंतरंकुरुतेऽथ तस्यभयंभवति ॥ जो थोड़ासा भी भेद करता है उस को भय होता है ॥ अन्योसावहमन्योस्मि नसवेदयथा पशुः ॥ जो अपने से ब्रह्मको भिन्न जानकर उपासना करता है वह पशुकी तरह ब्रह्मको नहीं जानता है ॥ ब्रह्मवित्ब्रह्मैवभवति ॥ ब्रह्मवित्ब्रह्मरूपहीहोता है ॥

तरतिशोकमात्मवित् ॥ आत्मवित् संसाररूपी शोक से तरजाताहै इन श्रुतिवाक्यों से भी सिद्ध होता है कि विद्वान्को किसी दूसरेका भी भय नहीं होताहै क्योंकि उसकी दृष्टि में कोई भी दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥

इति भाषाटीकाचतुर्थप्रकरणंसमाप्तम् ॥

पांचवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

नतेसङ्गोऽस्तिकेनापि किंशुद्धस्त्यक्तुमिच्छसि ॥ संघातविलयंकुर्वन्नेवमेवलयंव्रज ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

न ते संगः अस्ति केन अपि किम् शुद्धः त्यक्तुम् इच्छसि संघातविलयम् कुर्वन् एवम् एव लयम् व्रज ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ते	तेरा	त्यक्तुम्	त्यागना
केनअपि	किसी के साथ	इच्छसि	चाहता है
संगः	संग	एवमएव	इसप्रकार
न	नहीं	संघातविलयम्	देहाभिमानको त्याग
अस्ति	है	कुर्वन्	करताहुवा
अतः	याते	लयम्	मोक्षको
शुद्धः	तू शुद्ध है	व्रज	प्राप्त हो
किम्	किसको		

भावार्थ ॥

चतुर्थप्रकरणमें शिष्यकी परीक्षा के लिये उपदेश कियाथा अब उसकी दृढ़ता लिये चारश्लोकों करके लयका उपदेश करतेहैं अष्टावक्रजी कहते हैं हे शिष्य! तू शुद्ध बुद्धस्वरूप है तेरा देह गेहादिकों के साथ अहंकार और ममकार का आस्पदरूप करके सम्बन्ध नहीं है जब तू असंग है और शुद्ध है तब फिर तेरे विषे त्याग और ग्रहण कहां है इसवास्ते अब तू देहसंघात को लय कर यानें मैं देहहूं या मेरा यह देहहै ऐसे अहंकारको भी दूर करके अपने स्वरूपमें स्थित हो॥ १॥

मूलम् ॥

उदेतिभवतोविश्वं वारिधेरिवबुद्बुदः ॥ इतिज्ञात्वैकमात्मानमेवमेवलयं व्रज ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

उदेति भवतः विश्वम् वारिधेः इव बुद्बुदः इति ज्ञात्वा एकम् आत्मानम् एवम् एव लयम् व्रज ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भवतः	= तुझ से	एकम्	= एक
विश्वम्	= संसार	आत्मानम्	= आत्मा को
उदेति	= उत्पन्न होताहै	एवम्एव	= ऐसा
इव	= जैसे	ज्ञात्वा	= जानकरके
वारिधेः	= समुद्र से	लयम्	= शान्ति को
बुद्बुदः	= बुद्बुद	व्रज	= प्राप्त हो
इति	= इसप्रकार		

भावार्थ ॥

जैसे समुद्र में अनेक बुद्बुदे तरंग उत्पन्न होते हैं फिर समुद्र में ही लय होजाते हैं समुद्र से भिन्न नहीं हैं तैसे ही मनके संकल्प से यह जगत् उत्पन्नहुआ है और मनके ही लय होने से जगत् लय होजाता है देवीभागवत में कहाहै ॥ शुद्धो मुक्तःसदैवात्मा नवैबध्येतकर्हिचित॥ बंधमोक्षौमनस्संस्थौतस्मिन्प्रशान्तेप्रशाम्यति ॥ १ ॥ आत्मा सदैवकाल शुद्ध और मुक्त है वह कदापि बंधको नहीं प्राप्तहोताहै बंध और मोक्ष दोनों मनके धर्म हैं मनके शान्त होने से बंध और मोक्ष का नाम भी नहीं रहता है॥ आत्मा में मनके लय करने से साराजगत् लय को प्राप्त होजाता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

प्रत्यक्षमप्यवस्तुत्वाद्विश्वंनास्त्यम-
लेत्वयि ॥ रज्जुसर्पइवव्यक्तमेवमेवल

नहीं त्याग और ग्रहण ॥
को लय कर याने मैं देह च्छेदः ॥
कारको भी दूर करके अप

अवस्तुत्वात् विश्वम्

न अस्ति अमले त्वयि रज्जुसर्पः इव व्यक्तम् एवम् एव लयम् व्रज ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
व्यक्तम्	= दृश्यमान	रज्जुसर्पः	= रज्जुसर्प की
विश्वम्	= संसार	इव	= नाईं भी
प्रत्यक्षम् अपि	= प्रत्यक्ष होताहुआभी	न अस्ति	= नहीं है
अवस्तुत्वात्	= वास्तव से	एवम्एव	= इसीलिये
अमले	= मलरहित	लयम्	= शान्तिको
त्वयि	= तुझ विषे	व्रज	= प्राप्तहो तू

भावार्थ ॥

प्र० ॥ प्रत्यक्षप्रमाणकरके रज्जु बिषे सर्पादिकों का भेद प्रतीत होता है उनका कैसे लय होसक्ता है क्योंकि जो वस्तु प्रत्यक्षप्रमाण का विषय है उसका लय नहीं होता है ॥ उ० ॥ प्रत्यक्षप्रमाण का जो विषय है उसका भी बाध शास्त्रकरके होजाता है ॥ जैसे चन्द्रमा का मंडल प्रत्यक्षप्रमाणसे तो एकबित्ताभर का दिखाई देता है परंतु ज्योतिषशास्त्र में वह दश

हज़ार योजन का लिखा है तिस शास्त्र करके चित्ताभर का नहीं मानाजाता है तैसे ही प्रत्यक्षप्रमाण का विषय जो जगत् है वह भी श्रुतिवाक्योंकरके बाधित हो जाता है क्योंकि जगत् वास्तवसे तीनोंकाल में नहीं है और जैसे स्वप्न की सृष्टि और गंधर्वनगरादिक तीनों कालमें नहींहैं तैसे ही यह जगत् भी वास्तव से तीनों काल में नहीं है ऐसा चिन्तनही जगत् के लय का हेतु है ॥ ३ ॥ मूलम् ॥

समदुःखसुखःपूर्ण आशानैराश्य योःसमः ॥ समजीवितमृत्युःसन्नेवमे वलयंव्रज ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

समदुःखसुखः पूर्णः आशानैराश्ययोः समः समजीवितमृत्युः सन् एवम् एव लयम् व्रज ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
समदुःखसुखः	= तुल्य है दुःख और सुख जिसको	पूर्णः	= पूर्ण है जो
		आशानैराश्ययोः	= आशा निराशामें

समः = बराबर है जो	एवम्एव = ऐसा
सम जीवित मृत्युः = तुल्य है जीना और मरना जिसको	सन् = होता हुआ
	लयम् = ब्रह्मदृष्टिको
	ब्रज = प्राप्तहो तू

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! तू आत्मानंद करके पूर्ण है दैववश्य से शरीरमें उत्पन्न हुये जो सुख दुःख हैं उन में भी तू पूर्ण है आशा निराशा में भी तू सम है जीने मरने में भी तू सम है तू निर्विकार है सुख दुःखादिक सब अनात्मा के धर्म हैं और मिथ्या हैं क्योंकि इनके धर्मी जो देहादिक हैं वे भी सब मिथ्याहैं उत्पत्तिसे पूर्व जो देहादिक नहीं थे और नाशसे उत्तर भी नहीं रहते हैं वे बीच में भी प्रतीतमात्रहैं जो वस्तु उत्पत्तिसे पूर्व और नाशसे उत्तर न हो वह बीचमें भी वास्तव से नहीं होती है केवल प्रतीतमात्रही होती है जैसे स्वप्न के पदार्थ और रज्जु बिषे सर्पादिक मिथ्याहैं तैसे यह जगत् भी मिथ्या है वास्तव से तीनों कालमें नहीं है केवल ब्रह्मही ब्रह्म है ॥ सर्वंखल्विदंब्रह्म ॥ यह संपूर्ण जगत् निश्चय करके ब्रह्मरूपही है ऐसे चिंतन का नामही लय चिंतन है ॥ ४ ॥ इति श्रीअष्टावक्रगीतायांभाषाटीकायां पंचमंप्रकरणंसमाप्तम् ॥ ५ ॥

छठवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

आकाशवदनन्तोहं घटवत्प्राकृतञ्जगत् ॥ इतिज्ञानंतथैतस्यनत्यागोन ग्रहोलयः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

आकाशवत् अनन्तः अहम् घटवत् प्राकृतम् जगत् इति ज्ञानम् तथा एतस्य न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आकाशवत्	आकाशवत्	तथा	इसकारण
अहम्	मैं	एतस्य	इसका
अनन्तः	अनन्त हूं	न त्यागः	न त्याग है
जगत्	संसार	च	और
घटवत्	घटवत्	न ग्रहः	न ग्रहण है
प्राकृतम्	प्रकृतिजन्यहै		

च = और | इतिज्ञानम् = ऐसाज्ञान
न लयः = न लय है | है

भावार्थ ॥

पूर्वले पांचवें प्रकरण करके शिष्यकी परीक्षा के वास्ते गुरुने लययोगरूप चिंतनका उपदेश किया अब इस छठे प्रकरण में गुरु अपने अनुभव को दिखाताहुआ लयादिकों के असंभव को दिखाता है कि मेरे में लय चिंतनरूप योगभी नहीं बनता है ॥ लय उसका होता है जो उत्पत्तिवाला पदार्थ है जिसकी उत्पत्तिही तीनों कालमें नहीं है उसका लय भी नहीं है जैसे बंध्याका पुत्र और शशेके सींग की उत्पत्ति नहींहै और न उसका लय है तैसे ही जगत् भी तीनोंकाल में न उत्पन्न हुआहै न होगा और न वर्त्तमान काल में है तब उसका लय चिंतन कैसे हो सक्ता है किंतु कदापि नहीं होसक्ता है ॥ प्र० ॥ यदि जगत् उत्पन्नही नहीं हुआ है तब प्रतीत क्यों होता है॥ उ० ॥ मांडूक्यकारिका में कहाहै ॥ आदावन्तेच यन्नास्ति वर्तमानेपितत्तथा॥वितथैःसदृशाःसन्तोऽवितथाइवलक्षिताः॥ १ ॥ स्वप्नमायेयथादृष्टे गंधर्वनगरंतथा ॥ तथाविश्वमिदंदृष्टं वेदांतेषुविचक्षणैः ॥ २ ॥ जो

वस्तु उत्पत्ति से पहले नहीं है और नाशसे उत्तरभी नहीं है वह वर्तमानकाल में भी नहीं है ॥ परंतु मिथ्याहुई २ सत्य की तरह वर्त्तमान काल में प्रतीत होती है ॥ १ ॥ जैसे स्वप्न के हाथी घोड़े और इन्द्रजालीकरके रचेहुये पदार्थ और गन्धर्वनगर ये सब विनाहुयेही प्रतीत होते हैं तैसे यह जगत्भी विनाहुये ही प्रतीत होता है ज्ञानियोंने ऐसा अनुभव करके वेदांतशास्त्रद्वारा देखा है कि केवल अद्वैत अनंतस्वरूप आत्माही सत्य है और सारा प्रपंच प्रतीतिमात्रही है वास्तव से नहीं है ॥ प्र० ॥ अनंतस्वरूप आत्मा का देहादिकों में निवास कैसे होसक्ता है बड़ी वस्तु छोटी वस्तु के भीतर नहीं आसक्ती है ॥ उ० ॥ जैसे घटमठादिक आकाशके निवासके स्थानहैं और भेदक भी हैं तैसेही देहादिक भी अनंतस्वरूप आत्माके निवासका स्थान है और भेदक भी है वास्तवसे तो यह जगत् मिथ्या माया का कार्य होने से मिथ्या है इस प्रकार वेदांत करके सिद्ध जो ज्ञान है वही अनुभव रूप होकर जगत्के मिथ्यात्व में प्रमाण है इसवास्ते लयचिंतनादिक भी जगत् के नहीं बनसक्ते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

महोदधिरिवाहंस प्रपञ्चोवीचिस

न्निभः ॥ इति ज्ञानंतथैतस्य न त्यागो न ग्रहोलयः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

महोदधिः इव अहम् सः प्रपञ्चः वीचिसन्निभः इति ज्ञानम् तथा एतस्य न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	मैं	च	और
महोदधिःइव	समुद्र के सदृशहूं	न	न
सः	यह	ग्रहःलयः	ग्रहण और लय है
प्रपंचः	संसार	इति ज्ञानम्	यह ज्ञानहै यानी इस प्रकार के विचार को ज्ञान कहते हैं
वीचिसन्निभः	तरंगों के तुल्य है		
तथा	इसकारण		
न	न		
एतस्यत्यागः	इसका त्याग है		

भावार्थ ॥

प्र० ॥ घटाकाश के दृष्टांतसे तो देह और आत्माके भेदकी शंका उत्पन्न होतीहै जैसे आकाशसे घट भिन्न है और घटसे आकाश भिन्न है तैसे आत्मासे देह भिन्न है और देहसे आत्मा भिन्नहै दोनों को भिन्न २ होने से ही द्वैत साबित हुआ अद्वैत आत्मा तो साबित न हुआ ॥ उ० ॥ जनकजी कहते हैं आत्मा महान् समुद्र की तरह है प्रपंच उसमें लहरों की तरह है इसप्रकार का अनुभवरूप ज्ञानही अद्वैत में प्रमाण है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

अहंसशुक्तिसङ्काशो रूप्यवद्विश्वकल्पना ॥ इतिज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् सः शुक्तिसंकाशः रुप्यवत् विश्वकल्पना इति ज्ञानम् तथा एतस्य न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सः	= वह	तथा	= इसकारण
अहम्	= मैं	एतस्य	= इसका
शुक्तिसंकाशः	= शुक्ति तुल्यहूं	न त्यागः	= न त्याग है
विश्वकल्पना	= विश्व कीकल्पना	न लयः	= न लयहै
रूप्यवत्	= रजत के समान है	इतिज्ञानम्	= यही ज्ञान है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ जैसे वीचियें सब समुद्र की विकार हैं और समुद्र विकारी है तैसे आप के दृष्टान्तसे देह आत्माका विकारहै और आत्माविकारी साबित होताहै॥ उ०॥अष्टावक्रजी कहते हैं विकार विकारीभाव सावयव पदार्थों में होते हैं निर्वयव पदार्थ में नहीं होतेहैं इस लिये तुम्हारा दृष्टान्त सार्थक नहींहै मेरे दृष्टान्तको सुनो जैसे शुक्ति सत्यरूप है और रजत उस में मिथ्या है तैसे ही देहादिक समग्र प्रपंच का अधिष्ठान रूप मैंही सत्यहूं और प्रपंच सारा मेरे में कल्पित रजतकी

तरह मिथ्याहै इसीकारण द्वैत तीनोंकालमें सिद्ध नहीं होसक्ता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

अहंवासर्वभूतेषु सर्वभूतान्यथोमयि ॥ इतिज्ञानंतथैतस्य नत्यागोनग्रहोलयः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् वा सर्वभूतेषु सर्वभूतानि अथो मयि इति ज्ञानम् तथा एतस्य न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	मयि	= मुझ विषे
वा	= निश्चयकरके	+सन्ति	= हैं
सर्वभूतेषु	= सब भूतों विषे हूं	तथा	= इसकारण से
अ...		एतस्य	= इसका
विश्वकल्पने...		न त्यागः	= न त्यागहै
न त्यागः न...		न ग्रहः	= न ग्रहणहै

च = और	इतिज्ञानम् = इसप्रकार
न लयः = न लय है	का ज्ञान है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ शुक्ति में रजत के दृष्टांत करके भी आत्मा को परिच्छिन्नताकी शंका होती है क्योंकि जैसे शुक्ति परिच्छिन्न और एकदेशवर्त्तिहै तैसही आत्मा भी परिच्छिन्न और एकदेशवर्त्ति सिद्धहोगा॥ उ० ॥ जनक जी कहते हैं मैंही सम्पूर्ण भूतों में व्यापकरूप करके मणियों में सूतकी तरह वर्तताहूं मैंही सबका अधिष्ठानरूप होकर सत्तास्फूर्ति देंनेवालाहूं मेरे मेंही सारा जगत् आकाशमें नीलता की तरह अध्यस्त है इस प्रकारका वेदांतवाक्यों करके सिद्धज्ञान याने अनुभव आत्मा के अद्वैत होनेमें प्रमाण है और जब मैंहूं तो मेरेमें ग्रहण त्याग और लय चिंतनादिक भी नहीं बनते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीताभाषाटीकायांशिष्यप्रोक्तमुत्तरचतुष्टयंनामषष्ठंप्रकरणंसमाप्तम् ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधौ विश्वपोतइत स्ततः ॥ भ्रमतिस्वान्तवातेन नममा स्त्यसहिष्णुता ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहाम्भोधौ विश्वपोतः इतः ततः भ्रमति स्वान्तवातेन न मम अस्ति असहिष्णुता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मयि अनन्त महाम्भोधौ	मुझअनंत महासमुद्र विषे	इतःततः	इधरउधरसे
		भ्रमति	भ्रमता है
		परन्तु	परन्तु
विश्वपोतः	विश्वरूपीनौका	मम	मुझको
		असहिष्णुता	असहनशीलता
स्वांतवातेन	मनरूपी पवनकरके	न अस्ति	नहीं है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यदि लय चिंतन नहीं होगा तो सांसारिक विक्षेपभी बनेरहैंगे वे कदापि दूर नहीं होंगे ॥ उ० ॥ बने रहैं मेरी क्या हानि है अनंत महान् समुद्ररूपी मुझ आत्मा में यह विश्वरूपी नौका मनरूपी पवन करके इधर उधर भ्रमती फिरती है उसका भ्रमण करना मेरे को असहन नहीं है जैसे समुद्र में पवन करके इधर उधर भ्रमती हुई नौका समुद्र को क्षोभ नहीं करसक्ती है तैसे मनरूपी पवन करके इधर उधर भ्रमती हुई विश्वरूपी नौका भी समुद्ररूपी आत्माको क्षोभ नहीं करसक्ती है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधौ जगद्वीचिःस्वभावतः ॥ उदेतुवास्तमायातु नमेवृद्धिर्नचक्षतिः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहाम्भोधौ जगद्वीचिः स्वभावतः उदेतु वा अस्तम् आयातु न मे वृद्धिः न च क्षतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मयि अनन्त महाम्भोधौ	= मुझ अनंत महा समुद्र विषे	अस्तम्	= क्षय को
		आयातु	= प्राप्त हो
		मे	= मेरी
		न	= न
जगद्वीचिः	= जगत् रूपीकल्लोल	वृद्धि	= वृद्धि है
स्वभावतः	= स्वभाव से	च	= और
उदेतु	= उदयहों	न	= न
वा	= और चाहें	क्षतिः	= हानि है

भावार्थ ॥

पूर्ववाले वाक्यकरके जगत् के व्यवहारको अनिष्टताका अभावकहा अब इस वाक्यकरके जगत् की उत्पत्ति आदिकों को भी अनिष्टता का अभाव कथन करते हैं ॥ जनकजी कहते हैं ॥ विनाश से रहित व्यापक आत्मारूपी समुद्र में जगत्रूपी लहरें अनेक उदय होती हैं और फिर अस्त होजाती हैं उन के उदयहोने से आत्मा की वृद्धि नहीं होती है और उन के अस्तहोने से आत्माकी कोई हानि नहीं होतीहै

जैसे समुद्रकी लहरों की उदय अस्त होने से समुद्र की कुछ भी हानि नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधौ विश्वंनामवि कल्पना ॥ अतिशान्तोनिराकार एत देवाहमास्थितः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहाम्भोधौ विश्वम् नाम विकल्पना अतिशान्तः निराकारः एतत् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मयि	मुझ	अहम्	मैं
अनन्त महा म्भोधौ	अनन्त महासमुद्र विषे	अतिशान्तः	अत्यन्त शान्तहूं
नाम	निश्चयकरके	निराकारः	निराकारहूं
विश्वम्	संसार	च	और
विकल्पना	कल्पनामात्र है	एतत्एव	इसी आत्माके
		आस्थितः	आश्रयहूं

भावार्थ ॥

समुद्र और लहरके दृष्टांतसे किसीको ऐसा भ्रम न होजावै कि आत्मा का विकार जगत् है इस भ्रमके दूर करने के लिये जनकजी दूसरी रीतिसे कहते हैं॥ मुझ महान् समुद्ररूपी आत्मा में जो जगत् की कल्पना है सो भ्रममात्रही है वास्तवसे नहीं है क्योंकि मेरा अनंतस्वरूप निराकार है निराकार से साकार की उत्पत्ति बनती नहीं है जब कि आत्मा में जगत् की वास्तव से उत्पत्ति नहीं बनती है तो मैं प्रपंच से रहित शांतरूप होकर स्थितहूं लय योगादिक भी मेरे को करना उचित नहीं हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

नात्माभावेषुनोभावस्तत्रानन्तेनिरञ्जने ॥ इत्यसक्तोऽस्पृहःशान्तएतदेवाहमास्थितः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

न आत्मा भावेषु नो भावः तत्र अनन्ते निरंजने इति असक्तः अस्पृहः शान्तः एतत् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा	आत्मा
भावेषु	देहआदिबिषे
न	नहीं है
+ च	और
भावः	देहादि
तत्र	उस
अनन्ते	अनन्त
निरंजने	निर्द्वन्द्व आत्मा बिषे
नो	नहीं है
इति	इसप्रकार
असक्तः	संगरहित
शान्तः	शान्तहुआ
अहम्	मैं
एतत्एव	इसही आत्माके
आस्थितः	आश्रित हूं

भावार्थ ॥

आत्मा देहादिभावों में आधेय याने आश्रितरूप करके नहीं है क्योंकि आत्मा व्यापक है देहादिक सब परिच्छिन्न हैं व्यापक परिच्छिन्न के आश्रित नहीं होता है और आत्मा निराकार होने से देहादिकों की उपाधिभी नहीं होसक्ता है क्योंकि आत्मा सत्य है देहादिक सब मिथ्या हैं सत्यवस्तु मिथ्यावस्तुकी उपाधि नहीं होसक्ती है और देह इन्द्रियादिक आत्मा की

उपाधि भी नहीं होसक्ते हैं क्योंकि आत्मा अनंत और निरंजन है देहादिक अन्त नाशवान् हैं इसी कारण आत्मा सम्बन्ध से रहित है इच्छा आदिकों से भी रहित है आत्मा शान्तस्वरूप है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

अहोचिन्मात्रमेवाहमिन्द्रजालोपमंजगत् ॥ अतोममकथंकुत्रहेयोपादेयकल्पना ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो चिन्मात्रम् एव अहम् इन्द्र-जालोपमम् जगत् अतः मम कथम् कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहो	आश्चर्य है कि	जगत्	संसार
अहम्	मैं	इन्द्रजालोपमम्	इन्द्रजाल की तरह है
चिन्मात्रम्	चैतन्यमात्र हूं	अतः	इसलिये
		मम	मेरी

ग़ोपादेय कल्पना = हेय और उपादेय कीकल्पना	कथम् = क्योंकर
	च = और
	कुत्र = किसमेंहो

भावार्थ ॥

विद्वान् में इच्छा आदिक भी स्वतः नहीं होते हैं इसमें जो कारणहै उसको कहते हैं॥ जनकजी कहते हैं मैं चैतन्यस्वरूप हूं और संपूर्ण जगत् इन्द्रजाल के तुल्य मेरी सत्ताके बल और अपनी सत्तासे रहित प्रतीत होता है चूंकि जगत् की अपनी सत्ता कुछ भी नहीं है इसवास्ते मेरेको किसी पदार्थ में भी किसी प्रकारकरके त्याग और ग्रहण की बुद्धि नहीं होती है जो पुरुष जगत् के पदार्थों को सत्यमानता है उसीकी ग्रहण और त्यागबुद्धि उनमें होती है॥ ५॥

इतिश्रीअष्टावक्रभाषाटीकायांसप्तमप्रकरणंसमाप्तम् ७॥

आठवां अध्याय॥

मूलम्॥

तदाबन्धोयदाचित्तं किञ्चिद्वांछति शोचति॥ किञ्चिन्मुञ्चतिगृह्णातिकिञ्चि हृष्यतिकुप्यति॥ १॥

पदच्छेदः॥

तदा बन्धः यदा चित्तम् किञ्चित् वाञ्छति शोचति किञ्चित् मुञ्चति गृह्णाति किञ्चित् हृष्यति कुप्यति॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब	मुञ्चति	= त्यागताहै
चित्तम्	= मन	किञ्चित्	= कुछ
वाञ्छति	= चाहता है	गृह्णाति	= ग्रहण करताहै
किंचित्	= कुछ	हृष्यति	= प्रसन्न होताहै
शोचति	= सोचताहै		
किञ्चित्	= कुछ		

कुप्यति = दुःखित होताहै	तदा = तब
	बन्धः = बन्ध है

भावार्थ ॥

पूर्वले ७ प्रकरणों करके अष्टावक्रजीने सर्वप्रकार से जनकजीके अनुभवकी परीक्षाकरली अब इस आठवें प्रकरणमें चारश्लोकों करके अपने शिष्य के अनुभवकी श्लाघाको करते हैं॥ हे जनक! जो तूने पूर्वकहाहै कि मुझ अनंतस्वरूप आत्मामें त्याग और ग्रहण करनेकी कल्पना नहीं है सो तूने ठीक कहाहै क्योंकि जब चित्त विषयों की इच्छावाला होकर किसी पदार्थ की प्राप्तिकी इच्छा करता है और उसके अप्राप्त होने से फिर सोच करता है और कष्टहोताहै तब तिसके त्यागकी इच्छा करता है और जब चित्तमें लोभ उत्पन्न होता है तब ग्रहणकी इच्छा करता है पदार्थ की प्राप्ति होनेपर हर्ष को प्राप्तहोता है अप्राप्ति होनेपर क्रोधित होता है इसप्रकार जब कि अनेक वासनों करके चित्त युक्तहोताहै तब जीवको बन्ध होता है योगवासिष्ठमें भी कहा है॥ स्नेहेनधनलोभेनलाभेनमणियोषिताम्॥ अपातरमणीयेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥१॥ स्त्रीपुत्रादिकों में स्नेहकरके धनके लोभकरके मणियें

और स्त्री आदिकों के लाभकरके चित्त दीनताको प्राप्त होता है॥ बंधोहि वासनाबंधो मोक्षःस्याद्वासनाक्षयः॥ वासनास्त्वंपरित्यज्यमोक्षार्थित्वमपित्यज॥ २॥ चित्तमें अनेकप्रकारके भोगोंकी वासनाही पुरुष के बंधनका कारण है समग्ररूप से वासनाके क्षयहोजाने का नाम ही मोक्ष है हे रास! जबतुम वासनाको त्यागकरोगे और मोक्ष की इच्छा न करोगे तब सुखीहोवोगे॥ २॥ प्र०॥ आपने कहाहै जबतक चित्तमें वासना भरी है तबतक इसकी मुक्ति कदापि नहीं होती है सो संसार में निर्वासनपुरुष तो कोई भी नहीं दिखाई देता है क्योंकि जितने गृहस्थाश्रमी हैं उनके चित्तमें स्त्री पुत्र धनादिकों की प्राप्तिकी वासना भरीहैं यदि कोई पुरुष ईश्वरका स्मरण और दानादिकों को करता है तो उसके चित्तमें यही कामना रहती है कि मेरेधनादिक सर्वदाकाल बनेरहैं निर्वासनहोकर कोई भी नहीं करता है और जितने कि त्यागी साधु महात्मा कहलाते हैं उनके चित्तमें भी अनेक प्रकारकी कामना भरी हैं कोई मठों को बनाता है कोई सेवकी को बढ़ाता है निर्वासन तो उनमें भी कोई नहीं दिखाई देता है अगर निर्वासन होवैं तो वेषोंको और चेलों को और ंको क्यों बढ़ावें और क्यों प्रपंचको फैलावैं सब

कोई प्रपंचको फैलाते हैं क्या गृहस्थी क्या संन्यासी इस हालतमें कोई ज्ञानी भी नहीं साबित होताहै ज्ञानी के अभावहोने से मुक्तिका भी अभावही सिद्धहोताहै ॥ उ० ॥ जैसे एक वन में एकही सिंह रहता है और स्यार मृगादिक लाखों रहते हैं तैसेही संसाररूपी अथवा गृहस्थाश्रमरूपी अथवा संन्यासाश्रमरूपी वन में वासना से रहित ज्ञानवान् कोई एक बिरला ही होता है और वासना से भरेहुये अनेक होते हैं जैसे सिंहके मारेहुये शिकार को स्यारादिक खाते हैं तैसे निर्वासना पुरुषोंके चिह्नों को धारणकरके अर्थात् ज्ञानकी बातें सुनाकरके और वैराग्यादिकों को दिखलाकर बहुत से मूर्खों को वञ्चक संन्यासी या गृहस्थ आचार्यादिक ठगते हैं वेही स्यार संसार के हैं इसमें एक दृष्टान्तको कहते हैं एकग्राममें जुलाहे बसते थे उन्हों ने आपस में एकदिन सलाहकिया चलो रात्रि को क्षत्रियों के ग्रामको लूटलावैं वह जुलाहे सब मिलकर रात्रि को क्षत्रियों के ग्रामको लूटने गये जब क्षत्रियलोक हथियार लेकर जुलाहोंके मारने को दौड़े तब जुलाहे सब भागे उनमेंसे एक जुलाहे ने कहा भाइयो भागेतो जातेहीहो भला मारो २ तो कहतेचलो वह सब जुलाहे भागतेजाते और मारो २

भी करते जातेथे दार्ष्टांतमें यहहै कि बहुतसे बनावटके ज्ञानी ज्ञानके साधनों से भागे तो जाते हैं पर औरों से ऐसा कहते जाते हैं कि वासनाको त्यागो ज्ञानको धारणकरो सब संसार मिथ्या है ऐसे दम्भी ज्ञानी नहीं होसक्ते हैं जो समग्रवासनों से रहित हैं वेही ज्ञानी हैं वासनावालाही बन्धको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

तदामुक्तिर्यदाचित्तं नवाञ्छतिनशोचति । नमुञ्चतिनगृह्णाति नहृष्यति नकुप्यति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

तदा मुक्तिः यदा चित्तम् न वाञ्छति न शोचति न मुञ्चति न गृह्णाति न हृष्यति न कुप्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब	नशोचति	= नशोचता है
चित्तम्	= मन		
नवाञ्छति	= नचाहता है	नमुञ्चति	= नत्यागता है

नगृह्णाति = नग्रहणक- रता है	न = न
नहृष्यति = नप्रसन्नहो ता है	कुप्यति = दुःखित होताहै
च = और	तदा = तब भी
	मुक्तिः = मुक्तिहै

भावार्थ ॥

जिसकालमें चित्त न भोगोंकी प्राप्तिकी इच्छा करता है और न शोकों के त्यागकी इच्छा करता है अर्थात् पदार्थ के पानेपर न उसको हर्ष होता है और न प्यारे सम्बन्धियों के नष्ट या वियोग होनेपर शोक है एकरस सदा ज्योंका त्यों बनारहता है उसीकाल में वह पुरुष मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

तदाबन्धोयदाचित्तं सक्तङ्कास्वपि दृष्टिषु। तदामोक्षोयदाचित्तमसक्तंसर्व दृष्टिषु ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

तदा बन्धः यदा चित्तम् सक्तम्

कासु अपि दृष्टिषु तदा मोक्षः यदा चित्तम् असक्तम् सर्वदृष्टिषु ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब	चित्तम्	= मन
चित्तम्	= मन	सर्वदृष्टिषु	= सब दृष्टियोंमेंयाने सब विषयोंमें से किसी भी विषयमें
कासु	= किसी	असक्तम्	= नहींलगा है
दृष्टिषु	= दृष्टियोंमेंयाने विषय में	तदा	= तब
सक्तम्	= लगा हुआ है	मोक्षः	= मुक्त है
तदा	= तब		
बन्धः	= बन्ध है		
अपि	= और		
यदा	= जब		

भावार्थ ॥

१-२ एक वाक्य करके बन्ध के लक्षण को कहा
नवाग्छाति = के मुक्तिके लक्षणको कहा अब एक
है

ही वाक्य करके बन्ध मोक्ष दोनों को कथन करते हैं
जब चित्त अनात्मपदार्थों में अनात्माकारवृत्तिवाला
होता है तबभी इसको बन्ध होता है जब चित्त वि-
षयाकार नहीं होता है अर्थात आसक्ति से रहित
होकर सर्वत्र आत्मदृष्टिवाला होता है तभी जीव
मुक्त कहाजाता है॥प्र०॥आपने कहा है कि जिसकालमें
चित्त विषयों में आसक्तहोता है तब बन्ध होताहै और
जब अनासक्त होता है तब मुक्तहोता है एकही चि-
त्तमें कालभेद करके यदि बन्ध मोक्ष मानाजावैगा तब
मुक्तिभी अनित्य होजावैगी ॥ उ० ॥ उस वाक्यका
यह तात्पर्य्य नहींहै जो आपने समझाहै किंतु तिसका
यह तात्पर्य्य है आत्मज्ञान की प्राप्ति से पूर्व जितने
कालतक पुरुषका चित्त विचार से शून्यहोकर विष-
यों में आसक्त रहताहै उतने कालतक जीव बन्धमें ही
पड़ारहताहै पश्चात् जब विचार करके युक्तहुआ रचित
दोषदृष्टिकरके विषयों में आसक्ति से रहित होजाता है
और फिर विषयवासनाका बीज भी चित्त में नहींरहता
है तव फिर वह मुक्तहोकर कदापि बन्धको नहीं प्राप्त
होता है जैसे भूंजेहुये बीजमें फिर अंकुर उत्पन्नकरने
की शक्ति नहीं रहतीहै तैसेही निर्वासनकचित्तवाला
पुरुप कभी भी जन्मको प्राप्त नहीं होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

यदानाहंतदामोक्षो यदाहंबन्धनन्त
दा॥ मत्वेतिहेलयाकिञ्चिन्मागृहाणवि
मुञ्चमा ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

यदा न अहम् तदा मोक्षः यदा
अहम् बन्धनम् तदा मत्वा इति हेलया
किञ्चित् मा गृहाण विमुञ्च मा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब	इति	= इस प्रकार
अहम्	= मैं हूं	मत्वा	= मानकर-के
तदा	= तब	हेलया	= इच्छा कर के
बन्धनम्	= बन्ध है	मा	= मत
यदा	= जब	गृहाण	= ग्रहण कर
अहम्न	= मैं नहींहूं	मा	= मत
तदा	= तब	विमुञ्च	= त्यागकर
मोक्षः	= मोक्ष है		

भावार्थ ॥

जबतक पुरुषमें अहंकार बैठा है मैं ब्राह्मणहूं मैं ज्ञानी हूं मैं त्यागीहूं तबतक वह मुक्त कदापि नहीं होसक्ताहै ऐसाभी कहा है ॥ यावत्स्यात्स्वस्यसम्बन्धोऽहंकारेण दुरात्मना । तावन्नलेशमात्रापि मुक्तिवार्ताविलक्षणा १ ॥ जबतक इस जीव अहंकारीका सम्बन्ध दुरात्मा के साथ बनारहता है तबतक मुक्ति लेशमात्र इसको प्राप्त नहीं होती है ॥ इसी वार्ताको कहते हैं ॥ जबतक जीवका शरीरादिकों से अहंकाराध्यास बना है तबतक इसकी मुक्ति कदापि नहीं होसक्ती है जिस कालमें अहंकाराध्यास इसका निवृत्त होजाता है तिसीकाल में विनाही परिश्रम अकर्ता अभोक्ता होकर मुक्त होजाता है ॥ ४ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायामष्टमम्प्रकरणम् ॥ ८ ॥

नवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

कृताकृतेचद्वन्द्वानि कदाशान्ता

निकस्यवा ॥ एवंज्ञात्वेहनिर्वेदाद्भव ।
त्यागपरोऽव्रती ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

कृताकृते च द्वन्द्वानि कदा शान्तानि कस्य वा एवम् ज्ञात्वा इह निर्वेदात् भव त्यागपरः अव्रती ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कृताकृते	= कृत और अकृतकर्म	वा	= संशय रहित
च	= और	ज्ञात्वा	= जानकरके
द्वन्द्वानि	= दुःख और सुख	इह	= इस संसार विषे
कस्य	= किसके	निर्वेदात्	= विचारसे
कदा	= कब	अव्रती	= व्रतरहित होताहुआ
शान्तानि	= शान्त हुये हैं	त्यागपरः	= त्यागपरायण
एवम्	= इस प्रकार	भव	= हो

भावार्थ ॥

अब निर्वेदाष्टक नामक नवम प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं ॥

पूर्व्व शिष्य ने जो गुरु के प्रति अपना अनुभव कहा था उसकी दृढ़ता के लिये अब आठ श्लोकों करके वैराग्य के स्वरूप को दिखलाते हैं ॥ प्रश्न ॥ त्याग कैसे करना चाहिये ॥ उत्तर ॥ यह मेरे को कर्त्तव्य है और यह मेरे को कर्त्तव्य नहीं है इसीका नाम कृत अकृत है अर्थात् इस तरह का जो आग्रह है याने अवश्य ही मेरे को यह करना उचित है और अवश्यही मेरे को यह करना उचित नहींहै इन दोनोंमें अभिनिवेश याने हठ न करना और द्वन्द्व जो सुख दुःखहैं मैं इन दोनोंसे रहितहोजाऊं इस में आग्रह न करना क्योंकि दोनों किसी भी देहधारी के कभी शान्त नहीं हुये हैं और न होवेंगे इस वास्ते अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक! इन कृताऽकृत आदिकों के त्यागसे भी तू वैराग्य को प्राप्त हो क्योंकि हे शिष्य! तू अव्रती है तेरा आग्रह याने हठ किसी में भी नहीं है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

कस्यापितातधन्यस्य लोकचेष्टावलोकनात् ॥ जीवितेच्छाबुभुक्षाच बुभुत्सोपशमङ्गता ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

कस्य अपि तात धन्यस्य लोकचेष्टावलोकनात् जीवितेच्छा बुभुक्षा च बुभुत्सा उपशमम् गता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तात	हे प्रिय	जीवितेच्छा	जीनेकी इच्छा
लोकचेष्टावलोकनात्	उत्पत्ति और विनाशरूप लोकों की चेष्टा के देखने से	च	और
		बुभुक्षा	भोगनेकी इच्छा
		+च	और
		बुभुत्सा	ज्ञान की इच्छा
कस्य	किसी		
धन्यस्य	महात्माकी	उपशमम्	शान्तिको
अपि	भी	गता	प्राप्तहुई है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे शिष्य! हजारों मनुष्योंमेंसे किसी एक भाग्यशाली पुरुषके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न होता है उस के जीनेकी और भोगनेकी इच्छा भी निवृत्त होजाती है क्योंकि संसार के पदार्थों में गलानी और दोषदृष्टिका नामही वैराग्यहै जितने संसारके उत्पत्ति नाशवाले पदार्थहैं सबमें दोष लगे हैं संसारमें स्त्री पुत्र धन और शरीर तथा इन्द्रिय आदिक सब को प्यारे हैं और इन्हीं के सुख के लिये पुरुष अनेक अनर्थों को करता है और येही सब जीवों के बन्ध के कारण हैं इस वास्ते बिना इन में वैराग्य प्राप्त होने के कदापि पुरुष मोक्ष को नहीं प्राप्त होता है इसी हेतु से प्रथम इन्हीं में दोषदृष्टि को दिखाते हैं ॥ योगवाशिष्ठ में कहा है ॥ गर्भेदुर्गन्धिभूयिष्ठे जठराग्निप्रदीपिते ॥ दुःखंमयाप्तं यत्तस्मात्कनीयः कुम्भिपाकजम् ॥ १ ॥ बड़ी भारी दुर्गन्धि करके युक्त जो माताका उदर है और जो जठराग्नि कर के प्रदीप्तहै तिस गर्भमें आकर जो जीव को दुःख होता है वह कुम्भीपाक नरकसे भी कमहै ॥ १ ॥ और गर्भोपनिषद् में भी गर्भ के दुःखों का वर्णन किया है कि जिस काल में गर्भ में जीव अतिदुःखी होताहै ईश्वर

से प्रार्थना करताहै कि हे प्रभो! अबकी बार मैं जन्म लेकर अवश्यही ज्ञान के साधनों को करूंगा पर जन्म लेकर फिर यह जीव संसार के भोगों में फँस जाता है गर्भवाले दुःखों को भूलजाता है इसी कारण फिर बारबार जन्मता मरता है॥ शिवगीतामें मरणके दुःखोंको भी दिखाया है॥ हाकान्ते हा धनं पुत्राः क्रन्दमानःसुदारुणम् ॥ मण्डूकइवसर्प्पेण मृत्युनागीर्य्यतेनरः॥ १॥ जब जीव प्राणों को त्यागने लगता है तब पुकारताहै हे भार्य्या! हे धन! हे पुत्रो! मुझको इस मृत्यु से छुड़ाओ ऐसे भयानक शब्दों को करता है जैसे सर्प्प के मुखमें पड़ाहुआ मेडक पुकारता है॥ १॥ अयःपाशेनकालस्य स्नेहपाशेनबन्धुभिः॥ आत्मानं कृष्यमाणस्य न खल्वस्तिपरायणम्॥ २॥ मरणकाल में यह जीव इधर तो कालके पाशोंकरके बांधा होता है उधर सम्बन्धियों के स्नेहकी रस्सियों करके खैंचाहुआ होता है कोई भी मृत्युसे इसकी रक्षा नहीं करसक्ता है॥ २॥ यामातासापुनर्भार्य्या याभार्य्याजननीहिसा॥ यःपितासपुनःपुत्रो यःपुत्रःसपुनःपिता॥ १॥ पूर्व्वजन्म में जो माता होती है वही पुत्रमें स्नेहके वश्य से उत्तरजन्म में उस की स्त्री बनती है जो पूर्व्वजन्म में पिता होताहै वही उ-

त्तरजन्म में पुत्र होता है जो पूर्व्व जन्ममें पुत्र होता है वही उत्तरजन्ममें पिता होताहै॥ १॥ एकोयदाव्रजाति कर्म्मपुरःसरोऽयं विश्रामवृक्षसदृशः खलुजीवलोकः॥ सायंसायंवासवृक्षंसमेतः प्रातःप्रातस्तेनप्रयान्ति॥ २॥ जैसे सायङ्काल में इधर उधर से पक्षी उड़कर एकी वृक्षपर रात्रिको विश्रामके लिये इकट्ठे होजाते हैं और प्रातःकाल में सब इधर उधर उड़जाते हैं तैसेही इस संसाररूपी वृक्षमें जीव सब कर्म्मोंके वश्यहोकर इकट्ठे होजाते हैं फिर प्रारब्धकर्म्म के भोगके पूरे होनेपर सब अकेले २ होकर चलेजाते हैं कोई भी स्त्री पुत्र धनादि इस के साथ नहीं जाते हैं और न साथ आते हैं इस तरह विचार करके इनमें मोहको कदापि न करै॥ और देवीभागवत में शुकदेवजी ने जो स्त्री के सम्बन्ध से दोष दिखाये हैं उनको॥ नरस्यबन्धनार्थाय शृङ्खला स्त्रीप्रकीर्त्तिता॥ लोहबद्धोऽपिमुच्येत स्त्रीबद्धोनैव मुच्यते॥ १॥ पुरुष के बन्धन का हेतु स्त्रीकोही बेड़ी रूप करके कहाहै लोहेकी बेड़ीकरके बांधाहुआ पुरुष छूटजाता है परन्तु स्त्रीके स्नेहरूपी पाश करके बांधाहुआ पुरुष कदापि छूट नहीं सक्ता है इसीपर एक दृष्टान्त देते हैं॥ एक लड़का बाल्यावस्था में संन्यासी होगया जब जवान हुआ तब तीर्थयात्रा करने

को जाताथा ॥ रस्ते में उधर से एक बरात आती थी वह संन्यासी खड़ा होगया उसने पूछा यह क्या है लोगों ने कहा यह बरात है यह जो लड़का घोड़ी पर सवार है इसकी शादी एक लड़की से होगी तव उस ने पूछा फिर क्या होगा कहा जब इसकी स्त्री इस के घर में आवेगी तब दोनों आपस में विषयानन्द को प्राप्त होवेंगे फिर स्त्री के लड़के पैदा होवेंगे इतना सुनकर वह संन्यासी चलागया रस्ते में एक कुयें पर छाया में सोरहा तब उसने स्वप्न देखा कि मेरी शादी हुई है स्त्री आई है उसके साथ सोयाहूं उस स्त्री ने कहा थोड़ासा पीछे हटो जब वह पीछे हटने लगा तब वह धम्म से कुयें में गिरपड़ा गिरनेकी आवाज को सुनकर लोग दौड़ आकर कहने लगे कि किसने तुझको कुयें में गिरादिया है उसने कहा स्वप्नकी स्त्री ने मेरेको कुयें में गिरादिया है न मालूम जाग्रत् की स्त्री पुरुषों की क्या दुर्दशा करती होगी तात्पर्य्य यह है कि विवेकी के लिये स्त्री साक्षात् नरकका कुण्ड है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन्! कर्मकाण्डी कहतेहैं कि जिसके पुत्र नहीं है उसकी गतिभी नहीं होती है इसवास्ते येनकेन उपाय करके पुत्र उत्पन्न करना चाहिये ॥ ऐसा देवीभागवत में लिखा है ॥ उत्तर ॥

हे प्रियदर्शन! यह जो तुम ने कहा न्यू = निश्चय
गति नहीं होती है सो गतिशब्द का क्या करके
शब्दका अर्थ मोक्ष करते हो वा दोनों लोकोंकि निको
करते हो यदि गातिशब्द का अर्थ मोक्ष करो तब स
पुत्रवालों की मुक्ति होनी चाहिये और मनुष्य पशु आ-
दिक सबही विनाही ज्ञानके मोक्ष होजावेंगे और शु-
कदेव वामदेवादिकों की मुक्ति शास्त्रों में लिखी है सो
न होनी चाहिये क्योंकि उनके कोई पुत्र नहीं था इस
लिये पुत्र से गति कहनेवाले वाक्य अर्थ वादरूप हैं
पुत्रके सम्बन्ध से बड़े दुःख उठाये हैं राजा दशरथ
ने रामजी के वियोगमें प्राणों को त्याग दियाथा प्रथम
तो पुत्रके उत्पन्न होनेकी चिंता फिर उसके जीने की
चिंता फिर उसके विवाह संतती की चिन्ता जन्मभर
बनी रहती है बड़े होने पर पिताके वृद्धावस्थामें धना-
दिकों को पुत्रलेलते हैं और सेवाआदि कुछ भी नहीं
करते हैं पुत्रभी विवेकी पुरुष के लिये दुःखके हेतु हैं
इसी तरह और भी जितने विषय हैं सो सबदुःख
केही कारण हैं॥ विवेकचूड़ामणिमें कहा है॥ वि
षयाशामहापाशात्योविमुक्तःसदुस्त्यजात्सएककल्पते
मुक्त्यैनान्याषट्शास्त्रवेदिभिः॥ १॥ स्त्रीपुत्रधनादिक
विषय महान् पाशहैं जिनका त्यागना अतिकठिन है

को जाताथा ॥ पुरुषरहित है वही मुक्तिका अ- वह संन्यासीसरा पुरुष षट्शास्त्रों के जाननेवाला भी लोगकों अधिकारी नहीं है ॥ १ ॥ इसीपर अष्टावक्र स कहते हैं संपूर्ण विषय वासना से रहित संसार बेषे लाखों में कोई एकही वैराग्यवान् जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

अनित्यंसर्वमेवेदं तापत्रितयदूषितम् ॥ असारंनिन्दितंहेयमिति निश्चित्यशाम्यति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

अनित्यम् सर्वम् एव इदम् तापत्रितयदूषितम् असारम् निन्दितम् हेयम् इति निश्चित्य शाम्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्सर्वम्	यहसबही	तापत्रितयदूषितम्	तीनों तापों से दूषित है
अनित्यम्	अनित्यहै		

असारम् = साररहितहै	निश्चित्य = निश्चय करके
निन्दितम् = निन्दित है	शाम्यति = शान्तिको तुम प्राप्त होताहै
हेयम् = त्यागने योग्यहै	
इति = ऐसा	

भावार्थ॥

प्र०॥ ज्ञानीकी सर्वत्र इच्छाके उपशम में क्या कारणहै॥उ०॥ जितना कि दृष्टी का विषय प्रपंच है वे सब अनित्य हैं याने चेतन में अध्यस्त है॥प्र०॥यह प्रपंच कैसा है॥उ०॥ आध्यात्मिक आदि तापों करके दूषित है वात पित्त श्लेष्मादि निमित्तसे जो दुःख होताहै उसका नाम आध्यात्मिक दुःख है याने जो काम क्रोध लोभ मोह ईर्षा आदि करके जो मानसदुःख है उसीकानाम आध्यात्मिक दुःख है और जो मनुष्य पशु सर्प वृक्षादिक निमित्तक दुःख है उसका नाम आधिभौतिक दुःख है यक्षराक्षस विनायकादि निमित्तक जो दुःख है उसका नाम आधिदैविक दुःख है॥ इनतीन प्रकार के दुःखों करके पुरुष सदैव संतप्तरहता है॥ इसी वास्ते यह सब प्रपंच असारहै तुच्छ है त्यागने

योग्य है ऐसाजानकर ज्ञानवान् किसी भी पदार्थको इच्छा नहीं करता है ३ ॥

मूलम् ॥

कोऽसौकालोवयःकिंवा यत्रद्वन्द्वानिनोनृणाम् ॥ तान्युपेक्ष्ययथाप्राप्तवर्त्तीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

कः असौ कालः वयः किम् वा यत्र द्वन्द्वानि नो नृणाम् तानि उपेक्ष्य यथा प्राप्तवर्त्ती सिद्धिम् अवाप्नुयात्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र	जिस में	वा	और
नृणाम्	मनुष्योंको	किम्	कौन
द्वन्द्वानिनो	सुख और दुःखन होवै	वयः	अवस्था है
असौ	वह	अपितुन कोपि	याने कोई नहीं
कः	कौन	तानि	उनसबको
कालः	काल है	उपेक्ष्य	विस्मरण करके

यथाप्राप्तवर्त्ती } = { यथाप्राप्तवस्तुओं विषे वर्तनेवालापुरुष | सिद्धिम् = सिद्धि याने मोक्षको
अवाप्नुयात् = प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

पुरुषों को सुख दुःखादिक द्वन्द्व किसी खास काल या अवस्था में नहीं व्याप्ता है किन्तु सब अवस्थों में और सर्वकालों में सुखदुःखादिक द्वन्द्व देहधारी को बराबर बने रहतेहैं ॥ इसी वार्ता को रामजीने अध्यात्मरामायण में कहा है ॥ सुखस्यानन्तरंदुःखं दुःखस्यानन्तरंसुखम् । द्वयमेतद्धिजंतूनामलंघ्यंदिनरात्रिवत् ॥ १ ॥ सुख के अनन्तर दुःख होता हैं और दुःखके अनन्तर सुख होताहै ये दोनों निश्चय करके जीव को अलंघ्य हैं याने हटाये नहीं जासक्ते हैं ॥१॥ सुखमध्येस्थितंदुःखं दुःखमध्येस्थितंसुखम्। द्वयमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपंकवत् ॥ २ ॥ सुख में दुःख और दुःख में सुख स्थितहै अर्थात् क्षणमात्र सुख के देनेवाले विषयों से अनेक रोगादिक दुःख उत्पन्न होते हैं और उपवासादिक व्रतों से जिसमें दुःख

होता है फिर विषयों की प्राप्तिरूपी सुख होता है ये दोनों सुख दुःख ऐसे मिले हैं जैसे पानी और कीच मिले होते हैं ॥ ३ ॥ किसी भी देहधारी से ये सुख दुःख किसी काल में त्यागे नहीं जासक्ते हैं इस वास्ते विवेकी पुरुष उन सुखदुःखादिक द्वन्द्वोंसे भी इच्छा को त्यागकर शरीरको प्रारब्ध आश्रित छोड़ देता है ॥ ४ ॥ मूलम् ॥

नानामतंमहर्षीणां साधूनांयोगिनां तथा ॥ दृष्ट्वानिर्वेदमापन्नः कोनशाम्य तिमानवः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

नाना मतम् महर्षीणाम् साधूनाम् योगिनाम् तथा दृष्ट्वा निर्वेदम् आपन्नः कः न शाम्यति मानवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
नानामतम्	=नाना प्रकार के मतहैं	महर्षीणाम्	= महर्षियों के
		तथा	= और

योगिनाम्=योगियोंके	कःमानवः = कौन पुरुष
इति = ऐसा	
दृष्ट्वा = देख करके	
निर्वेदम् = वैराग्य को	नशाम्यति = नहीं शान्ति को प्राप्त होता है
आपन्नः = प्राप्त हुआ	

भावार्थ ॥

हे शिष्य! तर्कशास्त्र को और कर्मकाण्डमें निष्ठाको त्याग करके केवल आत्मज्ञान मेंही निष्ठा करना चाहिये क्योंकि तर्कशास्त्रादिक सब बुद्धिके भ्रमावने वाले हैं॥ गौतम आदिकों के जो मतहैं वे वेद और युक्ति प्रमाण से विरुद्ध हैं केवल भ्रमजाल में डालने वाले हैं॥ गौतम आदिकों के मतके चलने वाले नैयायिक ईश्वर आत्मा औरजीवआत्मा दोनोंको जड़ मानते हैं और ज्ञानइच्छा आदिकों को आत्माका गुण मानते हैं फिर ईश्वरात्माके गुणों को नित्य मानते हैं जीवात्माके गुणों को अनित्य मानते हैं और सारे जीवात्मा को व्यापक मानते हैं आत्मा के संयोग को ज्ञान के प्रति कारण मानते हैं परमाणुवोंसे जगत्

की उत्पत्तिमानते हैं फिर परमाणुवों को निरवयव मानते हैंप्रथम तो जीवात्मा और ईश्वरात्मा जड़ नहीं होसक्के हैं क्योंकि सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म॥ आत्मा सत्य रूप ज्ञानस्वरूप आनन्दरूप है॥ इस श्रुतिके साथ विरोध आता है दूसरा दोनों ईश्वर आत्मा के जड़ मानने से जगदांध प्रसंगहोगा॥ यदि यह मानलिया जाय कि कर्म जड़ है आत्मा जड़ है ईश्वरात्मा भी जड़ है तो फिर भोक्ता कर्ता और फलप्रदाता कोई भी नहीं होगा क्योंकि जड़ में भोक्तापना कर्तापनाआदिक शक्ति बनती नहीं और जड़का गुण ज्ञान और चेतनता बन नहीं सक्के हैं क्योंकि गुण गुणीका भेद नहीं होता जैसे अग्नि और उष्णता जल और शीतताका भेद नहीं है यदि अग्नि से उष्णता और प्रकाश निकाललिया जाय तो अग्नि कोई वस्तु बाकी नहीं रहती है और दोनों जड़भी हैं जैसे अग्नि के स्वरूप उष्ण और प्रकाश हैं तैसे ज्ञान और चेतनता भी दोनों आत्मा के स्वरूपही हैं आत्मा के धर्म नहीं हैं क्योंकि गुणगुणीभाव आत्मा में कहीं भी नहीं लिखा है और चेतनता जड़का धर्म है इसमें कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता है इसलिये नैयायिकका कथन असंगत है॥ यदि ईश्वर के इच्छादिक गुणों

को नित्य मानाजाय तो ईश्वरकी इच्छानुसार जगत् की उत्पत्ति अथवा प्रलय सर्वदाकाल हुआकरैगी यानें दोनों मेंसे एकही होगा दोनों नहीं होवैंगे यदि यह मानाजाय कि दोनों कभी प्रलय कभी सृष्टि तब ईश्वर की इच्छा अनित्य होजावैगी ॥ सारेजीवात्मा व्यापक भी नहीं होसक्ते हैं यदि ऐसा मानैं तो एक के शरीर में जगत्भरके जीवात्मा बैठे हैं और सब जीवात्मों के साथ उसके मनके संयोग बनेरहने से उसको सर्वज्ञता होनीचाहिये इस कारण सबको सर्वज्ञता होनी चाहिये सोतो होती नहीं है इसी से साबित होता है कि जीवात्मों को व्यापक मानना युक्ति प्रमाणसे विरुद्ध है और परमाणुवोंसे जड़ जगत् की उत्पत्ति भी नहीं बनती है क्योंकि निरवयव परमाणुवों का परस्पर संयोग बनता नहीं सावयव पदार्थों काही परस्पर संयोग बनता है युक्ती प्रमाणों से विरुद्ध होनेके कारण नैयायिकका मत विवेकी को त्यागने योग्य है इसीतरह कर्मनिष्ठावाले कर्मियोंके मतमें भी विवेकी को न श्रद्धा करना चाहिये क्योंकि उनके मतमें भी नानाप्रकार के झगड़े लगे हैं कोई कर्मी होमकोही मुख्य मानते हैं कोई मन्त्रों के जपादिकों कोही प्रधानमानते हैं कोई कृच्छ्रचांद्रा-

यणादिक व्रतों के करनेकोही धर्ममानते हैं कोई यज्ञों में पशुत्रों की हिंसा कोही धर्ममानते हैं कोई मूर्ति पूजा को कोई तीर्थाटन को धर्ममानते हैं कर्मजाल इतनाबड़ाभारी है कि यदि एक आदमी प्रत्येकदिन एकएक कर्म को करै तबभी उसके सब उमरभरमेंसारे कर्म समाप्त नहीं होंगे और घटी यन्त्रकी तरह अधो-र्ध्व याने नरक स्वर्गका हेतु कर्मरूपी जाल है इसी पर कहा है ॥ कर्मणाबध्यतेजंतुर्विद्ययाचाविमुच्यते ॥ तस्मात्कर्म न कुर्वंति यत्तपःपारदर्शिनः १ कर्मों करके जीव बन्धको प्राप्तहोता है और आत्मविद्या करके वह मोक्षको प्राप्तहोता है इसलिये विवेकी आत्म ज्ञानी कर्मोंको नहीं करते हैं आत्मनिष्ठामेंही मगन रहते हैं १ जैमनी आचार्य का मतभी श्रुतियुक्ति से विरुद्ध है ॥ जैमिनी आत्माको जड़ चेतन उभय रूप मानते हैं और स्वर्ग की प्राप्तिकोही मोक्ष मानतेहैं ॥ एकही पदार्थ जड़ चेतन उभयरूप नहीं होसक्ता है क्योंकि इसमें कोई भी दृष्टांत नहीं मिलता है फिर चेतन निरावयव है और जड़ सावयव और अनित्य है शीतउष्ण जैसे परस्पर विरोधीहैं तैसेही उभयरूप जड़ चेतन भी विरोधी हैं और वेदमें भी कहीं उभयरूपता आत्माको नहीं लिखा है और न स्वर्ग की प्राप्ति

का नाम भी मोक्ष है ॥ तद्यथेह कर्म्मचितोलोकः क्षीयत एवामुत्रपुण्यचितोलोकः क्षीयते ॥ श्रुति कहती है कि जैसे इस लोक में कर्म्मों करके प्राप्त करीहुई खेती काल पाकरके नष्टहोजाती है तैसेही पुण्य कर्म्मों करके प्राप्तहुआ स्वर्ग्ग भी नष्ट होजाता है इन श्रुतिवाक्यों से स्वर्ग्ग की अनित्यता सिद्ध होती है और जब स्वर्ग्ग ही अनित्य है तो मुक्तिभी अनित्य अवश्य होगी इस वास्ते जैमिनि का मत आत्मज्ञान निष्ठावालेको त्यागना चाहिये ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

कृत्वामूर्त्तिपरिज्ञानं चैतन्यस्यनकिं गुरुः ॥ निर्वेदसमतायुक्त्या यस्तारयतिसंसृतेः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

कृत्वा मूर्त्तिपरिज्ञानम् चैतन्यस्य न किम् गुरुः निर्वेदसमता युक्त्या यः तारयति संसृतेः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
निर्वेद समता युक्त्या	वैराग्य, समता और युक्तिद्वारा
चैतन्यस्य	चैतन्यके
मूर्त्तिपरिज्ञानम्	मूर्त्ति के ज्ञान को
कृत्वा	जानकर

अन्वयः	शब्दार्थ
यः	जो
संसृतेः	संसार से
स्वम्	अपने को
तारयति	तारता है
किम्	क्या
सः	वह
गुरुः न	गुरु नहीं है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक जिसने विषय-वासना को त्याग करके शत्रु मित्र में समबुद्धि करके और श्रुति के अनुकूल युक्ति से सच्चिदानन्द रूप अपने आत्माका साक्षात्कार किया है और जिसने अपनेको ही सर्व्वरूप से अनुभव किया है उसने संसार से अपने को तारा है दूसरा नहीं हे जनक तुम अपने ही पुरुषार्थ से मुक्त होगे दूसरे करके नहीं होगे ॥ प्रश्न ॥ संसार में लोग कहते हैं कि गुरु शिष्य को मुक्त कर देता है आप उसके विरुद्ध ऐसा

कहते हैं कि शिष्य अपने पुरुषार्थसे ही मुक्त होता है यह क्या बात है ॥ उत्तर ॥ हे प्रियदर्शन संसार के लोग प्रायः करके मूर्ख अज्ञानी होते हैं वे शास्त्र के तात्पर्य्य को और गुरु शिष्य शब्दों के अर्थ को नहीं जानते हैं क्योंकि वे कामना करके हत होते हैं जैसे कि मुसलमानों ने मान रक्खा है पैगम्बर हम को पापोंसे छुड़ा देगा और जैसे ईसाइयों ने मान रक्खा है ईसा हमको पापों से छुड़ा देगा तैसेही और भी संसारी लोगोंने मान रक्खा है कि गुरु हमको पापों से छुड़ा देगा ऐसा उनका मानना दुःख का जनक है क्योंकि वेद और शास्त्रमें कानमें मंत्र फूकनेवाले को गुरु नहीं लिखा है ॥ जो अज्ञान और अज्ञान के कार्य्य जन्म मरणरूपी संसार से आत्मज्ञान उपदेश करके छुड़ा देवे और चित्त के संशयों को दूर कर देवे उसका नाम गुरु है मन्त्र फूकनेवाले का नाम गुरु नहीं है रामचन्द्रजी ने वसिष्ठजी के प्रति हजारों शंके कियेथे और जब सबका उत्तर वसिष्ठजीने देकर रामजीको संशयोंसे रहित करके आत्मा का बोध करादिया तब रामजीने वसिष्ठजीको गुरु माना अर्ज्जुनने श्रीकृष्णजीके प्रति हजारों शंके कियेथे जब अर्ज्जुनको विराट्‌रूप भगवान् ने दिखाया तब उनको

अर्ज्जुन ने गुरु माना इसी तरह औरभी पूर्व्व जितने श्रेष्ठपुरुष हुये हैं उन्होंने चित्त के सन्देह दूर करने वालेको ही गुरु करके माना है सोभी व्यवहार दृष्टि सेही माना है आत्मदृष्टि से नहीं माना है क्योंकि आत्मदृष्टि में आत्मा का भेद नहीं है अष्टावक्र जी ने आत्मदृष्टि को लेकरके कहा है कि संसारी मूर्ख कान में मन्त्र फूकनेवाले गुरु केही अज्ञानार्थ शिष्य पूरे पशु बनजाते हैं क्योंकि उन को बोध नहीं है कि पारमार्थिक गुरु आत्मज्ञानी काही नाम है ऐसे गुरु तो संसारमें बहुत दुर्लभहैं दूसरा गुरु गायत्रीका मन्त्र देनेवाला है तीसरा गुरु व्यवहारिक विद्याका पढ़ानेवाला है चौथा सत्सङ्ग गुरु है विद्यादाता हजारों अक्षरों को पढ़ाता है पशु से आदमी बनाता है फिर भी लोग उसके उपकार को नहीं मानते हैं जो दो चार अक्षरों के मन्त्र को कान में फूक देता है उसी के पूरे पशु बनजाते हैं उस के उपदेश से कोई संशय दूर नहीं होता है बल्कि उल्टी भेद बुद्धि उत्पन्न होती है कोई विष्णु का मन्त्र देकर महादेव से विरोध करा देताहै कोई विष्णुसे विरोध कराता है कोई देवीका पशु बनादेता है कनफुकवे गुरु तो आपही भेदवादरूपी कीचसें फसे हैं और शिष्योंको भी

फसाते हैं अपनी जीविका के लिये शिष्यों के घरों में भिखारियों की तरह मारे मारे फिरते हैं जैसे वे मूर्खहैं तैसे उन के शिष्य भी मूर्ख हैं क्योंकि जो सत्महात्मा संशयों को नाश करते हैं उनकी वह सेवा पूजा नहीं करतेहैं जो मूर्ख कनफुकवे गुरु संशयोंमें डालतेहैं उन्हींकी पूरी सेवा करते हैं जब गुरुही मोक्षमार्ग्ग को नहीं जानते हैं तब शिष्य कैसे जानैं शिष्योंके चित्तों में तो अनेक प्रकार के विषयों की कामना भरी है उन कामना की पूर्त्ति के लिये वे मन्त्र लेकर जपते हैं और जपते जपते मरजाते हैं परन्तु कामना किसी कीभी पूरी नहीं होती है इसी पर कवीरजी ने भी कहा है ॥

दोहा ॥

गुरुलोभी शिष्यलालची, दोनों खेलैं दांव ॥
दोनों डूबे बापड़े, बैठ पत्थर की नाव १
गुरुजन जाका है गृही,चेलागृही जो होय ॥
कीचकीच को धोवते, दाग न छूटै कोय २
बंधेको बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय ॥
सेवाकर निर्बंध की, पलमें देय छुड़ाय ३

और गुरुगीता में भी अज्ञानी मूर्ख गुरुका त्याग करना ही लिखा है ॥ ज्ञानहीनोगुरुस्त्याज्यो मिथ्या

वादीविडम्बिकः ॥ स्वविश्रान्तिंनजानाति परशान्तिं करोतिकिम् ॥ १ ॥ जो गुरु ज्ञान से हीनहो मिथ्यावादीहो विडम्बी हो उसका त्याग करदेना चाहिये क्योंकि जब वह अपनाही कल्याण नहीं करसक्ताहै तो शिष्यों का क्या कल्याण करैगा ऐसे मूर्ख अज्ञानी गुरु के त्याग में बहुत से शास्त्रोक्त प्रमाण हैं पर मूर्ख अज्ञानी लोग कुकर्म्मी मूर्ख गुरुवों को नहीं त्यागते हैं क्योंकि प्रथम तो लोग आत्माके ही कल्याण को नहीं जानते हैं दूसरे उन के चित्तमें भय रहता है कि गुरुके निरादर करने से हमारेको कोई विघ्न न होजावै इसी से मूर्खोंके मूर्ख जन्मभर उनके पशु बने रहते हैं इन मूर्ख शिष्य गुरुवोंका इस जगह में निरूपण करने का कोई प्रकरण नहीं है इस वास्ते उन का प्रसङ्ग छोड़ दियाजाता है हे राजन् ज्ञानकी प्राप्ति के अनन्तर गुरु शिष्य व्यवहार भी मिथ्या होजाता है क्योंकि उसकी भेद बुद्धि नहीं रहती है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

पश्यभूतविकारांस्त्वं भूतमात्रान्यथार्थतः ॥ तत्क्षणाद्बन्धनिर्मुक्तःस्वरूपस्थोभविष्यसि ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

पश्य भूतविकारान् त्वम् भूतमात्रान् यथार्थतः तत्क्षणात् बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्थः भविष्यसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	जब	तत्क्षणात्	उसीसमय
भूतविकारान्	भूतनके कार्य्य देह इन्द्रिय आदि को	त्वम्	तू
यथार्थतः	वास्तव से	बन्धविनिर्मुक्तः	बन्धसे छूटाहुआ
भूतमात्रान्	भूतमात्र	स्वरूपस्थः	अपने स्वरूप बिषे स्थित
पश्य	देखैगा	भविष्यसि	होगा

भावार्थ ॥

हे जनक भूतों के विकार जो देह इन्द्रियादिकहैं उनको यथार्थ रूप से तुम भूतमात्र देखो आत्म रूप

करके उनको तुम मत देखो जब तुम ऐसे देखोगे तब उसीक्षण में शरीरादिकों से पृथक् होकर आत्म स्वरूपमें स्थित होजावोगे और उनका साक्षीभूत आत्माभी तुमको करामलकवत् प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगैगा॥ ७॥

मूलम्॥

वासनाएवसंसार इतिसर्व्वाविमुञ्च-ताः॥ तत्त्यागोवासनात्यागात्स्थिति रद्ययथातथा॥ ८॥

पदच्छेदः॥

वासनाः एव संसारः इति सर्व्वाः विमुंच ताः तत्त्यागः वासनात्यागात् स्थि-तिः अद्य यथा तथा॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वासनाएव	=वासनाही	ताःसर्व्वाः	=उनसब वासनाओं को
संसारः	=संसार है		
इति	=ऐसा		
ज्ञात्वा	=जानकर	विमुंच	=त्याग तू

वासना त्यागात् = वासना के त्याग से

तत्त्यागः = उसका याने संस्कार का त्याग है

अथ = ऐसा होने पर

यथा = जैसा कर्म्म है याने प्रारब्ध है

तथा = उस के अनुसार

स्थितिः = शरीर की स्थिति है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ पूर्वोक्तयुक्तिसे जब पुरुष आत्मा को जानभी लेगा तब फिर उसमें उसकी निष्ठा कैसे होवेगी ॥ उत्तर ॥ विषयों की जो अनेक वासनाहैं वही संसार है याने बंधन है ॥ योगवासिष्ठ में भी कहाहै ॥ लोकवासनयाजंतोः शास्त्रवासनयापिच ॥ देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैवजायते ॥ १ ॥ वासना तीनप्रकारकी हैं लोकवासना अर्थात् स्वर्गादि उत्तमलोककी प्राप्ति मुझको हो॥१॥दूसरी शास्त्रवासना याने सबशास्त्रों को पढ़कर मैं ऐसा पण्डित होजाऊं कि मेरेतुल्य दूसरा कोई न हो ॥ २ ॥ तीसरी शरीरकी वासना

यानै मेरा शरीर सबसे सुन्दर और पुष्ट सदैवकाल बनारहै ॥ ३ ॥ इन तीनों प्रकारकी वासना के त्याग करने से पुरुष बन्ध से छूटजाता है और उसका चित्त आत्मा में भी स्थिर होजाता है ॥ प्रश्न ॥ सम्पूर्ण वासना के त्याग करदेने से शरीरकी स्थिति कैसे होगी ॥ उत्तर ॥ जैसे दुग्धपीनेवाले बालकके और उन्मत्त याने पागलके शरीरकी स्थिति प्रारब्धकर्म से होतीहै तैसे विद्वान् निर्वासनक के शरीरकी स्थितिभी प्रारब्धकर्म के वशसे रहती है परन्तु यह वासना कि शरीरकी स्थिति कैसे होगी त्यागही करना उचित है ॥ प्रश्न ॥ यदि पुरुष समग्रवासनाका त्याग करदेगा तब आत्मज्ञानको भी वह नहीं प्राप्तहोगा क्योंकि मुमुक्षु को आत्मज्ञानकी प्राप्तिकीवासना सर्वदाकाल बनीरहती है और ज्ञानवान् को भी चित्तके निरोध करने की वासना बनी रहती है फिर जीवन्मुक्त होने की उसको वासना बनीरहती है सर्ववासनाका त्याग तो किसीसे भी नहीं होसक्ता है ॥ उत्तर ॥ बाल्मीकीयरामायण में ऐसा लिखा है ॥ वासना द्विविधाप्रोक्ता शुद्धाचमलिनातथा ॥ मलिनाजन्म हेतुःस्याच्छुद्धाजन्मविनाशिनी ॥ १ ॥ दोप्रकार की वासना कही है एक शुद्धवासना दूसरी मलिनवासना

किसीप्रकार से मेरी मुक्तिहो और मैं अपने आत्माको साक्षात्कार करूं उसके लिये जों वृत्तिआदिकोंका निरोध करना है वह शुभवासना है विषयभोगों की प्राप्तिकी जो वासना है सो मलिनवासना है दोनोंमें से मलिनवासना जन्मका हेतु है और शुद्धवासना जन्मका नाशक है जो चतुर्थभूमिकावाला ज्ञानी है और जो मुमुक्षु है उनके लिये शुभवासना का त्याग नहीं है किन्तु अशुभवासना काही त्याग है क्योंकि विदेहमुक्ति में आत्मज्ञान कोही प्रधानता है शुभवासना का नाश उपयोगी नहीं है परन्तु जीवन्मुक्तिके लिये समग्रवासना का त्याग और मनका भी नाश और आत्मज्ञान ये तीनों उपयोगी हैं यहांपर अष्टावक्रजी जीवन्मुक्ति के सुखके लिये जनकजीसे कहते हैं कि समग्रवासना का तू त्यागकर ॥ ८ ॥

इति श्रीबाबूजालिमासिंहविरचितायामष्टावक्रगीताभाषाटीकायां निर्वेदाष्टकंनामनवमं प्रकरणम् ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

विहायवैरिणङ्कामममर्थंचानर्थसंकुलम् ॥ धर्म्ममप्येतयोर्हेतुं सर्वत्रानादरं कुरु ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

विहाय वैरिणम् कामम् अर्थम् च अनर्थसंकुलम् धर्म्मम् अपि एतयोः हेतुम् सर्वत्र अनादरम् कुरु ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वैरिणम्	= वैरीरूप	अर्थम्	= अर्थ को
कामम्	= कामना को	विहाय	= त्याग कर के
च	= और	च	= और
अनर्थसंकुलम्	= अनर्थ से भरेहुये	एतयोः	= उन दोनों के

हेतुम् = कारणरूप	सर्व्वत्र = धर्म अर्थ काम के हेतु कर्म्मों को
धर्मम् = धर्म को	
अपि = भी	
विहाय = छोड़कर	अनादरम् कुरु = अनादर कर

भावार्थ ॥

पूर्वले प्रकरण में विषयों के विना भी संतोषरूप वैराग्य का निरूपण किया है अब इसप्रकरण में विषयों की तृष्णा के त्यागका निरूपण करतेहैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! काम शत्रु है यहकामही सम्पूर्ण अनर्थों का मूल है और बड़ादुर्जय है ॥ आत्मपुराण में कहा है ॥ कामेनविजितोब्रह्मा कामेन विजितो हरः ॥ कामेनविजितोविष्णुः शक्रःकामेन निर्जितः १ कामदेवहीने ब्रह्माकोजीता विष्णुकोजीता इन्द्रको जीता महादेवको जीता सब अनर्थोंका मूल कारण कामदेवही है धनके संग्रह और रक्षाकरने में जो दुःख होता है और उसके नाश होनेमें जो शोक होता है उसका मूलकारण कामही है हे जनक! कामका कारण जो धर्म है उसको और सकामकर्मों

को तुम त्यागकरो क्योंकि येसब जीवन्मुक्तिमें प्रतिबन्धक हैं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

स्वप्नेन्द्रजालवत्पश्य दिनानित्रीणि पञ्चवा ॥ मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादि सम्पदः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

स्वप्नेन्द्रजालवत् पश्य दिनानि त्रीणि पञ्च वा मित्रक्षेत्रधनागारदार दायादिसम्पदः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादि सम्पदः	= मित्रक्षेत्र धन मकान स्त्री भाई आदि सम्पत्तियों को	स्वप्नेन्द्रजालवत्	= स्वप्न और इन्द्रजाल के समान
		त्रीणि	= तीन

वा = या	दिनानि = दिनों तक
पञ्च = पांच	पश्य = देख तू

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ अनेकप्रकारके सुखों को देनेवाले जो स्त्री पुत्रादिक विषय हैं उनका निरादर करके त्याग कैसे होसक्ता है ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य ! स्त्री पुत्र धन मित्र क्षेत्रादिक जितने कि भोगके साधनहैं इन सबको तुम स्वप्न और इन्द्रजाल की तरह देखो क्योंकि यहसब पाँच या तीनदिनके रहनेवाले हैं और सब दृष्टनष्ट हैं याने देखते देखतेही नष्ट होतेजाते हैं इसवास्ते इन में ममताका त्यागकरनाही उत्तम है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

यत्रयत्रभवेत्तृष्णा संसारंविद्धितत्रवै ॥ प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखीभव ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

यत्र यत्र भवेत् तृष्णा संसारम् विद्धि तत्र वै प्रौढवैराग्यम् आश्रित्य वीततृष्णः सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्रयत्र	= जिस जिस वस्तु में	प्रौढवैराग्यम्	= असाधारण वैराग्य को
तृष्णा	= इच्छा	आश्रित्य	= आश्रय करके
भवेत्	= होवे	वीततृष्णः	= तृष्णारहित होता-हुआ
तत्र	= उस उस विषे	सुखीभव	= सुखी हो
संसारम्	= संसार को		
विद्धि	= जान तू		
वै	= निश्चय पूर्व्वक		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जिस २ प्रसिद्ध विषय में मनकी तृष्णा उत्पन्न होती है उसी २ विषय को तुम संसारका हेतु जानो क्योंकि विषयोंकी तृष्णाही कर्मद्वारा संसारका हेतु है ॥ यहीवार्ता योगवासिष्ठ में भी लिखी है॥मनोरथरथारूढं युक्तमिन्द्रियवाजिभिः ॥ भ्राम्यत्येवजगत्कृत्स्नं तृष्णासारथिचोदितम् ॥ १ ॥ मनोरथरूपी रथहै इन्द्रियरूपी घोड़े उसके आगे बँधे हैं तिसी रथपर साराजगत् आरूढ़ होरहा है और

तृष्णारूपी सारथि उसको भ्रमारहा है ॥ १ ॥ यथाहि शृंगगोकालेवर्धमानेनवर्धते ॥ एवंतृष्णापिचित्तेन वर्धमानेन वर्धते ॥ १ ॥ जैसे गौके दोनोंशृंग गौके शरीर के साथही बराबर बढ़ते हैं वैसेही तृष्णा भी चित्तके साथही बराबर बढ़ती है ॥२॥ प्राप्तपदार्थ के अधिक प्राप्तहोने की इच्छा से और अप्राप्तपदार्थ के प्राप्तकी इच्छा से रहित होकर आत्मा में निष्ठाकरने से जीव सुखी होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

तृष्णामात्रात्मकोबन्धस्तन्नाशोमोक्षउच्यते ॥ भवासंसक्तिमात्रेणप्राप्तितुष्टिर्मुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

तृष्णामात्रात्मकः बन्धः तन्नाशः मोक्षः उच्यते भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्तितुष्टिः मुहुः मुहुः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तृष्णामात्रात्मकः	= तृष्णामात्र स्वरूप	भवासंसक्तिमात्रेण	= संसार में असङ्ग होने से
बन्धः	= बन्ध है	मुहुःमुहुः	= वारंवार
तन्नाशः	= उस का नाश	प्राप्तितुष्टिः	= आत्मा की प्राप्ति और तृप्ति होती है
मोक्षः	= मोक्ष		
उच्यते	= कहा जाता है		

भावार्थ ॥

तृष्णामात्रका नामही बन्धहै उसके नाशका नाम मोक्ष है॥ योगवासिष्ठमें कहा है॥ च्युतादन्ताःसिताःकेशाहङ्निरोधःपदेपदे ॥यातसज्जमिमंदेहं तृष्णासाध्वी नमुञ्चति॥ १॥पुरुष के दांत टूटभीजाते हैं केश श्वेत भी होजाते हैं नेत्रकी दृष्टि कमभी होजाती कदम २ पर पांव पिसलतेभीहैं पर तबभी यह तृष्णा उस पुरुष से नहीं त्यागी जाती है ॥ १ ॥ तृष्णेदेविनमस्तुभ्यंधैर्यविप्लवकारिणी ॥ विष्णुस्त्रैलोक्यपूज्योपि यत्त्वयावामनीकृतम् ॥२॥ हे तृष्णे ! हे देवि ! तेरेप्रति मेरानमस्कार

हो तू पुरुष की धैर्यताकानाशकरनेवाली है जो विष्णु तीनोंलोकों में पूज्यथा उसको भी तूने वामन याने छोटाबनादिया ॥ ३ ॥ हे जनक ! तृष्णाका त्यागही मुक्तिका हेतुहै ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

त्वमेकश्चेतनःशुद्धो जडंविश्वमसत्तथा ॥ अविद्यापिनकिंचित्साकाबुभुत्सातथापिते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

त्वम् एकः चेतनः शुद्धः जडम् विश्वम् असत् तथा अविद्या अपि न किञ्चित् सा का बुभुत्सा तथा अपि ते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्	= तू	विश्वम्	= संसार
एकः	= एक	जडम्	= जड़
शुद्धः	= शुद्ध	च	= और
चेतनः	= चैतन्यरूपहै	असत्	= असत् है

तथा = वैसेही	तें = तुझ को
साअवि- } = वह अवि	का = क्या
द्याअपि } = द्याभी	
नकिंचित् = असत् है	बुभुत्सा = जानने की
तथाअपि = ऐसा होने पर	इच्छा है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि तृष्णामात्र बन्धनका हेतु माना जावै तो आत्मज्ञानकी प्राप्तिकाहेतु भी तृष्णाबन्धन का हेतु होनाचाहिये ॥ उत्तर ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! इस जगत् में तीनही पदार्थ हैं एकआत्मा दूसरा जगत् तीसरी अविद्या ॥ प्रथम आत्माके लक्षण को दिखाते हैं ॥ स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तोऽवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपोयस्तिष्ठति सआत्मा ॥ १ ॥ जो स्थूल सूक्ष्म कारण इनतीनोंशरीरों से भिन्न है और जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इनतीनों अवस्थाओं का साक्षी सच्चिदानन्द है वही आत्मा है॥१॥उसके प्राप्ति के लिये तृष्णा करना उचित है ॥ अनादिभावत्वेसतिज्ञाननिवर्तत्वमज्ञानत्वम् ॥ २ ॥ जो अनादिभावरूपहै और आत्मज्ञान करके निवृत्त है वही अज्ञान याने अविद्या है ॥ २ ॥ गच्छतीतिज-

गत॥ ३ ॥ जो सदैवकाल गमनकरतारहै अर्थात् नदी के प्रवाहकी तरह चलतारहै वही जगत् है ॥ ३ ॥ इन तीनों में से हे जनक! तुम एकही चेतन शुद्धआत्मा हो अपनेआत्माकोही पूर्णरूपकरके निश्चय करो ॥ और जगत्को असत्रूप करके जानो अविद्या सद्-सत्से विलक्षण अनिर्वचनीहै उसका कार्य जगत् भी अनिर्वचनी है इसवास्ते इनदोनों में तृष्णा करनी अनुचित है क्योंकि दोनों मिथ्या हैं ॥ मिथ्या वस्तु में मूर्ख अज्ञानी तृष्णाको करता है ज्ञानवान् कदापि नहीं करता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

राज्यंसुताःकलत्राणि शरीराणिसु-खानिच ॥ संसक्तस्यापिनष्टानितवज-न्मनिजन्मनि ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

राज्यम् सुताः कलत्राणि शरीराणि सुखानि च संसक्तस्य अपि नष्टानि तव जन्मनि जन्मनि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
राज्यम्	= राज्य	नष्टानि	= नष्टहुये हैं
सुताः	= लड़के	+ च	= और
कलत्राणि	= स्त्रियां	तव	= तेरे
शरीराणि	= शरीर	अपि	= भी
च	= और	एते	= ये सब
सुखानि	= सुख	जन्मनि जन्मनि	= हरएक जन्म में
संसक्तस्य	= आसक्त पुरुष के	नष्टानि	= नष्टहुये हैं

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी जगत् को असत्यरूप दिखलातेहैं ॥ हे जनक ! राजभोग और स्त्री पुत्रादिक ये सबतो तुम को अनेक जन्मों में मिलतेही रहे हैं और नष्ट भी होतेरहे हैं पूर्बले जन्मों में जो तुमको स्त्री पुत्रादिक प्राप्तहुये थे उनका इसकाल में कहीं भी पता नहीं है और इसवर्तमानजन्ममें जो मिले हैं उनका आगे कहीं भी नाम व निशान नहीं रहेगा इसीसे यही साबितहोताहै कि ये सब असत् याने मिथ्या हैं जाग्रत्के पदार्थ जैसे स्वप्न में असत् होते हैं और स्वप्नके पदार्थ जाग्रत्में जैसे असत्होते हैं और जैसे सुषुप्ति में

दोनों जाग्रत् और स्वप्न असत् होते हैं और सुषुप्ति जाग्रत् दोनों स्वप्न में असत् होते हैं क्योंकि एक दूसरे के विरोधी हैं तैसेही जब मनुष्य अज्ञानरूपी स्वप्न अवस्था से जागकर ज्ञानरूपी जाग्रत् अवस्था को प्राप्तहोता है तब साराजगत् मिथ्या उसको प्रतीत होने लगता है ॥ प्रश्न ॥ सांख्यमतवाले जगत् के पदार्थों को नित्य मानते हैं और कहतेहैं कि कारण मृत्तिकाभी सत्य है और उसका कार्य्य घटभी सत्यहै अर्थात् कारण कार्य्य दोनों सत्य हैं यदि घटमृत्तिका में पूर्वसत्य और सूक्ष्मरूपसे स्थित न होवै तो उसकी उत्पत्ति भी न होवै क्योंकि असत्य की उत्पत्ति सत्से नहीं होती है इसवास्ते घट सत्य है इसी तरह और भी संसारके सारेपदार्थ सत्यही हैं असत्य कोई पदार्थ नहीं है कारणसामग्री से घटका प्रादुर्भावहोता है सामग्री के न होने से घटरूपी कार्यका मृत्तिका रूपी कारण मेंही तिरोभाव रहता है घट मिथ्या नहीं है ॥ उत्तर ॥ त्रिकालाबाध्यत्वंसत्यत्वम् ॥ तीनोंकाल में जिसका बाध न हो उसका नाम सत्य है पर संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है तुमने कहाहै कि कार्य्य अपने कारण में सत्यरूपसे रहताहै इसलिये कार्य्य सत्यहै सो ऐसाकथन ठीक नहीं है क्योंकि पटका का-

रण तन्तुहैं तन्तुओं के जलजाने से पट कहां रहताहै कारण तो उसका रहा नहीं कारण के नाश होने से कार्य्यरूप पटका भी नाशहोगया यदि उन्हीं जलेहुये तन्तुओंसे पट फिर उत्पन्न होवे तब उसपटका प्रादुर्भाव तिरोभाव कारणरूपी तन्तुओंमें समुझा जावै पर वह तन्तु तो रहते नहीं तब प्रादुर्भाव तिरोभाव कहांरहा यदि कहो कि वहपट अपने कारणरूपी तन्तुओंकेकारण जो तन्तुओंके परमाणु हैं उनमें चलागया तो ऐसा कथन भी नहीं बनता है क्योंकि जब तन्तु जलजाते हैं तब उनके परमाणु वायुके चलने से स्थानान्तर में चलेजाते हैं और उन्हीं पृथिवी के परमाणुवों से कार्यांतर बनजाते हैं अर्थात् घटादिक बनजाते हैं क्योंकि जैसे तन्तु पृथिवीकार्य्य हैं तैसे घटादिक भी पृथिवी के कार्य्य हैं पटोंके जलजाने के पीछे उनकी राख से और बहुत वस्तुवें पैदाहोसक्ती हैं यदि पटही उस राख में तिरोभाव रूपकरके रहता तब और वस्तु न बनसक्ती पटकाही उस राखसे प्रादुर्भावहोता पर ऐसा तो नहीं देखते हैं खेत में उसी राखके डालने से घासआदिक पैदाहोजातेहैं फिर औरभी अनेक पदार्थ इसीप्रकार नष्ट और उत्पन्न होते हैं यदि सब सत्यही होवैं तब उनका नाश कदापि न हो और

नाश अवश्य होता है इसी से साबित होता है कि सब पदार्थ अनिर्वचनी मिथ्या हैं और साखी का सत्यकार्य्यवादभी असंगत है ६ ॥

मूलम् ॥

अलमर्थेनकामेन सुकृतेनापिकर्म्मणा ॥ एभ्यःसंसारकान्तारे नविश्रान्तमभून्मनः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

अलम् अर्थेन कामेन सुकृतेन अपि कर्म्मणा एभ्यः संसारकान्तारे न विश्रान्तम् अभूत् मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अर्थेन	= अर्थ करके	अलम्	= बहुत हो-चुका है
कामेन	= कामना करके	तथाअपि	= तौभी
सुकृतेन कर्म्मणा अपि	= सुकृत कर्म्म करके भी	एभ्यः	= इन तीनों से

संसारका न्तारे	=	संसाररूपी जङ्गल में	न विश्रान्तम्	=	शान्त नहीं
मनः	=	चित्त	अभूत्	=	होताभया

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! धर्म अर्थ काम की इच्छाका त्यागकरनाही जीवन्मुक्तिका कारण है और इनमें जो दोष हैं उनको देखो ॥ पृथिवीं धनपूर्णांचेदिमांसागरमेखलाम् ॥ प्राप्नोति पुनरप्येषस्वर्गमिच्छतिनित्यशः॥ १ ॥ अगर यह सम्पूर्ण पृथिवी समुद्र पर्यंत धन करके युक्तभी किसी को मिलजावै तोभी वह नित्यही स्वर्ग की इच्छा करता है ॥ १ ॥ नपश्यतिचजन्मांधःकामांधोनैवपश्यति ॥ मदोन्मत्तानपश्यन्तिह्यर्थीदोषंनपश्यति ॥ २ ॥ जन्मके अन्धोंको कामातुरको मदिराकरके उन्मत्तको और धनकेअर्थी को कुछभी नहीं दिखाताहै इसलिये हे जनक ! धनादिकी इच्छाका भी त्यागही करना विवेकी के लिये उत्तम है क्योंकि संसाररूपी वन में भ्रमण करतेहुये पुरुषका मन धर्म अर्थ कामकरके व्याकुल हुआ २ कभी भी शान्त नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

कृतन्नकतिजन्मानि कायेनमनसा गिरा॥ दुःखमायासदंकर्म्म तदद्याप्युपरम्यताम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

कृतम् न कति जन्मानि कायेन मनसा गिरा दुःखम् आयासदम् कर्म तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कति	कितने	कर्म्म	कर्म्म
जन्मानि	जन्मोंतक	नकृतम्	क्या किया नहीं गया
कायेन	शरीरकरके	+ इति	ऐसा
मनसा	मनकरके	तत्	वह कर्म्म
गिरा	वाणीकरके	अद्यापि	अब तो
दुःखम्	दुःख देने-वाला	उपरम्यताम्	उपराम कियाजावैं
आयासदम्	परिश्रम करनेवाला		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी तृष्णाके उपशमको पूर्व कहकरके अब क्रियाके उपशमको कहते हैं ॥ हे जनक! शरीर और मन और इन्द्रियों को परिश्रम देनेवाले कर्मों को तुम अनेक जन्मोंतक करते आये हो और उनकर्मों के फल जन्ममरणरूपी चक्रमें भ्रमते चले आयेहो अब दिन प्रतिदिन अनेक दुःख उठाते आये पर कुछ सुख न मिला तुम कर्मोंसे उपरामताको प्राप्त हो ॥ क्योंकि विना उपरामता होनेके जीवन्मुक्तिके सुखको पुरुष प्राप्त नहीं होता है ॥ ८ ॥

इति श्रीगुरुप्रोक्तमुपशमाष्टकंनामदशमं प्रकरणम् ॥ १० ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

भावाभावविकारश्च स्वभावादिति निश्चयी ॥ निर्विकारोगतक्लेशः सुखेनैवोपशाम्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

भावाभावविकारः च स्वभावात् इति निश्चयी निर्विकारः गतक्लेशः सुखेन एव उपशाम्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भावाभावविकारः	= भाव और अभावका विकार	निर्विकारः	= विकार-रहित
स्वभावात्	= स्वभाव से होता है	गतक्लेशः	= क्लेशरहित पुरुष
इति	= ऐसा	सुखेनएव	= सुखसेही
निश्चयी	= निश्चय करनेवाला	उपशाम्यति	= शान्ति को प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

अब ज्ञानाष्टक नाम एकादशप्रकरणका आरंभ करते हैं ॥ चित्तकी शान्ति आत्मज्ञानसेही होती है विना आत्मज्ञान के किसी उपाय करके नहीं होती है इस वास्ते प्रथम आत्मज्ञानके साधनों को कहते हैं ॥

भावाभाव अर्थात् स्थूल सूक्ष्मरूप करके जितने वि-
कार याने कार्य्य हैं वे सब माया और मायाके सं-
स्कारों से ही उत्पन्न होते हैं निर्विकार आत्मा से कोई
भी विकार उत्पन्न नहीं होता है ॥ प्रश्न ॥ माया जड़है
आत्मा चेतन है केवल जड़ मायासे कार्य्य उत्पन्न
नहीं होसक्ता है और न केवल चेतन से उत्पन्न हो
सक्ताहै क्योंकि निरवयव आत्मासे सावयवकार्य्य नहीं
उत्पन्न होसक्ता है और न केवल जड़ मायामें आप से
आप विनाचेतनके सम्बन्ध कोई कार्य्य उत्पन्न हो-
सक्ता है यदि होवै तब विनाही कुलाल के आप से
आप मृत्तिका से घट उत्पन्न होजाना चाहिये पर ऐसा
तो नहीं होता है तब आपने कैसे कहा कि स्थूल सू-
क्ष्मरूप कार्य्य सब मायासेही उत्पन्न होते हैं चेतनसे
नहीं होते हैं ॥उत्तर॥ हे जनक ! जैसे चुम्बक पत्थरकी
शक्ति करके लोहे में चेष्टा होती है चुम्बक पत्थर में
नहीं होती तैसे चेतनकी सत्ताकरके मायासे कार्य्य उ-
त्पन्न होते हैं चेतनसे नहीं होते हैं जैसे शरीर में जी-
वात्माकी सत्तासे नख रोमादिक उत्पन्न होते हैं आ-
त्मामें नहीं होते हैं आत्मा असंग है निर्विकार है श-
रीर विकारी नाशी है आत्मा नित्य है चेतन है श-
रीर जड़ है अनित्य है ऐसा निश्चयकरनेवाला पुरुष

विनापरिश्रमके शान्तिको प्राप्त होता है दूसरा नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

ईश्वरःसर्वनिर्माता नेहान्यइतिनिश्चयी ॥ अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः क्वापिनसज्जते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

ईश्वरः सर्वनिर्माता न इह अन्यः इति निश्चयी अन्तर्गलितसर्व्वाशः शान्तः क्व अपि न सज्जते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्व्वनिर्माता	= सबका पैदा करनेवाला	अन्यः	= दूसरा कोई
इह	= इस संसार विषे	न	= नहीं है
ईश्वरः	= ईश्वर है	इति	= ऐसा
		निश्चयी	= निश्चय करनेवाला पुरुष

यस्य = जिसके	शान्तः = शान्त हुआ है
अन्तर्गलितसर्वाशः = अन्तः में गलित होगई हैं सब आशा	क्व अपि = कहीं
च = और	न = नहीं
यस्य आत्मा = जिस का मन	सज्जते = आसक्त होता है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ आपने कहा है कि आत्मा की सत्ताकरके भावाभावविकार उत्पन्न होते हैं सो आत्मा दो हैं एक जीवात्माहै दूसरा ईश्वरात्मा है दोनोंमेंसे किसकी सत्ताकरके भावाभावविकार उत्पन्न होते हैं ॥ उत्तर ॥ ईश्वरात्माकी सत्ताकरके जगत् भरके पदार्थ उत्पन्न होते हैं जीवात्माकी सत्ताकरके शरीरके नख रोमादिक उत्पन्न होते हैं क्योंकि वह आत्मा अपनेही शरीरमात्रमेंही है और इसी कारण परिच्छिन्न है उसकी सत्ताकरके जगत् के पदार्थ उत्पन्न नहीं होसक्ते हैं और ईश्वर सर्वत्र व्यापक है और सारे जगत् से बड़ा है उसकी उपाधि मायाभी बड़ी है इसीवास्ते

सर्वत्रही ईश्वरकी सत्ताकरके पदार्थ उत्पन्न होते हैं और जीवकी उपाधि जो अंतःकरण है वह अल्प शरीर में स्थित है इसवास्ते उसकी सत्ताकरके शरीरके अवयवादिक बढ़ते हैं अल्पउपाधिवाला होने से जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तिवाला है और बड़ी उपाधिवाला होने से ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् है इसी कारण ईश्वरकोही लोक जगत्का कर्त्ता मानते हैं वास्तव से वह कर्त्ता नहीं है केवल माया उपाधि करके कर्तृत्वव्यवहार भी ईश्वर में गौण है मुख्य नहीं है वह वास्तव से अकर्ता है और जीव भी वास्तव से अकर्ता है ॥प्रश्न॥ आपने पूर्व कहा था कि चेतन एकहै अब आप जीव ईश्वर भेद करके दो चेतन कहते हैं ॥ उत्तर ॥ वास्तव से चेतन एकही है परंतु कल्पित उपाधियों के भेद से चेतन का भेद होजाता है हे राजन् ! अविद्यातत्कार्य्यैरहितः शुद्धः ॥ अविद्या और अविद्या के कार्य्य से रहित जो चेतन है उसीका नाम शुद्धचेतन है उसी को निर्गुणब्रह्म भी कहते हैं ॥ सर्वनामरूपात्मकप्रपंचाध्यासाधिष्ठानत्वंब्रह्मत्वम् ॥ संपूर्ण नामरूपात्मक प्रपंचके अध्यासका जो अधिष्ठान होवै उसीका नाम ब्रह्महै उसी शुद्धचेतन में सारा नामरूपात्मक जगत्

अध्यस्त है ॥ मायामें प्रतिबिंबित चेतनका नाम ईश्वर है अंतःकरण में प्रतिबिंबित चेतन का नाम जीव है माया एक है इसवास्ते उसमें प्रतिबिंबित चेतन ईश्वर भी एकही कहाजाता है ॥ अविद्याके अंश अंतःकरण नाना हैं उनमें प्रतिबिंबित चेतनभी नानाहैं चेतनके तीन भेद हैं एक विषयचेतन १ प्रमाण चेतन२ प्रमातृचेतन ३ ॥ घटावच्छिन्नचैतन्यं विषय चैतन्यम् ॥ घटावच्छिन्नचेतनका नाम विषयचेतन है १ ॥ अंतःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यं प्रमाणचैतन्यम् ॥ अंतःकरण की वृत्त्यवच्छिन्नचेतनका नाम प्रमाणचेतन है २ ॥ अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं प्रमातृचैतन्यम् ॥ अंतःकरणावच्छिन्नचेतन का नाम प्रमातृचेतन है ३ ॥ घटादिक विषय अनन्त हैं इसलिये उनसे सम्बन्ध रखनेवालीअन्तःकरण की वृत्तियें भी अनन्त हैं और अन्तःकरणभी अनन्तहैं इन उपाधियों के भेद करके चेतनके भी अनन्त भेद होगये हैं वास्तव से चेतन एक महाकाशकी तरह है जैसे महाकाशका घटमठादि उपाधियों के साथ वास्तव से कोई भी सम्बन्ध नहीं है तैसे कल्पित उपाधियों के साथ अन्तःकरणों काभी कोई भी सम्बन्ध नहीं है ऐसे निश्चय करनेवाला पुरुष नि-

श्चलचित्तहुआ कहीं भी संसक्त नहीं होता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

आपदःसम्पदःकाले दैवादेवेतिनि-श्चयी ॥ तृप्तःस्वस्थेन्द्रियोनित्यं नवां-छतिनशोचति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

आपदः सम्पदः काले दैवात् एव इति निश्चयी तृप्तः स्वस्थेन्द्रियः नि-त्यम् न वांछति न शोचति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
काले =	समयपर	इति नि-श्चयी =	ऐसानि-श्चयक-रनेवाला पुरुष
आपदः =	आपत्तियां		
च =	और		
सम्पदः =	सम्पत्तियां	नित्यम् तृप्तः स्व-स्थेन्द्रियः =	नित्य सं-तुष्ट व स्व-स्थेन्द्रिय हुआ
दैवातएव =	दैवयोगसे ही होती हैं		

नवांछति = अप्राप्त वस्तुको नहीं इच्छा करता है
च = और
न = न
शोचति = नष्ट हुये वस्तुको शोचता है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यदि ईश्वर ही सर्व जगत्का रचनेवाला माना जावेगा तब फिर किसी को दरिद्री किसी को धनी किसी को दुःखी किसीको सुखी न होना चाहिये पर ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं इस लिये ईश्वर में विषम दृष्टिआदिक दोष आतेहैं ॥ उ० ॥ हे राजन् ! ईश्वर में दोष तब आवै जब ईश्वर किसी कर्मों को रचै सो तो नहीं है क्योंकि गीतामें ही लिखाहै ॥ नकर्तृत्वंनकर्माणिलोकस्यसृजतिप्रभुः ॥ नकर्मफलसंयोगं स्वभावस्तुप्रवर्तते ॥ १ ॥ ईश्वर जीवोंके कर्तृत्वपने को और कर्मों को नहींरचताहै और कर्मोंकेफलको संयोगको भी नहीं रचता ये सब अनादिकाल के संस्कारों से होतेहैं अर्थात् अनादि चलेआते हैं इसवास्ते ईश्वर में कोई दोष नहीं आता है ॥ १ ॥ प्र० ॥ कर्म जड़ है

स्वतःफलको नहीं देसक्ता है और जीव असमर्थ है वह भी अपने आप फलको नहीं भोग सक्ता है तब फिर फलदाता ईश्वर में दोष क्यों नहीं आवेगा॥ उ० ॥ ईश्वर में दोष तब आवै जब ईश्वर जीवों से शुभ अशुभ कर्म करावै और फिर उनको फल देवै या जीवों को उत्पन्न करके उनसे कर्म्म करावै ऐसा तो नहीं है क्योंकि प्रवाहरूप करके साराजगत् अनादि चलाआता है कोई भी नई वस्तु जीव या ईश्वर उत्पन्न नहीं करता है जैसे पृथिवी में सब वनस्पति के बीज रहते हैं परन्तु विना सहकारी कारण सामग्री के अंकुरों को उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं तैसे माया में सब प्रकार के पदार्थों के सूक्ष्मरूप से बीज बने रहते हैं परन्तु विना सहकारी कारण के उत्पन्न नहीं होते हैं जिसकालमें उसकी उत्पत्ति की सामग्री जुड़जाती है उसी काल में वह उत्पन्न होजाते हैं जैसे जुदा खेतों मे जुदा २ बीज हर जोतकर किसान बो देता है यानी किसी में चना किसी में गेहूं किसी में मटरादिक बोताहै परन्तु विना तरीके वे नहीं उत्पन्न होते हैं और पानी विना बीजके फलको नहीं देसक्ते हैं जब खेत बोयाहो और समय पर वर्षा हो तब जाकर बीजों से आगे फल उत्पन्न होते हैं वर्षा सब

खेतों में एकसाँ बराबर होती है पर जैसा २ बीज जिस खेत में होताहै वैसा २ उसमें फल उत्पन्न होता है न केवल खेत फलको उत्पन्न करसक्ताहै न केवल बीजही फल को उत्पन्न करसक्ता है खेत बीज और वर्षा तीनों मिलकरकेही फलको उत्पन्न करते हैं तैसेही दार्ष्टान्त में बादल स्थानापन्न ईश्वरहै खेत स्थानापन्न जीवों के अन्तःकरण हैं बीज स्थानापन्न जीवों के संचितकर्म हैं ईश्वर की सत्तारूपी वर्षा सर्वत्र तुल्य है क्योंकि ईश्वर चेतन सर्वत्र तुल्यहै परन्तु जैसे २ जिसके कर्मरूपी बीज अन्तःकरणरूपी खेतमें स्थित हैं वैसे २ उसको फल होते हैं ईश्वर स्वतंत्र याने कर्मों से विना फल का प्रदाता नहीं है यदि ऐसा हो तो उसमें विषमदोष आवै इसी वास्ते ईश्वर न्यायकारी है ॥ प्र० ॥ यदि ईश्वर न्यायकारी माना जावै तब दयालुता आदिक गुण उसमें नहीं रहेंगे ॥ उ० ॥ दयालुतादिकगुण यदि मानेजावेंगे तब न्याय-कारिता नहीं रहती है क्योंकि दोनों परस्पर विरोधीहैं जो राजा न्यायकारी होता है वह दयालु नहीं होताहै यदि दयालुता करैगा तब हननकर्ता पुरुष किसी को हनन करनेकी आज्ञा नहीं देगा और यदि देगा तब वह रोने चिल्लाने लगेगा क्योंकि प्राण तो सबके प्यारे

हैं उसके दुःख को देखकर राजाको दया उसपर होगी और दयाके वश्य होकर राजा उसको छोड़देगा तब उसकी न्यायकारिता जाती रहैगी इसी तरह ईश्वर भी यदि पापियों को पापका फल जो दुःख है उसको नहीं देगा दया करके छोड़ देगा तब जगत् में कोई भी दुःखी नहीं रहेगा पर ऐसा तो नहीं देखते हैं क्योंकि संसारमें लाखों पुरुष बड़े २ असाध्यरोगों करके दुःखीहैं रात दिन ईश्वर २ पुकारते २ मरजाते हैं उनका दुःख दूर नहीं होता है लाखों अकाल में अन्न विना मरजातेहैं और जीवकर्म के फल दुःखोंको भोगकर अच्छे होजाते हैं अनेक प्रकार के कर्म हैं अनेक प्रकार के उनके फल हैं विना भोग के कर्म नहीं छूटते हैं इन्हीं युक्तियों से साबित होता है कि ईश्वर न्यायकारी है दयालु नहीं है॥ प्र० ॥ फिर भक्तलोग ईश्वरकी भक्ति करनेके कालमें क्यों कहते हैं कि हे ईश्वर! आप दयालु हैं कृपालु हैं न्यायकारी हैं॥ उ० ॥ गुणारोप्य से विना भक्ति और उपासना नहीं होसक्ती है जैसे मिथ्या कल्पीहुई मूर्त्तिके ध्यान करने से अर्थात् उस मूर्त्ति में चित्तके रोकने से चित्त में शांति और आनन्द होताहै अर्थात् चित्त के निरोध से नित्य आत्मसुख की प्राप्ति होती है तैसेही मिथ्या

दयालुतादिक गुणों को ईश्वर में आरोप्य करने से भी ईश्वर में प्रेम उत्पन्न होता है और उस प्रेम से पुरुषको आनन्द होता है उसीप्रेम का नाम भक्ति है दयालुतादिक गुणों का आरोप्य करना निरर्थक नहीं है वास्तव से तो ईश्वर गुणातीत है गुण मायाका कार्य है और माया के सम्बन्ध करके ईश्वर गुणों वाला कहाजाता है संसार में सब जीवों को आपदः और संपदः प्रारब्ध कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होती है ऐसे निश्चय करनेवाला जो पुरुष है और भोगों की तृष्णा से जो रहित है और इन्द्रियादिक जिसके वश हैं और किसी पदार्थ में जिसकी इच्छा नहीं है अर्थात् अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका जो इच्छानहीं करता है और प्राप्तवस्तु के नष्ट होनेसे जो शोक नहीं करता वही नित्य सुखको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

सुखदुःखेजन्ममृत्यूदैवादेवेतिनिश्चयी॥साध्यादर्शीनिरायासः कुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ पदच्छेदः ॥

सुखदुःखे जन्ममृत्यू दैवात् एव

इति निश्चयी साध्यादर्शी निरायासः कुर्वन् अपि न लिप्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सुखदुःखे	= सुख और दुःख	साध्यादर्शी	=साध्यकर्म कादेखनेवाला
जन्ममृत्यू	= जन्म और मरण	च	= और
दैवात्एव	= दैवसे ही होताहै	निरायासः	=श्रमरहित
इति	= ऐसा	कुर्वन्	= कर्मको करताहुआ
निश्चयी	= निश्चयकरनेवाला	नलिप्यते	= नहीं लिपायमान होता है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ पूर्वोक्त निश्चय करनेवाले ज्ञानी भी तो कर्मोंको करतेहुये दिखाई पड़ते हैं उनको कर्मोंका फल होगा या नहीं ॥ उ० ॥ जो यथार्थ बोधवाले हैं उनको कर्मों का फल नहीं होगा क्योंकि प्रथम वे फलकी कामनासे रहित होकर कर्मोंको करते हैं दूसरे श्रेष्ठाचारके लिये वे कर्मोंको करते हैं तीसरे वे कर्मों को देह इन्द्रियादिकों

के धर्म जानते हैं अपने आत्माका धर्म नहीं मानते हैं चौथे अहंकारसे रहित होकर वे कर्मों को करते हैं इन्हीं चार हेतुओं करके उनको कर्मोंका फल नहीं होताहै॥ गीतामें भी कहाहै ॥ यस्यनाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहंतिननिबध्यते १ जिसका देह इन्द्रियादिकों में अहंकृत भाव नहीं है याने मैं देहहूं या मेरा यह देह है इसप्रकार की जिसकी भावना नहीं है और कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धिभी जिसके लिपायमान नहीं होसक्ती है सो विद्वान् यदि प्रारब्धकर्म के वश्य से शरीरादिकोंकरके तीनोंलोकोंका वध भी करदेवै तौ भी उसको ऐसा करने का फल लिपायमान नहीं होता है जो इसप्रकार निश्चय करता है कि सुख दुःखादिक ये सब प्रारब्धकर्म के वश से जीवों को होतेहैं वह विद्वान् परिश्रमसे रहित प्रारब्धवश से कर्मोंको करताहुआ उनके फलके साथ लिपायमान नहीं होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

चिन्तयाजायतेदुःखं नान्यथेहेतिनिश्चयी ॥ तयाहीनःसुखीशान्तः सर्वत्रगलितस्पृहः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

चिन्तया जायते दुःखम् न अन्यथा इह इति निश्चयी तया हीनः सुखी शान्तः सर्वत्रगलितस्पृहः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
इह	इस संसार विषे
चिन्तया	चिन्तासे
दुःखम्	दुःख
जायते	उत्पन्नहोताहै
अन्यथा	औरप्रकार से
न	नहीं
इति	ऐसा
निश्चयी	निश्चयकरने वाला
सुखी	सुखी और
शान्तः	शांत है
सर्वत्रगलितस्पृहः	सर्वत्र उसकी इच्छा गलित है
+ च	और
तया	उससे याने चिन्तासे
हीनः	रहित है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ कर्मोंको करताहुआ पुरुष उनके फलके साथ

लिपायमान क्यों नहीं होता है जो कर्ता होताहै वही भोक्ताभी अवश्य होता है॥ उ० ॥ इस संसार में पुरुष को चिंता करने से ही दुःख उत्पन्न होता है विना चिंताके दुःख नहीं होता है जो इसप्रकार निश्चय करता है वह चिंताको त्याग देता है और शान्तचित्त और स्थिर अन्तःकरणवाला होता है और श्रमसे रहित हुआ २ भी कर्मों से जन्य अर्थोंका भोगनेवाला नहीं होता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

नाहंदेहोनमेदेहो बोधोहमितिनिश्चयी ॥ कैवल्यमिवसंप्राप्तो नस्मरत्यकृतंकृतम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

न अहम् देहः न मे देहः बोधः अहम् इति निश्चयी कैवल्यम् इव संप्राप्तः न स्मरति अकृतम् कृतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= मैं	न	= नहीं हूँ
देहः	= शरीर	देहः	= देह

मे = मेरा	संप्राप्तः = प्राप्त होता हुआ
न = नहीं है	निश्चयी = निश्चयकरने वालापुरुष
बोधोऽहम् = मैं ज्ञान स्वरूपहूं	अकृतं कृतम् } = अकृत और कृतकर्म को
इति = इसप्रकार	नस्मरति = नहींस्मरण करता है
कैवल्यम् = विदेहमुक्ति को	

भावार्थ ॥

पूर्वोक्त साधनोंकरके युक्त जो ज्ञानी हैं उनकी दशाको दिखाते हैं ॥ ज्ञानवान् का ऐसा निश्चय होताहै "नाहंदेहः" मैं देह नहीं हूं और "नमेदेहः" मेरा यह देह नहीं है मैं नित्य बोधस्वरूप हूं॥ आत्मज्ञानकरके देहादिकों में दूर होगया है अहं और मम अभिमान जिसका कर्तव्य अकर्तव्य जिस का बाकी नहीं रहाहै और कृत अकृतका स्मरण भी जिसको नहीं है वही ज्ञानवान् जीवन्मुक्त कहा जाताहै ॥ इस में एक दृष्टांतको कहते हैं ॥ एक मंदिर में एक महात्मा रहते थे आत्मविद्याका अभ्यास करते २ उनकी अवस्था चढ़गईथी और सर्वक्रिया शरीर

की उनकी छूटगईथीं कोई उनके मुख में डालता तव खाते कोई पानी पिलाता तव पीते एकस्थान में बैठे रहते न किसी से बोलते न चालते अपने आत्मानंद में ही मग्न रहते एकदिन दोपहर के समय उसी मंदिर में लड़के खेलते थे एक लड़केने कहा इन महात्माके पटपर याने स्थलपर चौपट वनाकर खेलैं दूसरा लड़का चाकू ले आया और जब चाकूसे पटपर लकीरैं खींचा तब उसमेंसे रुधिर बहने लगा महात्मा ज्यों के त्यों पड़ेरहे लड़के डर के मारे भागगये कोई एक पुरुष मंदिर में आया और उसने महात्मा के पटमें रुधिर बहते देखा तब उसने इधर उधरसे पूंछा तो उसको मालूमहुआ कि यह लड़कोंने किया है तब दोचार आदमी मिलकर जर्राहको बुलालाये जब जर्राह आकर जखम को हाथ लगाकर सीनेलगा तब महात्माने न सीनेदिया जब थोड़े दिनों के बाद जखममें कीड़े पड़गये तब भी महात्माका चेहरा मैला न हुआ उसी नगरमें थोड़ीदूरपर एक मंदिर में एक और महात्मा रहते थे उन्होंने जब उनका हाल सुना तब एक आदमी की जबानी उन महात्मा को कहला भेजा कि भाई जिस मकान में आदमी रहता है उस मकानमें उसको झाड़ू बुहारी देना अवश्य होता है

जब ऐसा संदेश उनको पहुंचा तब उन्होंने जवाब दिया महात्माजी से कहना कि जब आप तीर्थोंमें गये थे राह में बीसों धर्मशालों में आप रात्रीभर रहतेगये थे वे धर्मशाले अब गिरपड़े हैं अब जाकर उनकी मरम्मत करिये हमकोतो शरीररूपी धर्मशाला में आयुरूपी रात्री भर रहनाहै वह रात्री भी व्यतीत होगई है अब इस शरीररूपी धर्मशाला की कौन मरम्मत करै इतना कहकर फिर चुप होगये थोड़ेदिनों के बाद उन्होंने शरीर का त्याग करदिया ऐसी दशा जीवन्मुक्तों की होती है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तमहमेवेति निश्चयी ॥ निर्विकल्पःशुचिःशान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तम् अहम् एव इति निश्चयी निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तम्	= ब्रह्मासे लेकरतृण पर्यन्त	शुचिः	= शुद्ध
अहम्एव	= मैंहीहूं	च	= और
इति	= इसप्रकार	शान्तः	= शान्तरूप
निश्चयी	= निश्चय करनेवाला	च	= और
निर्विकल्पः	= संकल्प रहित	प्राप्ताप्राप्तविनिवृत्तः	= लाभालाभ रहितपुरुष
		+सुखी भवति	सुखी होताहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्तों के और लक्षणों को दिखलाते हैं ब्रह्मा से लेकर स्तंबपर्यंत संपूर्ण जगत् मेराही रूप है अर्थात् मैंही सर्वरूपहूं ऐसा निश्चय करनेवाला जो पुरुष है वही निर्विकल्प समाधीवाला जीवन्मुक्त है वही वि-षयरूपी मल के सम्बन्ध से भी रहित है वही शांत चित्तवाला है और वही प्राप्ताप्राप्त विषयों में इच्छासे रहित है वही परमसंतोषवालाहै वही अपने आत्मा-नंद करकेही पूर्ण है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

नानाश्चर्य्यमिदंविश्वं नाकिंचिदितिनिश्चयी ॥ निर्वासनःस्फूर्तिमात्रोन किंचिदिवशाम्यति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

नानाश्चर्य्यम् इदम् विश्वम् न किञ्चित् इति निश्चयी निर्वासनः स्फूर्तिमात्रः न किञ्चित् इव शाम्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	यह	निश्चयी	निश्चय करनेवाला
विश्वम्	संसार	निर्व्वासनः	वासना-रहित
नानाश्चर्य्यम्	अनेक आश्चर्य्य-वाला	स्फूर्तिमात्रः	बोधस्वरूपपुरुष
न किंचित्	कुछ नहीं है याने मिथ्या है	न किञ्चिदिव	व्यवहार रहित
इति	इसप्रकार	शाम्यति	शान्तिको प्राप्त होताहै

भावार्थ ॥

प्र० ॥ हे प्रभो! ब्रह्मज्ञानी के मनके संकल्प कैसे स्वतः नष्ट होजाते हैं ॥ उ० ॥ जब अधिष्ठानचेतन के साक्षात्कार होने से अध्यस्तवस्तु का बाध होजाताहै अर्थात् आत्मा के साक्षात्कार होने से जब नाना प्रकार के आश्चर्यरूप विश्वका बाध होजाता है तब विद्वान्के मनके सब संकल्प दूरहोजाते हैं ॥ प्र० ॥ हे प्रभो! यदि आत्माके साक्षात्कार होनेसे जगत् का बाध याने नाश होजाता तो फिर पंचभूतात्मक जगत् भी न रहता और जगत् के नाश होनेपर विद्वान् के देहादिक भी न रहते पर ऐसा तो नहीं देखते हैं इसी से जाना जाता है कि आत्माके साक्षात्कार होने पर भी जगत् ज्योंका त्यों बनारहता है ॥ उ० ॥ नाश दो प्रकारका है एक तो बाधरूप नाश है दूसरा निवृत्तिरूप नाश है ॥ उपादानेनसहकार्य्यविनाशोबाधः॥१॥ उपादानकारण के सहित जो कार्य्य का नाश है उसका नाम बाधहै ॥१॥ विद्यमाने उपादाने कार्य्यविनाशो निवृत्तिः ॥ २ ॥ उपादान के विद्यमान होते हुये जो कार्य्यका नाशहै उसका नाम निवृत्ति है ॥२॥ विद्वान् की दृष्टि से अज्ञानरूपी कारणके सहित कार्य्यरूपी जगत् का नाश होजाता है जगत् का नाशरूप

बाध होजाताहै परन्तु बाधिता अनुवृत्ति करके बना रहता है और स्वप्न प्रपञ्च की निवृत्तिरूप बाध जाग्रत् में होजाताहै क्योंकि उसका उपादानकारण जो अविद्याहै वह बनी रहतीहै कारणरूपी अविद्याके विद्यमान होने पर स्वप्नरूपी कार्यका नाश होजाता है इसीसे वह निवृत्तिरूप बाध है॥ अज्ञान के अनेक अंशहैं जिस विद्वान् के अंतःकरणरूपी अंश का जो अज्ञानका कार्य है नाश होजाता है उसी को अपने आत्माका साक्षात्कार होजाता है और बाकी के जीवोंको नहीं होताहै उन का जगत् भी बना रहताहै जैसे दश पुरुष सोये हुये अपने २ स्वप्नोंको देखते हैं उनमें से जिस की निद्रा दूरहोगई है उसी का स्वप्नप्रपंच नाश होजाता है बाकी के पुरुषों का बनारहता है जिसपुरुष को ऐसा निश्चयहोगया है कि जगत् अपनी सत्ता से शून्य है ब्रह्मकी सत्ता करके सत्यवत् भान होता है वास्तव से मिथ्या है वही पुरुष शान्ति को प्राप्त होजाता है॥ ८॥

इति श्रीबाबूजालिमसिंहविरचितायामष्टावक्रगीता
भाषाटीकायांज्ञानाष्टकंनामैकादशंप्रकरणं
समाप्तम्॥ ११॥

बारहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

कायकृत्यासहः पूर्वं ततोवाग्विस्तरासहः ॥ अथचिन्तासहस्तस्मादेवमेवाहमास्थितः ॥१॥ पदच्छेदः ॥

कायकृत्यासहः पूर्वम् ततः वाग्विस्तरासहः अथ चिन्तासहः तस्मात् एवम् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पूर्वम्	पहले		
कायकृत्यासहः	शारीरिककर्म का न सहारने वालाभया याने कायिक कर्म का त्यागने वाला हुआ	वाग्विस्तरासहः	वाणीके जप्यरूप कर्म का न सहारने वाला भया याने वाचिककर्म का त्यागने वालाहुआ
ततः	तिसके पीछे	अथ	तिसके पीछे

चिन्ता सहः	=	चिन्ता के व्यापार को न सहारने वाला भया याने मानसिक कर्म का त्याग करनेवाला हुआ

तस्मात्, एवम् = इसी कारण

अहम्एव = मैं ही

आस्थितः = स्थित हूं

भावार्थ ॥

अब द्वादशाष्टकप्रकरणका आरम्भ करते हैं पूर्व जो गुरुने शिष्य के प्रति ज्ञानाष्टक कहा है उसी को अब शिष्य अपने में दिखाता है ॥ शिष्य कहता है हे गुरो! प्रथम जो शरीरके कर्म यज्ञादि हैं उनका मैं असहन करनेवाला हुआ याने शारीरिककर्म मेरे से सहारे नहींगये हैं फिर वाणी के कर्म जो निन्दा स्तुति आदिक हैं उनका मैं असहन किया फिर मनके कर्म जो जपादिक हैं उनका मैंने असहन किया अर्थात् कायिक वाचिक मानसिक संपूर्ण कर्मोंको त्याग करके मैं स्थित होताभया ॥ १ ॥

मूलम् ॥

प्रीत्यभावेनशब्दादेरदृश्यत्वेनचात्मनः ॥ विक्षेपैकाग्रहृदय एवमेवाहमास्थितः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रीत्यभावेन शब्दादेः अदृश्यत्वेन च आत्मनः विक्षेपैकाग्रहृदयः एवम् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
शब्दादेः	= शब्द आदि की	विक्षेपैकाग्रहृदयः	= विक्षेपों से एकाग्र हुआ है मन जिसका
प्रीत्यभावेन	= प्रीति के अभावसे	एवमएव	= ऐसा
च	= और	अहम्	= मैं
आत्मनः	= आत्माके	आस्थितः	= सब तर्फसे स्थितहूं
अदृश्यत्वेन	= अदृश्यतासे		

भावार्थ ॥

अब तीनप्रकार के कर्मोंके त्यागके हेतुको कहते हैं॥ कायिक वाचिक मानसिक ये तीनोंकर्म मनकी एकाग्रता बिषे विक्षेपके करनेवाले हैं॥ लोकांतर की प्राप्ति करनेवाले जो यज्ञादिक कर्म हैं उनसे शरीर में विक्षेप होता है शरीरमें विक्षेप होने से मनका निरोध नहीं होसक्ताहै वाणीके कर्म जो निन्दा स्तुति आदिकहैं उनसे भी मनका निरोध नहीं होसक्ता है और मन के जो जपादिक कर्म हैं वेभी मनके विक्षेप करनेवाले हैं तीनों कर्मों में जो प्रीति है उसका त्यागकरना अवश्य है आत्मा अदृश्य है याने ध्यानादिकों का अविषय है आत्मा चेतन है मन बुद्धि आदिक सब अचेतन हैं याने जड़ हैं जड़ चेतनको विषय नहीं करसक्ता है इसवास्ते आत्मा के ध्यान करने की चिन्तारूपी विक्षेप भी मेरे को नहीं है संपूर्ण विक्षेपों से मैं रहित होकर अपने स्वरूप में ही स्थितहूं॥ २॥

मूलम् ॥

समाध्यासादिविक्षिप्तौ व्यवहारःसमाधये॥ एवंविलोक्यनियममेवमेवाहमास्थितः॥ ३॥

पदच्छेदः ॥

समाध्यासादिविक्षिप्तौ व्यवहारः समाधये एवम् विलोक्य नियमम् एवम् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
समाध्यासादिविक्षिप्तौ	सम्यक्अध्यासआदि करके विक्षेपहोने पर	एवम्नियमम्	ऐसे नियम को
समाधये	समाधि के लिये	विलोक्य	देखकरके
व्यवहारः	व्यवहार है	एवमएव	समाधि रहित
		अहम्	मैं
		आस्थितः	स्थित हूं

भावार्थ ॥

प्र० ॥ किसी प्रकारके विक्षेप के न होनेपर भी समाधिके लिये तो कुछ मनआदिकों को व्यापार करना ही पड़ैगा ॥ उ० ॥ कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अनर्थों का हेतु जो अभ्यास है उसी करके विक्षेप होता है तिस विक्षेप के दूर करने के लिये समाधि के वास्ते मनआ-

लालरंग जो कि पुष्पका धर्म है प्रतीत होने लगता है और जब पुष्प दूर करदियाजाताहै तो लालरंग जो उस पत्थर में दिखाई देताथा लोप होजाता है आत्मा में अन्तःकरण के धर्म राग द्वेषादिक आध्यासिक हैं स्वाभाविक नहीं हैं इसलिये वे दूर होसकते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

सर्वभूतेषुचात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि ॥ विज्ञायनिरहंकारोनिर्ममस्त्वं सुखीभव ॥ ६ ॥

पद[illegible] ।

सर्वभूते[illegible] सर्वभूतानि च आ[illegible]कारः निर्ममः

से

सर्वभूते[illegible] सर्वभूतोंमें
आत्मानम् = आत्मा को
च = और

अन्वयः शब्दार्थ
सर्वभूतानि अनुभव क
आत्मा[illegible] हो
विज्ञाय [illegible]थत हूं

निरहंकारः = अहंकार रहित	त्वम् = तू
च = और	सुखी = सुखी
निर्ममः = ममतारहित	भव = हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत संपूर्ण भूतों में कारणरूप करके अनुस्यूत एकही आत्मा को जानकर और संपूर्ण भूत प्राणियों को आत्मा में अध्यस्त याने कल्पित मानकरके अहंकार और ममतासे रहित होकर तू सुखपूर्वक विचर ६॥

मूलम् ॥

विश्वंस्फुरतियत्रेदं तरंगाइवसागरे ॥ तत्त्वमेवनसंदेहश्चिन्मूर्तेविज्वरो भव ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

समाधान

ही पड़ैगा ॥ स्फुरति यत्र इदम् ...ा है तिस

हेतु जो अध्य... सागरे तत् त्व... के वास्ते मनआ-

विक्षेप के दूर

अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र	जिसस्थानविषे
इदम्	यह
विश्वम्	संसार
तरंगाइव सागरे	समुद्रविषे तरंगोंकी तरह
स्फुरति	स्फुरताहै
तत्	सो

अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्एव	तूहीहै
नसंदेहः	इसमेंसंदेह नहीं
चिन्मूर्ते	हे चैतन्यरूप
विज्वरः	संतापरहित
भव	हो

भावार्थ ॥

हे जनक! जिस अधिष्ठान चेतन में यह स्व जगत् समुद्र में तरंगकी तरह अभिन्न स्फुरण हो रहा है वही चेतन तुम्हारा आत्मा है इसवास्ते हे जनक! तुम विगतज्वर होकर ऐसा अनुभव करता चैतन्यस्वरूप हूं संतापों से रहित हूं॥ ७॥

मूलम् ॥

दत्स्वतातश्चक्रत्स्वनात्रमोह

ष्वभोः ॥ ज्ञानस्वरूपोभगवानात्मा त्वंप्रकृतेःपरः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व न अत्र मोहम् कुरुष्व भोः ज्ञानस्वरूपः भगवान् आत्मा त्वम् प्रकृतेः परः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तात	हे सौम्य	त्वम्	तू
भोः	हे प्रिय	ज्ञानस्वरूपः	ज्ञानरूप
श्रद्धत्स्व श्रद्धत्स्व	श्रद्धाकर २	भगवान्	ईश्वर
अत्र	विषे	आत्मा	परमात्मा
मोहम्	मोह	प्रकृतेः	प्रकृतिसे
न कुरुष्व	मतकर	परः	परे है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे तात ! आत्माकी त्रि
संभावना और विपरीतभावनारूपी

दिकों का व्यापार होता है अन्यथा नहीं होता है ऐसे नियम को देखकरके प्रथम मैंने अध्यास को दूर करदिया है इसवास्ते समाधि के लिये भी मनादिकों के व्यापारकी कोई आवश्यकता नहींहै किंतु समाधि से रहित अपने आत्मानंद में मैं स्थित हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

हेयोपादेयविरहादेवंहर्षविषादयोः ॥
अभावादद्यहेब्रह्मन्नेवमेवाहमास्थितः ४

पदच्छेदः ॥

हेयोपादेय विरहात् एवम् हर्षविषादयोः अभावात् अद्य हे ब्रह्मन् एवम् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हे ब्रह्मन्	= हे प्रभो	अभावात्	= अभाव से
हेयोपादेयविरहात्	= त्याज्य और ग्राह्यवस्तुके वियोगसे	अद्य	= अब
एवम्	= वैसेही	अहम्	= मैं
हर्षविषादयोः	= हर्ष विषाद के	एवमएव	= जैसाहूं वैसाही
		आस्थितः	= स्थित हूं

भावार्थ ॥

जनकजी फिर अपने अनुभवको कहते हैं हे प्रभो! त्यागनेयोग्य और ग्रहण करनेयोग्य वस्तुका अभाव होनेसे अर्थात् आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेसे न तो मेरे को कुछत्याग करनेयोग्य रहाहै और न कुछ ग्रहण करने के योग्य रहाहै इसीवास्ते हर्ष विषादादिक भी मेरेको नहींहैं क्योंकि हर्ष विषादादिक भी ग्रहण और त्याग करने सेही होते हैं इस वास्ते अब मैं अपने स्वरूपमेंही स्थित हुआहूं ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

आश्रमानाश्रमंध्यानंचित्तस्वीकृत वर्ज्जनम् ॥ विकल्पंममवीक्ष्यैतैरेवमे वाहमास्थितः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

आश्रमानाश्रमम् ध्यानम् चित्तस्वीकृतवर्जनम् विकल्पम् मम वीक्ष्य एतैः एवम् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
+यत्	= जो	एतैः	= तिन सबसे
आश्रमानाश्रमम्	= आश्रम और अनाश्रम है	उत्पन्नः	= उत्पन्नहुये
ध्यानम्	= ध्यान है	मम	= अपने
च	= और	विकल्पम्	= विकल्पको
चित्तस्वीकृतवर्जनम्	= चित्तसेस्वीकार कियेवस्तुकात्याग है	वीक्ष्य	= देखकरके
		अहम्	= मैं
		एवम्	= इन तीनों से रहित
		आस्थितः	= स्थितभया हूं

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो! आश्रमोंके धर्मोंसे और उनके फलों के सम्बन्ध से भी मैं रहितहूं अनाश्रमी जो त्यागी संन्यासी हैं उनके धर्म जो दण्डादिकों का धारण करना है उनके सम्बन्धसे भी मैं रहितहूं और योगियों के धर्म जो धारणा ध्यानादिक हैं उनसे भी मैं रहितहूं क्योंकि ये सब अज्ञानियों के लिये बने हैं मैं इन सबका साक्षी चिद्रूप हूं ॥ यःशरीरेन्द्रियादिभ्यो विभिन्नंसर्वसाक्षिणम्। पारमार्थिकविज्ञानंसुखात्मानंच

स्वप्रभम् १ परंतत्त्वंविजानातिसोऽतिवर्णाश्रमीभवेत् २ जो पुरुष शरीर इन्द्रियादिकों से भिन्न और शरीरादिकों के साक्षी विज्ञानस्वरूप सुखस्वरूप स्वयंप्रकाश परमतत्त्व अपने आत्मा को जान लेता है सो अतिवर्णाश्रमी कहलाता है ॥ सो मैं वर्णाश्रमों से अतीत सब का साक्षी चिद्रूप हूं ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

कर्माऽनुष्ठानमज्ञानाद्यथैवोपरमस्तथा ॥ बुध्वासम्यगिदंतत्त्वमेवमेवाहमास्थितः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

कर्मानुष्ठानम् अज्ञानात् यथा एव उपरमः तथा बुध्वा सम्यक् इदम् तत्त्वम् एवम्एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	जैसे	तथा	वैसाही
कर्मानुष्ठानम्	कर्मका अनुष्ठान	उपरमः	कर्मकात्याग
अज्ञानात्	अज्ञानसे है	एव	भी है

इदम् = इस तत्त्वको	एवम्एव = कर्म्म करने और कर्म न करने की इच्छाकोत्यागके
सम्यक् = भलीप्रकार	
बुध्वा = जानकरके	
अहम् = मैं	आस्थितः = स्थितहूं

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं कर्मोंका अनुष्ठान अज्ञानतासे होता है अर्थात् जिसको आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं है वही कर्मों का अनुष्ठान स्वर्गादि फल की प्राप्ति के लिये करता है और आत्मा के अज्ञानं से ही पुरुष कर्म करने से उपराम भी होजाता है जिस को आत्मा का साक्षात्कार होगया है वह न कर्म करता है और न उनसे उपराम होता है प्रारब्धवश से शरीरादिक कर्मोंको करता है वा नहीं करता है ऐसा जानकर ज्ञानी अपने नित्यानंद स्वरूप में स्थित रहताहै ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

अचिंत्यंचिन्त्यमानोपिचिन्तारूपं

भजत्यसौ॥त्यक्त्वातद्भावनंतस्मादेवमेवाहमास्थितः॥ ७॥

पदच्छेदः॥

अचिंत्यम् चिन्त्यमानः अपि चिन्तारूपम् भजति असौ त्यक्त्वा तद्भावनम् तस्मात् एवम्एव अहम् आस्थितः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अचिंत्यम्	ब्रह्मको	तस्मात्	ताते
चिन्त्यमानः	चिंतवन करताहुआ	तद्भावनम्	उस चिन्ता की भावना को
अपि	भी	त्यक्त्वा	त्याग करके
असौ	यह पुरुष	अहम्	मैं
चिन्तारूपम्	चिंताको	एवम्एव	भावना रहित
भजति	भावना करताहै	आस्थितः	स्थित हूं

भावार्थ॥

ब्रह्म अचिंत्यहै याने मन वाणीकरके चिंतन नहीं

किया जा सक्ता है पर जो आत्मावर्ग अचिन्त्यरूप चिंतवन का करना है उस चिंतवनकी चिंताको भी त्याग करके मैं भावनारूपी चिंतवन से रहित अपने आत्मा में ही स्थित हूं॥ ७॥

मूलम्॥

एवमेवकृतं येन सकृतात्थोंभवेदसौ॥ एवमेवस्वभावो यः सकृतात्थों भवेदसौ॥ ८॥

पदच्छेदः॥

एवम्एव कृतम् येन सः कृतार्थः भवेत् असौ एवम्एव स्वभावः यः सः कृतार्थः भवेत् असौ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
येन	= जिस पुरुष करके	कृतम्	= किया गया है
एवम्एव	= क्रियारहित	सःअसौ	= वह पुरुष भी
स्वरूपम्	= स्वरूप	कृतार्थः	= कृतकृत्य
साधन वशात्	= साधनों के वशसे	भवेत्	= होता है

यः = जो	सःअसौ = सो वह
एवम्एव = {ऐसाही यानेस्व-तही	कृतार्थः = कृतकृत्य
स्वभावः = स्वभाव वाला है	भवेत् = होता है
	किंवक्त-व्यम् } = इस में कहनाही क्या है

भावार्थ ॥

जिस पुरुष ने इसप्रकार संपूर्ण क्रियाओं से रहित अपने स्वरूपको जानलिया है वही कृतार्थ याने जीवन्मुक्त होताहै ॥प्र०॥जीवन्मुक्तका लक्षण क्याहै ॥उ०॥ ब्रह्मैवाहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्मबन्धविनिर्मुक्तोजीवन्मुक्तः॥ मैं ब्रह्महूं इस प्रकारके अपरोक्ष ज्ञान करके जो संपूर्ण कर्मों के बंधनों से छूटगया है वही जीवन्मुक्त है॥ देहपातानंतरंमुक्तिःविदेहमुक्तिः॥ शरीरके पात होने से अनंतर जो मुक्ति है उसका नाम विदेहमुक्ति है ॥ तात्पर्य्य यह है कि साधनों करके क्रम से जिसने संपूर्ण शरीर और इन्द्रियादिकों की क्रिया का त्याग किया है और आत्मानंद को अनुभव किया है वही जीवन्मुक्त है ॥ ८ ॥

इति द्वादशंप्रकरणंसमाप्तम् १२ ॥

तेरहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

अकिंचनभवंस्वास्थ्यंकौपीनत्वेपि दुर्लभम्॥त्यागादानेविहायास्मादहमासेयथासुखम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अकिंचनभवम् स्वास्थ्यम् कौपीनत्वे अपि दुर्लभम् त्यागादाने विहाय अस्मात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अकिंचनभवम्	= नहीं है कुछऐसे विचारसे पैदाहुई	कौपीनत्वे	= कौपीन के धारण करने पर
स्वास्थ्यम्	= जो चित्तकी स्थिति है सो	अपि	= भी
		दुर्लभम्	= दुर्लभ है

अस्मात् = इस कारण से	विहाय = छोड़ करके
त्यागादाने = त्याग और ग्रहणको	अहम् = मैं
	यथासुखम् = सुखपूर्व्वक
	आसे = स्थित हूं

भावार्थ ॥

इस त्रयोदश प्रकरण में जीवन्मुक्त के फल को निरूपण करते हैं ॥ संपूर्ण विषयों में जो आसक्ति है उस आसक्ति के त्याग करने से जो चित्तकी स्थिरता हुई है वह स्थिरता कौपीनमात्र में भी आसक्ति करने से नहीं होती है ऐसी स्थिरता अतिदुर्लभ है इसी कारण से शिष्य कहता है कि पदार्थों के त्याग करने में और ग्रहण करने में जो आसक्ति है उसको भी त्यागकरके आत्मानंद में स्थितहूं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

कुत्रापिखेदःकायस्य जिह्वाकुत्रापि खिद्यते ॥ मनःकुत्रापित्यक्त्वापुरुषार्थे स्थितःसुखम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

कुत्र अपि खेदः कायस्य जिह्वा कुत्र अपि खिद्यते मनः कुत्र अपि तत् त्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितः सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कुत्रअपि	= कहींतो	मनः	= मन
कायस्य	= शरीरका	खिद्यते	= खेदकरताहै
खेदः	= दुःखहै	अतः	= याते
कुत्रअपि	= कहीं	तत्	= तीनोंको
जिह्वा	= वाणी	त्यक्त्वा	= त्यागके
खिद्यते	= दुःखी है	सुखम्	= सुखपूर्वक
कुत्रअपि	= कहीं	स्थितः	= स्थितहूं

भावार्थ ॥

शारीरक कर्मों में शरीर को खेद होता है अर्थात् शरीरके कर्म जो चलना फिरना सोना जागना लेना देना ग्रहण त्यागादिक हैं उनके करने में शरीर को ही खेद होता है और वाणी के कर्म जो सत्य मिथ्या भाषणादिक हैं उनके करने में जिह्वाको खेद होता है और मनके कर्म जो संकल्प विकल्पनादिक या

ध्यान धारणादिक हैं उनके करने में मन को खेद होताहै इसलिये शिष्य कहता है उन तीनों के कर्मों को त्यागकरके मैं अपने आत्मानंद में स्थितहूं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कृतं किमपिनैवस्यादितिसञ्चिन्त्य तत्त्वतः ॥ यदायत्कर्तुमायाति तत्कृत्वासेयथासुखम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

कृतम् किम् अपि न एव स्यात् इति सञ्चिन्त्य तत्त्वतः यदा यत् कर्त्तुम् आयाति तत् कृत्वा आसे यथा सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कृतम्	= शरीरआदि करके कियाहुआकर्म	एव	= वास्तवसे
किमपि	= कुछभी	न आत्मकृतम्	= आत्मा करके नहीं किया हुआ

स्यात् = होयहै	कर्तुम् = करनेको
इति = ऐसा	आयाति = आपड़ता है
तत्त्वतः = यथार्थ	तत् = उसको
संचिंत्य = विचारकर के	कृत्वा = करके
यदा = जब	यथासुखम् = सुखपूर्वक
यत् = जो कुछ कर्म	आसे = मैंस्थितहूं

भावार्थ ॥

प्र० ॥ कायिक वाचिक मानसिक कर्मों के त्याग होंने से शरीरका भी त्याग होजावैगा क्योंकि विना कर्मों के भोजनादिक क्रिया का त्याग होगा और विना भोजन के शरीर रहैगा नहीं॥ उ० ॥ शरीर और इन्द्रियादिकोंकरके कियाहुआ जो कर्महै वह वास्तव से आत्माकरके कियाहुआ नहीं होता है ॥ ऐसे चिं॰ तवन करके विद्वान् को जब शरीरादिकों के खान पानादिक कर्म करना पड़ता है तब वह अहंकार से रहित होकर उनकर्मों को करताहुआभी अपनें सुख स्वरूप में ही स्थित रहता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

कर्मनैष्कर्म्यनिर्बंधभावादेहस्थयोगिनः ॥ संयोगायोगविरहादहमासेयथासुखम् ४ ॥

पदच्छेदः ॥

कर्मनैष्कर्म्यनिर्बन्धभावाः देहस्थयोगिनः संयोगायोगविरहात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्म नैष्कर्म्य निर्बंध भावाः	= कर्म और निष्कर्मके वंधनसे संयुक्त स्वभाव वाले	अहम्	= मैं
		संयोगा योग विरहात्	= देहके संयोग और वियोग की पृथक्कता से
देहस्थयोगिनः	= देह विषे आसक्त योगी हैं	यथासुखम्	= सुखपूर्वक
		आसे	= स्थितहूं

भावार्थ ॥

प्र० ॥ कर्मों के करने में अथवा कर्मों के न करने में अर्थात् दोनोंमें से एकमें ही निष्ठा होसक्ती है दोनों में निष्ठा कैसे हो सक्ती है ॥ उ० ॥ कर्म और निष्कर्म का हठ रूप स्वभाव उसी को होता है जिसकी देहमें आसक्ति है जिसकी देहादिकों में आसक्ति नहीं है उसको हठ नहीं होताहै हे प्रभो! मेरा तो देहके संयोग वियोग में भी हठ नहीं है देहका संयोग बनारहे वा इसका वियोग होजावै मैं अहंकार और हठ से रहित अपने आत्माबिषे स्थितहूं ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

अर्थानर्थौनमेस्थित्यागत्यावाशय नेनवा ॥ तिष्ठन्गच्छन्स्वपंस्तस्मादह मासेयथासुखम् ५ ॥

पदच्छेदः ॥

अर्थानर्थौ न मे स्थित्या गत्या न शयनेन वा तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् तस्मात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मे	= मुझको	अहम्	= मैं
स्थित्या	= स्थितिसे	तिष्ठन्	= स्थितहोताहुआ
गत्या	= चलने से	गच्छन्	= जाताहुआ
वा	= या	स्वपन्	= सोताहुआ
शयनेन	= शयन से	यथासुखम्	= सुखपूर्वक
अर्थानर्थौ	= अर्थअनर्थ	आसे	= स्थितहूं
न	= कुछनहींहै		
तस्मात्	= इसकारण		

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो ! लौकिकव्यवहार जो चलना फिरना बैठना उठना आदिक है इसमें भी मेरी हानि लाभ कुछभी नहींहै क्योंकि लौकिकव्यवहार में भी मैं अभिमान से रहितहूं चाहे मैं सोया रहूं वा बैठा रहूं अथवा चलता फिरता रहूं इन सब क्रियाओंमें भी मैं अपने आत्मानन्द में एकरस ज्योंका त्यों स्थित रहताहूं ॥ ५ ॥

मूलम्॥

स्वपतोनास्तिमेहानिः सिद्धिर्यत्नव तोनवा ॥ नाशोल्लासौविहायास्मादह मासेयथासुखम्॥ ६ ॥

पदच्छेदः॥

स्वपतः न अस्ति मे हानिः सिद्धिः यत्नवतः न वा नाशोल्लासौ विहाय अस्मात् अहम् आसे यथासुखम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मे	मुझ	सिद्धिः	सिद्धि है
स्वपतः	सोतेहुये की	अस्मात्	इसकारण
हानिः	हानि	अहम्	मैं
नअस्ति	नहीं है	नाशोल्लासौ	हानि लाभको
वा	और	विहाय	छोड़ करके
न	न	यथासुखम्	सुखपूर्वक
मे	मुझ	आसे	स्थितहूं
यत्नवतः	यत्नकरते हुये की		

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं यत्न से रहित होकर यदि मैं सोयाही रहूं तब भी मेरी कोई हानि नहीं है और यत्न विशेष करने से मेरेको किसी फल विशेष की सिद्धिभी नहीं होतीहै इस वास्ते मैं यत्न अयत्न में भी हर्ष शोक को त्याग करके सुखपूर्व्वक स्थितहूं क्यों-कि यत्न अयत्नादिक सब देह इन्द्रियों के धर्म्म हैं मुझ आत्मा के नहीं हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

सुखादिरूपानियमं भावेष्वालोक्य भूरिशः ॥ शुभाशुभेविहायास्मादहमासेयथासुखम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

सुखादिरूपानियमम् भावेषु आलो-क्य भूरिशः शुभाशुभे विहाय अस्मा-त् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अस्मात्	इसलिये
भावेषु	बहुतजन्मों विषे
सुखादिरूपानियमम्	सुखादिरूप के अनित्यताको
भूरिशः	वारंवार
आलोक्य	देखकरके
च	और
शुभाशुभे	शुभ और अशुभको
विहाय	छोड़करके
यथासुखम्	सुखपूर्वक
आसे	स्थितहूं

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं अनेक जन्मों में मनुष्य पशु आदिकों के जितने भाव याने जन्म होते हैं उन को जो सुख दुःखादिक प्राप्त होते हैं वे सब अनित्य हैं ऐसा बहुत स्थलोंमें देखा जाताहै क्योंकि संसारमें सब देहधारियों को दुःख सुख बराबर बने रहते हैं कोई भी ऐसा देहधारी संसार में नहीं है जो सदैव काल सुखी रहै किन्तु यत्किञ्चित् काल सुख और बहुत काल दुःख रहता है प्रथम तो जन्म-काल का दुःख फिर बाल्यावस्था में अनेक प्रकार के रोगादिकों करके जन्य दुःख होता है युवावस्था में भोगों से जन्य रोगादिकों करके दुःख होता है

फिर स्त्री पुत्रादिकों में मोह से दुःखों के समूह उत्पन्न होते हैं फिर वृद्धावस्था तो दुःखों की खानिही है अनेक प्रकार के विषयजन्य सुखदुःखादिकों को अनित्य जानकर और उनके हेतु जो शुभाशुभकर्म्म हैं उनको त्याग करके अपने आत्मानन्द में स्थित हूं ॥ ७ ॥

इति श्री०त्रयोदशप्रकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

प्रकृत्याशून्यचित्तो यः प्रमादाद्भावभावनः ॥ निद्रितोबोधितइव क्षीणसंस्मरणोहिसः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तः यः प्रमादात् भावभावनः निद्रितः बोधितः इव क्षीणसंसरणः हि सः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	= जो पुरुष	च	= और
प्रकृत्या	= स्वभाव से	निद्रितः	= सोताहुआ
शून्यचित्तः	= शून्यचित्तवालाहै	बोधितः इव	= जागते हुये के तुल्य है ऐसा
च	= पर	सः	= वह पुरुष
प्रमादात्	= प्रमादसे	क्षीणसंसरणः	= संसार से रहित है
भावभावनः	= विषयों का सेवन करने वाला है		

भावार्थ ॥

इस प्रकरण में जनकजी अपनी शान्तिचतुष्टय को कहते हैं॥जो पुरुष स्वभाव से विषयों में शून्यचित्तवाला है अर्थात् अपने स्वभाव से चित्त के धर्म जो विषयों में राग द्वेष हैं उन से जो रहित है और प्रारब्धकर्म्मों के वशीभूत होकर विषयों का चिन्तन भी करता है और भोगता भी है उस को हानि लाभ कुछ नहीं है इसी में दृष्टान्त को कहते हैं जैसे निद्रा के वश जो पुरुष शून्यचित्त होकर सोरहा है उसको किसी पुरुष ने जगाकर उससे कहा कि तू इस काम

को कर वह जागकर उस काम को तो करता है परन्तु अपनी इच्छा के अनुसार नहीं करता है किन्तु दूसरे पुरुष की प्रेरणा करके वह काम को करता है (दार्ष्टान्त) इसी प्रकार जो पुरुष शान्तचित्त है वहभी प्रारब्धवश्य से विषयों को भोगता है अपनी इच्छा से नहीं भोगता है और जैसे कोई पुरुष अपने आनन्द में बैठा है किसी सिपाही ने आकर उसको बिगारी पकड़ कर उसके शिरपर गठड़ी रखवाया और वह पुरुष गठड़ी को उठाकर ले जाता है यदि न उठावै या कहीं धरदेवै तो सिपाही उसके कमची मारै वह अपनी खुशी से नहीं उठाय लैजाता है किन्तु दूसरे की प्रेरणा से वह उठाय लिये जाता है तैसेही ज्ञानवान् भी अपनी खुशी से तो विषयभोगों को नहीं भी भोगता है परन्तु प्रारब्धरूपी सिपाहीकी प्रेरणा करके भोगता है इसलिये उस को हानि लाभ कुछभी नहीं है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

क्वधनानिक्वमित्राणि क्वमेविषयदस्यवः ॥ क्वशास्त्रंक्वचविज्ञानं यदामेगलितास्पृहा ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

क्क धनानि क्क मित्राणि क्क मे विषयदस्यवः क्क शास्त्रम् क्क च विज्ञानम् यदा मे गलिता स्पृहा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब	मित्राणि	= मित्र हैं
मे	= मेरी	क्क	= कहां
स्पृहा	= इच्छा	विषयदस्यवः	= विषयरूपी चोरहैं
गलिता	= गलित होगई है	क्क	= कहां
तदा	= तब	शास्त्रम्	= शास्त्र है
मे	= मेरेको	च	= और
क्क	= कहां	क्क	= कहां
धनानि	= धन हैं	विज्ञानम्	= ज्ञान है
क्क	= कहां		

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं विषयों की भावना से शून्यचित्तवाला मैंहूं मुझ पूर्णात्मदर्शी को जब विषय भोगों की इच्छा नष्ट होगई है तब मेरा धन कहां है

मेरे मित्र कहां हैं शास्त्रका अभ्यास कहां है और निदिध्यासनादिक कहां हैं मेरी तो किसीमें भी आस्थाबुद्धि नहीं रही ॥ २ ॥

मूलम् ॥

विज्ञातेसाक्षिपुरुषे परमात्मनिचेश्वरे ॥ नैराश्येबन्धमोक्षेच न चिन्ता मुक्तयेमम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

विज्ञाते साक्षिपुरुषे परमात्मनि च ईश्वरे नैराश्ये बन्धमोक्षे च न चिन्ता मुक्तये मम ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
साक्षिपुरुषे	= त्वंपद का अर्थ साक्षिपुरुष याने जीव	परमात्मनि	= तत्पद का अर्थ परमात्मा
च	= और	ईश्वरे	= ईश्वरके
		विज्ञाते	= जाननेपर

नैराश्ये = आशारहित	मुक्तये = मुक्ति के लिये
बन्धमोक्षे = बन्धके मोक्ष होने पर	चिन्ता = चिन्ता
मम = मुझको	न = नहीं है

भावार्थ ॥

देह और इन्द्रियों का साक्षी पुरुष जो त्वंपदका अर्थ है और तत्पदका अर्थ जो परमात्मा ईश्वर हैं इन दोनोंके लक्ष्यार्थचेतनको तत्त्वमसि महावाक्य और भागत्यागलक्षणा करके साक्षात्कार करने से और बंध और मोक्षमें भी इच्छाके अभाव होनेसे मुक्तिके निमित्तभी विद्वान्को कोई चिन्ता बाकी नहीं रहती है ॥ प्र० ॥ महावाक्यका लक्षण क्याहै और लक्षणाकाअर्थ क्या है ॥ उ० ॥ वेदमें दो प्रकारके वाक्य हैं एक अवान्तर्वाक्य हैं दूसरे महावाक्य हैं दोनों के लक्षण को दिखाते हैं ॥ स्वरूपबोधकंवाक्यमवान्तर्वाक्यम् ॥ आत्माके स्वरूपका बोधक जो वाक्य है उसका नाम अवान्तर्वाक्यहै जैसे "सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म" ॥ आत्मा ब्रह्मसद्रूप है ज्ञानस्वरूप है अनंतस्वरूपहै ॥ यह वाक्य तो केवल आत्माके स्वरूपकोही बोधन करता है इसीवास्ते इसका नाम

अवान्तर्वाक्य है॥ अभेदबोधकंवाक्यं महावाक्यम्॥ अभेदका बोधक जो वाक्य है उसीका नाम महावाक्यहै॥ जैसे "ब्रह्माहमस्मि" मैंही ब्रह्महूं॥ अयमात्माब्रह्म॥ यह अपना आत्माही ब्रह्म है॥ तत्त्वमसि॥ तत्=सोई याने ईश्वर॥ त्वं=तू याने जीव॥ असि=है ये सब वाक्य जीव ईश्वर की अभेदताकोही बोधन करते हैं इसीसे इनका नाम महावाक्य है॥ अब लक्षणा को दिखाते हैं॥ पदके अर्थका ज्ञान दो तरह से होता है एक तो शक्तिवृत्तिकरके होता है जैसे किसी ने किसी से कहा "घटमानय" याने घटकोलावो अब यहांपर घटपदकी शक्ति कम्बुग्रीवादिवाली व्यक्ति में है याने घड़े में है और लानेवाले को भी उसका ज्ञान है कि घड़ेके लाने को दूसरापुरुष कहता है वह घटमानय शब्द को सुनकर तुरन्त घड़े को उठालाता है यहांपर तो शक्तिवृत्ति करके पदके अर्थ का बोध होता है और जहांपर शक्तिवृत्ति करके बोध नहीं होता है वहां पर लक्षणावृत्तिकरके पदके अर्थका बोध होता है सो दिखाते हैं॥ शक्यसम्बन्धोहिलक्षणा॥ शक्तिके आश्रयका नाम शक्य है अर्थात् पद जिस अर्थ को बोधनकरै उस अर्थ का नाम शक्य है.(दृष्टान्त)किसी

ने एक गुवालसे पूछा तेरा मकान कहाँहै उसनेकहा॥ गङ्गायां घोषः ॥ मेरा मकान गङ्गामें है ॥ अब यहां पर शक्तिवृत्ति करके तो अर्थ नहीं बनता है क्यों कि गंगापदकी शक्ति प्रवाह में है याने गङ्गापद- का अर्थ जलका प्रवाह है उस प्रवाह में मकानका होना असंभव है इसवास्ते यहांपर जो लक्षणा कर- के अर्थका बोध होता है उसको दिखातेहैं ॥ गङ्गा पदका शक्य प्रवाह है उसका सम्बन्ध तीरके साथ है इसवास्ते गङ्गा के तीरपर इसका ग्राम है गङ्गायांघोषः इसपदसे ऐसा बोध होता है और तात्पर्यानुपपात्ति लक्षणामें बीज है जिस अर्थ में वक्ताके तात्पर्य की असिद्धिहो वहांपरही लक्षणा होती है गंगायांघोषः यहांपर गङ्गा के प्रवाह में मेरा ग्राम है ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहींहै क्योंकि ऐसा होनहीं सक्ताहै इसीवास्ते॥ गङ्गायां घोषः ॥ में लक्षणा होती है ॥ अब लक्षणा के भेदको दिखलाते हैं॥ लक्षणा तीनप्रकार की है ॥ एक जहल्लक्षणा दूसरी अजहल्लक्षणा तीसरी ज- हदजहल्लक्षणा ॥ वच्यार्थमशेषतयापरित्यज्य तत्सम्ब न्धिन्यर्थांतरेवृत्तिर्जहल्लक्षणा॥ जहांपर वाच्यार्थका स- मग्ररूपसे त्यागकरके तत्सम्बन्धी अर्थांतरमें वृत्तिहो वहांपर जहल्लक्षणा होती है जैसे ॥ गङ्गायांघोषः ॥

यहांपर गङ्गापदका वाच्यार्थ जो प्रवाह है उसका स-मंग्ररूपसे त्यागकरके तिसके साथ सम्बन्धवाला जो तीर है तिस तीरमें गङ्गापदकी लक्षणा होती है याने गङ्गा के तीरपर इसका ग्राम है ॥ घोषनाम अहीरोंके ग्रामका है ॥ वाच्यार्थापरित्यागेनतत्सम्बन्धिन्यर्थांतरे वृत्तिरजहल्लक्षणा ॥ जहांपर वाच्यार्थका त्याग न करके तिसके सम्बन्धवालेकाभी ग्रहणहो वहांपर अजहल्लक्षणा होती है ॥ किसी के गृहमें दण्डी संन्यासियोंका निमन्त्रण था वहांपर जाकर दण्डीलोग बाहर बैठे जब भोजन तैयारहुवा तब मालिक ने अपने नौकरसे कहा ॥ यष्टीप्रवेशय ॥ लाठीका भीतर प्रवेश कराओ ॥ अब यहांपर लाठी का भीतर प्रवेश तो बनसक्ता है परन्तु तिसमें वक्ताका तात्पर्य्य नहीं है किन्तु यष्टिधर के प्रवेश कराने में वक्ताका तात्पर्य्य है इसवास्ते यष्टीपदका वाच्यार्थ यष्टि है तिसका त्याग न करके तिसके साथ सम्बन्धवाला जो पुरुष है तिस पुरुष में जो लक्षणा करनी है इसी का नाम अजहल्लक्षणाहै ॥ वाच्यार्थैकदेशपरित्यागे नैकदेशवृत्तिर्जहदजहल्लक्षणा ॥ वाच्यार्थ के एकदेश को त्याग करके एकदेशका ग्रहणकरना जो है इसी का नाम जहत् अजहत् लक्षणा है जैसे ॥ तत्त्वमसि ॥

यहांपर तत्पदका वाच्यार्थ सर्वज्ञत्वादिक गुणोंकर-के युक्त ईश्वर चेतन है और त्वंपदका वाच्यार्थ अ-ल्पज्ञत्वादिक गुणों करके युक्त जीव चेतन है तत् वह सर्वज्ञत्वादि गुणवाला ईश्वर त्वं तू अल्पज्ञत्वादि गुणवाला जीव ये जो दोनोंपदों के वाच्यार्थ हैं इनका अभेद नहीं होसक्ता है पर दोनों का लक्ष्यार्थ जो गुणों से रहित केवल चेतन है उसी का अभेद हो सक्ता है सो अभेद जहद् अजहद् याने भागत्याग-लक्षणा करकेही होता है तत्पद के वाच्यार्थ का जो एकदेश सर्वज्ञत्वादिक गुण हैं उनके त्याग करने से और त्वंपद के वाच्यार्थका जो एकदेश अल्पज्ञत्वा-दिक गुण हैं उनके भी त्याग करने से दोनों पदोंविषे एक जो लक्ष्यार्थचेतन स्थित है उसके ग्रहण करने से दोनों का याने ईश्वर और जीवका अभेद केवल चेतन में होता है सो जिस विद्वान् ने महावाक्यों क-रके और भागत्यागलक्षणा करके जीव ईश्वरकी अभेदता को जानलिया है वही मुक्त है उसको मुक्ति की कोई चिन्ता नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

अन्तर्विकल्पशून्यस्य बहिःस्वच्छ

न्दचारिणः ॥ भ्रान्तस्येवदशास्तास्ता स्तादृशाएवजानते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

अन्तर्विकल्पशून्यस्य बहिः स्वच्छन्दचारिणः भ्रान्तस्य इव दशाः ताः ताः तादृशाः एव जानते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अन्तर्विकल्पशून्यस्य	= अन्तःकरण में विकल्प से शून्य है जो	स्वच्छन्दचारिणः	= स्वतंत्र चलने वाले की
च	= और	ताःताः	= उन उन
बहिः	= बाहर	दशाः	= दशाओं को
भ्रान्तस्यइव	= भ्रान्त हुये पुरुषकी नाईं है जो ऐसे	तादृशाः एव	= वैसेही दशा वाले पुरुष
		जानते	= जानते हैं

भावार्थ ॥

जिस पुरुष का अंतःकरण विकल्प याने संकल्प से रहित है अर्थात् जिसको कोई भी विषय वासना भीतरसे नहीं फुरती है और बाहरसे जो उन्मत्त की तरह स्वेच्छापूर्वक विहार करताहै वही ज्ञानी है उसको ज्ञानी पुरुषही जानता है दूसरा अज्ञानी पुरुष नहीं जानसक्ता है ॥ ४ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीताशिष्यप्रोक्तंशान्तिचतुष्टयं नामचतुर्दशप्रकरणंसमाप्तम् ॥ १४ ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

यथातथोपदेशेन कृतार्थःसत्त्वबुद्धिमान् ॥ आजीवमपिजिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धि-

मान् आजीवम् अपि जिज्ञासुः परः तत्र विमुह्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सत्त्वबुद्धिमान्	= सत्त्वबुद्धि वाला पुरुष	परः	= असतबुद्धि वाला पुरुष
यथातथोपदेशेन	= जैसे तैसे याने थोड़े ही उपदेश से	आजीवम्	= जीवनपर्यन्त
कृतार्थः	= कृतार्थ	जिज्ञासुः अपि	= जिज्ञासु होताहुआभी
भवति	= होता है	तत्र	= तिसविषे
		विमुह्यति	= मोहकोप्राप्त होता है

भावार्थ ॥

अब तत्त्वोपदेशविंशतिकंनाम पंचदशप्रकरण का आरम्भ करते हैं ॥ अष्टावक्रजी जनकजी की ज्ञानस्थितिके लिये पुनः २ उपदेश करते हैं क्योंकि छांदोग्योपनिषद् में श्वेतकेतुके प्रति श्वेतकेतु के पिता ने नवबार आत्मतत्त्व का उपदेश किया है प्रथम ज्ञान के अधिकारी अनधिकारी को दिखाते हैं ॥

उत्तम बुद्धिमान् शिष्य सामान्य उपदेश करके आत्मबोध को प्राप्त होजाता है याने कृतार्थ होजाता है सतयुग में केवल ओंकार के उपदेश से उत्तम शिष्य कृतार्थ होगये हैं और निकृष्टबुद्धिवाला शिष्य मरणपर्यन्त उपदेश को सुनता रहता है पर उसको यथार्थबोध नहीं होता है जैसे विरोचन को ब्रह्मा ने अनेक बार उपदेश किया तो भी वह बोधको प्राप्त न हुआ संसार में तीनप्रकारके अधिकारी हैं एक तो उत्तम अधिकारी है जिसको एकबार गुरुके मुख से महावाक्य के श्रवण करने से बोध होजाता है दूसरा मध्यम अधिकारीहै जिसको बारबार श्रवण मननादिकोंके करनेसे बोध होता है तीसरा निकृष्ट अधिकारी है जो चिरकालतक शास्त्रों को श्रवण और उपासना आदिकों को करके बोधको प्राप्त होता है मोक्षके अधिकारियों को दिखलाते हैं ॥ शान्तोदान्तः क्षमीशूरः सर्वेन्द्रियसमन्वितः॥ असक्तोब्रह्मज्ञानेच्छुः सदासाधुसमागमः॥ १ ॥ साधुबुद्धिःसदाचारीयोभेदःसर्वदैवते ॥ आशापाशविनिर्मुक्तस्त्वेतेमोक्षाधिकारिणः ॥ २ ॥ जो शान्त चित्त है जो इन्द्रियों को दमन करनेवाला है परंतु संपूर्णइन्द्रियों करके युक्तहै जो पदार्थों में आसक्तिसे रहित है जो ब्रह्मज्ञानकी इच्छावाला होकर

सदैव महात्मों का संग करता है जो सुंदर बुद्धिवाला और श्रेष्ठाचारवालाहै जो संपूर्ण देवतों में एकहीचेतन को जानता है जो विषयों के आशारूपी पाशसे रहित है वह मोक्षका अधिकारी है जिसमें ऊपर कहे हुये गुणों में से कोई भी गुण नहीं घटता है वह मोक्ष का अधिकारी नहीं है ॥ १ ॥

मूलम्

मोक्षोविषयवैरस्यं बन्धोवैषयिको रसः॥ एतावदेवविज्ञानं यथेच्छसितथा कुरु ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

मोक्षः विषयवैरस्यम् बन्धः वैषयिकः रसः एतावत् एव विज्ञानम् यथा इच्छसि तथा कुरु ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विषयवैरस्यम्	= विषयोंसे वैराग्य	वैषयिकः	= विषयसंबन्धी
मोक्षः	= मोक्ष है	रसः	= रस

बन्धः = बन्धहै	यथाइ च्छसि } = जैसाचाहै
एतावत् एव } = इतनाही	तथा = वैसा
विज्ञानम् = ज्ञानहै	कुरु = कर तू

भावार्थ ॥

अब बंध और मोक्षके उपायको संक्षेपसे निरूपण करते हैं ॥ विषयों में जो अनुराग है वही बंधहै और विषयों में जो अनुरागका त्याग है वही मोक्ष है ॥ ऐसा कहाभीहै॥ मनएवमनुष्याणां कारणंबंधमोक्षयोः॥ बंधायविषयासक्तं मुक्त्यैनिर्विषयेस्मृतम् ॥ १ ॥ मनुष्योंका मनही बंध और मोक्ष का कारण है विषयों में जब मन आसक्त होजाता है तब वह मन बंधका हेतु होता है जब विषयों की आसक्ति से रहितहोताहै तब वही मन मुक्तिका हेतु होता है ॥ १ ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक ! इतनाही बंध मोक्षका विशेषज्ञान है इसको तुम भलीप्रकार जानकर जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसे तुम करो ॥ २ ॥

मूलम् ॥

वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगंजनंमूकजडा

लसम् ॥ करोति तत्त्वबोधोऽयमतस्त्यक्तोबुभुक्षुभिः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगम् जनम् मूकजडालसम् करोति तत्त्वबोधः अयम् अतः त्यक्तः बुभुक्षुभिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अयम्	यह	करोति	करता है
तत्त्वबोधः	तत्त्वज्ञान	अतः	इसीकारण
वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगम्	अत्यन्त बोलनेवालेपण्डितमहाउद्योगी	बुभुक्षुभिः	भोगाभिलापीपुरुषों करके
जनम्	पुरुषको	अयम्	यह
मूकजडालसम्	गूंगाजड़ औरआलसी	त्यक्तः	त्यागकिया गया है

भावार्थ ॥

हे प्रियदर्शन! तत्त्वज्ञानके सिवाय किसी अन्य उपाय से विषयासक्ति का नाश नहीं होता है ॥ यह जो आत्मबोध है वह बहुत बोलचालवाले चतुर को मूक करदेता है और जो बड़ाबुद्धिमान् अनेक प्रकार के ज्ञानकरके युक्तहो उसको जड़ बनादेताहै और बड़े उद्योगी को क्रियासे रहित आलसी बना देता है मन का अंतर आत्माकी तरफ़ प्रवाह होनेसे सब इन्द्रियां ढीली होजाती हैं याने अपने २ विषयों के ग्रहण करने में असमर्थ होजाती हैं यह तत्त्वबोधवाक्यादिक संपूर्ण इन्द्रियोंको बेकाम करदेता है इसीवास्ते विषयभोगों की कामनावाला पुरुष इसका आदर नहीं करता है वह आत्मज्ञान के साधनों से हजारों कोस भागता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

नत्वंदेहोनतेदेहो भोक्ताकर्तानवाभवान् ॥ चिद्रूपोसिसदासाक्षीनिरपेक्षः सुखंचर ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

न त्वम् देहः न ते देहः भोक्ता कर्ता न वा भवान् चिद्रूपः असि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखम् चर ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्	= तू	न	= नहीं है
देहः	= शरीर	चिद्रूपः	= चैतन्यरूप है
न	= नहीं है	सदा	= नित्य
न	= न	साक्षी	= साक्षी है
ते	= तेरा	निरपेक्षः	= इच्छारहित
देहः	= शरीर है	सुखम्	= सुखपूर्वक
वा	= और	चर	= विचर
भवान्	= तू		
भोक्ता	= भोक्ता		

भावार्थ ॥

तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये अष्टावक्रजी फिर उपदेश करतेहैं ॥ हे जनक ! तुम पंचभूतात्मक देह नहीं हो क्योंकि देह जड़ है और अनित्य है तुम नित्यहो

चैतन्यस्वरूपहो तुम्हारा देहके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ असंगोह्ययंपुरुषइतिश्रुतेः ॥ यह पुरुष याने जीवात्मा असंग है देहादिकोंके साथ संबंधसे रहितहै इसी श्रुतिप्रमाण से तुम संयोगादिक सम्बन्धों से रहित हो और तुम कर्ता भोक्ता भी नहींहो क्योंकि कर्तापना और भोक्तापना ये दोनों अंतःकरणके धर्म हैं तुम उन दोनों के भी साक्षीहो और ऐसा नियम भी है जो जिसका साक्षी होता है वह उससे भिन्न होता है जैसे घटका साक्षी घटसे भिन्न है तैसे कर्ता भोक्ता जो अंतःकरण है उनका साक्षी भी उनसे भिन्न है ॥ इसमें दृष्टांतको कहते हैं ॥ जैसे नृत्यशाला में स्थित दीपक शाला के स्वामीको और सभावालों को और नर्तकी को तुल्यही प्रकाश करता है यह शरीर तो नृत्यशाला है अहंकार उस में सभापति है और विषय सब सभ्य हैं याने सभा में बैठनेवाले हैं और बुद्धि उसमें नर्तकी है याने नाचनेवाली वेश्या है इन्द्रियगण सब ताल बजानेवालेहैं चेतन आत्मा साक्षी सब का प्रकाशक है जैसे दीपक अपने स्थानमें स्थिर हुआ २ सबको प्रकाशता है तैसे चेतनभी अचल स्थित साक्षीरूप होकर सबको प्रकाश करता है अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! देह में जो इन्द्रिय और

अहंकारादिक हैं उनका तू अपनाका साक्षी मानकर सुखपूर्वक विचर ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

रागद्वेषौमनोधर्मौ नमनस्तेकदाचन ॥ निर्विकल्पोसिबोधात्मानिर्विकारः सुखंचर ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनः ते कदाचन निर्विकल्पः असि बोधात्मा निर्विकारः सुखम् चर ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
रागद्वेषौ	= राग और द्वेष	मनः	= मन
मनोधर्मौ	= मनकेधर्म हैं	कदाचन	= कभी
न ते	= तेरे नहीं हैं	न	= नहीं
		ते	= तेराहै
		त्वम्	= तू

निर्विकल्पः = विकल्परहित	बोधात्मा = बोधस्वरूप
निर्विकारः = विकाररहित	असि = है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! रागद्वेषादिक सब मनके धर्म हैं तुझ आत्माके धर्म्म नहीं हैं अन्यत्र भी कहा है ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाःसर्वेमनोगताः ॥ एकात्मत्वेकथंभेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात ॥१॥ यहशत्रु है यहमित्रहै शत्रुसे द्वेष मित्रसे राग और उदासीनता ये सब मनकेही धर्म्म हैं अद्वैतदर्शी की दृष्टि में भेद कहां होसक्ता है द्वैतदर्शनसे ही भेद होता है॥ १ ॥ हे जनक! मनका संबंध कदापि तेरे साथ नहीं है मनके अध्यास से तुम रागादिकों में अध्यास मतकरो॥ प्र० ॥ राग द्वेषभी मुझ आत्माही का धर्म क्यों न हों॥उ०॥राग द्वेषादिक तुम्हारे धर्म नहीं होसक्ते हैं क्योंकि तुम ज्ञानस्वरूपहो यदि यह कहाजाय कि रागद्वेषादिक आत्माके ही धर्म हैं तो वे आत्मा के स्वाभाविक धर्म्म हैं या आगंतुक धर्म्म हैं या आध्यासिक धर्म्म हैं॥ वे स्वाभाविक धर्म्म तो हो नहींसक्ते क्योंकि श्रुतियों में और स्मृतियों में आत्माको निर्धर्म्मक लिखा है ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत् ॥ अनाद्यनन्तम्महतःपरंध्रुवंनिचाय्यतन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १ ॥ आत्मा शब्द स्पर्श रूप रसादिकों से रहित है नाशसे गंध से भी रहित है नित्य हैं न उसका आदिहै और न उसका अंत है महत्तत्त्व से परे है ऐसे आत्माको जानकर पुरुष मृत्यु के मुखसे छूट जाता है ॥ इसतरहकी अनेक श्रुतियां आत्मा को निर्धर्मिक बताती हैं ॥ शुद्धोमुक्तःसदैवात्मा नवैवध्येतकर्हिचित् ॥ बंधमोक्षौमनःसंस्थौ तस्मिञ्छान्तेप्रशाम्यति ॥ १ ॥ आत्मा शुद्ध है मुक्त है बंधसे रहितहै बंध मोक्षादिक धर्म सब मनमें ही स्थित रहते हैं मन के शान्त होने से सब शान्त होजाते हैं ॥ इसतरह की अनेक स्मृतियां भी आत्माको रागद्वेषादिकों से रहित बताती हैं ॥ १ ॥ यदि रागद्वेषादिक आत्मा के स्वाभाविक धर्म्म माने जावैं तब मोक्ष किसी को कदापि नहीं होगा क्योंकि स्वाभाविक धर्मकी निवृत्ति किसी उपाय से भी नहीं होती है केवल आध्यासिक धर्म उपाय से नाश होता है आध्यासिक धर्म्म एकके सम्बन्ध से दूसरे में प्रतीत होने लगता है सम्बन्ध के नाश होने से उसका भी नाश होजाता है जैसे बिल्लौर पत्थर के समीप लालपुष्प के रखने से उस में

न = न	किम् = किसवास्ते
गन्ता = जानेवाला है	एनम् = इसकेनिमित्त
न = न	अनुशोचसि = तूशोचता है
आगन्ता = आनेवाला है	

भावार्थ॥

हे शिष्य! इन्द्रियादिकों करके संवेष्टित हुवा २ यह लिंगशरीर इस लोक में स्थित रहता है फिर कुछकाल पीछे लोकान्तरको चलाजाता है फिर वहांसे चलाआता है आत्मा न लोकान्तरको न देशान्तर को जाता है न वहां से आताहै और स्थूल शरीर जन्मता मरता है उसके धर्मोंको आत्मा में मानकर तू शोचकरनेके योग्य नहीं है क्योंकि वह तेरेबिषे अध्यस्त है अध्यस्त वस्तु के नाशहोने से तुझ अधिष्ठान का नाश नहीं होसक्ता है॥ प्र०॥ आपने कहा है आत्मा लोकान्तरको नहींजाता किन्तु लिङ्गशरीरही लोकान्तर को और देशान्तरको जाताहै सो विना आत्मा के लिङ्गशरीरका गमनागमन नहीं बनसक्ता है लिंगशरीर

जड़ है उसमें सुख दुःखका भोगना भी नहीं होसक्ता॥ उ० ॥ गमनागमन परिच्छिन्न वस्तु में होताहै व्यापक में नहीं होता है लिंग शरीर परिछिन्न है इसवास्ते इसी का गमनागमन होता है आत्मा व्यापक है उसका गमनागमन नहीं होसक्ता है जैसे जलसे भरे हुये घटका देशान्तर में लेजाना होसक्ताहै व्यापक आकाशका नहीं क्योंकि आकाश तो सबजगह मौजूद है जहांपर घटजावैगा वहांपर आकाशका प्रतिबिम्ब उसमें पड़ैगा तैसेही जहां जहां लिंगशरीर जाता है वहां वहां उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है उस चेतन के प्रतिबिम्बकरके युक्त अन्तःकरण सुख दुःखादिकों का भोक्ता कर्ता भी कहाजाता है उसमें ज्ञानशक्ति इच्छाशक्ति भी होजाती है उसी अन्तःकरण प्रतिबिम्बित चेतनका नामही जीवहोजाता है जीवका लक्षण पञ्चदशीकार ने ऐसा किया है कि लिंगशरीर तिस में चेतनका प्रतिबिम्ब और तिसका आश्रय अधिष्ठान चेतन तीनों का नाम जीव है माया और माया में प्रतिबिम्ब और मायाका अधिष्ठान चेतन तीनोंका नाम ईश्वर है जीव ईश्वरका भेद उपाधियों करके है वास्तव से भेद नहीं है जैसे घटाकाश मठाकाशका उपाधिकृत भेद है तैसे जीव

ईश्वर काभी उपाधिकृत भेद है वास्तव से भेद नहीं उपाधियाँ कल्पित हैं याने मिथ्या हैं चेतन नित्य है सोई चेतन तुम्हारारूप आप है ऐसा जानकर तुम शोक करने के योग्य नहींहो ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

देहस्तिष्ठतुकल्पान्तं गच्छत्वद्यैववा पुनः ॥ क्ववृद्धिःक्वचवाहानिस्तवचिन्मात्ररूपिणः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

देहः तिष्ठतु कल्पान्तम् गच्छतु अद्य एव वा पुनः क्व वृद्धिः क्व च वा हानिः तव चिन्मात्ररूपिणः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पुनः	चाहै	वा	चाहै
देहः	शरीर	अद्यएव	अभी
कल्पान्तम्	कल्प के अन्ततक	गच्छतु	नाशहो
तिष्ठतु	स्थिर रहै	तव	तुझ

चिन्मात्ररूपिणः = चैतन्यरूपवालेका	च = और
क्व = कहां	क्व = कहां
वृद्धिः = वृद्धिहै	हानिः = हानि है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! द्रष्टा द्रव्यसे पृथक् होता है यह नियमहै देह द्रव्य है तुम द्रष्टाहो देहके साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है चहै यह स्थूलदेह तुम्हारा कल्पपर्यंत स्थिररहे चहै अभी गिरजाय देह के स्थिर रहने से तुम्हारी स्थिति नहीं है और देह के गिरजाने से तुम्हारा नाश नहीं है देहकी वृद्धिसे तुम्हारी वृद्धि नहीं क्योंकि देहसे तुम परे हो देह मिथ्या है तुम सत्यहो देहको भी तुम सत्ता स्फूर्त्ति देनेवाले हो देहके भी तुम साक्षी हो ऐसा निश्चय करके तुम जीवन्मुक्तहोकर के विचरो ॥ १० ॥

मूलम् ॥

त्वय्यनन्तमहांभोधौविश्ववीचिःस्वभावतः ॥ उदेतुवास्तमायातुनतेवृद्धिर्नवाक्षतिः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

त्वयि अनन्तमहाम्भोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः उदेतु वा अस्तम् आयातु न ते वृद्धिः न वा क्षतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
त्वयि	तुझ
अनन्तमहाम्भोधौ	अपार महासमुद्रविषे
विश्व वीचिः	विश्वरूप-तरंग
स्वभावतः	स्वभावसे
उदेतु	उदयहोते हैं
वा	और
अस्तम्	अस्तको
आयातु	प्राप्तहोतेहैं
परन्तु	परन्तु
ते	तेरी
वृद्धिःन	न वृद्धिहै
वा	और
नक्षतिः	न नाशहै

भावार्थ ॥

हे जनक! तुम्हारा स्वरूप अनन्त चिन्मात्ररूपी समुद्र है उसमें अविद्या और कमुक कर्मों से यह विश्वरूपी लहरी उत्पन्न भई है तुम्हारे स्वरूप में यह विश्वरूपी लहरी उदय हो अथवा अस्तहो तुम्हारी

कोई हानि लाभ नहीं है क्योंकि तुम अधिष्ठान चेतन हो अधिष्ठान को उसीबिषे कल्पित वस्तु हानि नहीं करसक्ती है जो कभी हुई ही नहीं है वह दूसरे को क्या नुकसान करसक्ती है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

तातचिन्मात्ररूपोसि नतेभिन्नमिदं जगत् ॥ अतःकस्यकथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

तात चिन्मात्ररूपः असि न ते भिन्नम् इदम् जगत् अतः कस्य कथम् कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तात	= हे तात	इदम्	= यह
चिन्मात्ररूपः	= चैतन्यरूप	जगत्	= जगत्
		भिन्नम्	= तुझसेभिन्न
असि	= तू है	न	= नहीं है
ते	= तेरा	अतः	= इसलिये

कस्य = किसकी	हेयो पादेय कल्पना = { त्याज्य और ग्राह्य की कल्पना है
कथम् = क्योंकर	
च = और	
कुत्र = कहां	

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे तात! तुम चैतन्य स्वरूप हो तुम्हारे में हेय उपादेय याने त्याग और ग्रहण किसी वस्तुका भी नहीं बनताहै क्योंकि तुम्हारे से भिन्न यह जगत् नहीं है कल्पित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है उसका हेय उपादेय कैसे हो सक्ता है १२ ॥

मूलम् ॥

एकस्मिन्नव्ययेशान्ते चिदाकाशेऽमलेत्वयि ॥ कुतोजन्मकुतःकर्म कुतोहंकारएवच ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

एकस्मिन् अव्यये शान्ते चिदाकाशे अमले त्वयि कुतः जन्म कुतः कर्म कुतः अहंकारः एव च ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एकस्मिन्	तुझ एक	जन्मकुतः	जन्म कहांहै
अमले	निर्मल	कर्मकुतः	कर्म कहां है
अव्यये	अविनाशी	चएव	और
शान्ते	शान्त	अहंकारः कुतः	अहङ्कार कहां से है
चिदाकाशे	चैतन्यरूप आकाशमें		

भावार्थ ॥

हे जनक ! सजातीय विजातीय स्वगतभेद से शून्य नाशसे और विकार से रहित चिदाकाश निर्मल तुम्हारे स्वरूप में न जन्महै न मरण है न कोई कर्म है न अहंकार है ये सब द्वैत मेंही होते हैं द्वैत तुम्हारा रूप तीनों काल में नहीं है इसीसे तुम्हारे जन्म और विकारके अभाव होनेसे कर्तृत्वादिकोंकाभी अभाव है शुद्धहोने से तुम्हारेमें अहंकारकाभी अभाव है तुम्हारा स्वरूप ज्योंका त्यों एक रसहै ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

यस्त्वंपश्यसितत्रैकस्त्वमेवप्रतिभा-

ससे ॥ किंपृथग्भासतेस्वर्णात्कटकांगदनूपुरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

यत् त्वम् पश्यसि तत्र एकः त्वम् एव प्रतिभाससे किम् पृथक् भासते स्वर्णात् कटकांगदनूपुरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्	जिसको	किम्	क्या
त्वम्	तू	कटकांगद नूपुरम्	कंगनबाजू और घूंघर
पश्यसि	देखताहै	स्वर्णात्	सुवर्ण से
तत्र	उसबिषे	पृथक्	पृथक्
एकः	एक	भासते	भासताहै
त्वम्एव	तूही		
प्रतिभाससे	भासताहै		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जो २ कार्य तुम देखतेहो सो २ कारणरूपही है छांदोग्य के

छठे प्रपाठक में अरुण ऋषिने अपने श्वेत-केतु पुत्र के प्रति कहा है ॥ जब श्वेतकेतु बारह वर्षका हुआ तब उद्दालक ने कहा हे श्वेतकेतो! तू गुरुकुल में निवास करके सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर क्योंकि हमारे कुल में ऐसा कोई भी नहीं हुवा है जिसने ब्रह्मचर्य्य को धारण करके वेदोंका अध्यन न कियाहो ॥ पिता की आज्ञाको पाकर श्वेत-केतु गुरु के पास गया और ब्रह्मचर्य्य को धारणकरके बारह वर्षतक वेदों का अध्ययन करतारहा ॥ जब कि सब वेदों को पढ़चुका तब गुरु की आज्ञा लेकर घरको चला रास्ते में उसके चित्त में अभिमान उत्पन्नहुवा कि पिता मेरा मेरेबराबर विद्या में नहीं है उनको प्रणाम करने की क्याजरूरत है वह जब घरमें आया तब उसने पिता को प्रणाम नहीं किया पिता जान गये इसको विद्याका मद हुवा है उस अहंकार को दूर करना चाहिये पिताने कहा हे श्वेतकेतो! तुमने उस उपदेशको भी गुरुसे श्रवण किया जिस उपदेश करके अश्रुत भी श्रुत होजाताहै अज्ञात भी ज्ञात हो-जाताहै तब श्वेतकेतुने कहा हे पिता! उस उपदेश को तो मैंने नहीं श्रवण किया यदि गुरु हमारे जानते होते तो वह हमसे अवश्य कहते क्योंकि जितनी

मूलम् ॥

तवैवाज्ञानतोविश्वं त्वमेकःपरमार्थतः ॥ त्वत्तोऽन्योनास्तिसंसारी नासंसारीचकश्चन ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

तव एव अज्ञानतः विश्वम् त्वम् एकः परमार्थतः त्वत्तः अन्यः न अस्ति संसारी न असंसारी च कश्चन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तवएव	तेरेही	अन्यः	दूसरा
अज्ञानतः	अज्ञानसे	कश्चन	कोई
विश्वम्	विश्व है	नसंसारी	नसंसारी जीव
च	और	अस्ति	है
परमार्थतः	परमार्थ से	न असंसारी	न असंसारी ईश्वर
त्वम्	तू	अस्ति	है
एकः	एकहै		
अतः	इस लिये		
त्वत्तः	तुझ से		

इति = ऐसा	निःसङ्कल्पः = सङ्कल्प रहित होता हुआ
निश्चित्य = निश्चय करके	
त्वम् = तू	सुखीभव = सुखी हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! "यह वह है यह मैंहूं मैं यह नहीं हूं" इस भेदको त्याग कर "सर्व्वरूप आत्माही है" ऐसा निश्चय कर यदि ऐसा करैगा तो सुखी होगा क्योंकि द्वैतदृष्टिसे ही पुरुष को भय होता है एक अद्वैत अपने आप से किसी को भी भय नहीं होता है द्वैतदृष्टि ही दुःखका कारण है उसका त्याग करके तुम सुखी हो जैसे एकान्त देशविषे स्थित पुरुषको तबतक आनन्द रहता है जब तक उसके अन्तःकरण में भूतकी भावना वृत्ति नहीं उत्पन्न होती है ज्योंही भूत द्वैतवृत्ति उत्पन्न हुई त्यों-ही वह भयको प्राप्तहोताहै तैसेही जबतक तेरे दिलमें यह कल्पना है कि मैं और हूं जगत् और है तभी तक दुःख और भय तुझ को है नहीं तो तू अद्वैत आनन्दस्वरूप है ॥ १५ ॥

मूलम् ॥

अयंसोहमयंनाहंविभागमितिसंत्यज ॥ सर्वमात्मेतिनिश्चित्यनिःसंकल्पः सुखीभव १५ ॥

पदच्छेदः ॥

अयम् सः अहम् अयम् न अहम् विभागम् इति संत्यज सर्व्वम् आत्मा इति निश्चित्य निःसङ्कल्पः सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अयम्	यह	इति	ऐसे
सः	वह	विभागम्	विभाग को
अहम्	मैं		
अस्मि	हूं		
अयम्	यह	सन्त्यज	छोड़ दे
अहम्	मैं	सर्व्वम्	सब
न	नहीं हूं	आत्मा	आत्मा है

विद्या वह जानते थे उन सबको मेरे प्रति कहा अब आपही कृपा करके उस उपदेश को मेरे प्रति कहिये पुत्रको नम्र देखकर अरुणिऋषि उपदेश करतेहैं॥यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचा-रम्भणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥ १ ॥ हे सौम्य! जैसे एक मृत्तिका के पिण्ड करके सम्पूर्ण मृ-त्तिकाके कार्य्य मृत्तिकारूप ही जानेजाते हैं क्योंकि कारण से कार्य्य का भेद नहीं होता है और जितना नामका विषय विकार है केवल वाणी का कथन-मात्रही है केवल मृत्तिकाही सत्य है ॥ १ ॥ यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्व्वं लोहमयं विज्ञातं स्याद्वा-चारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ २ ॥ हे सौम्य! जैसे स्वर्ण के ज्ञान से जितने कटक कुण्ड-लादिक उस के कार्य्य हैं सब स्वर्णरूपही हैं क्योंकि कार्य्य कारण से भिन्न नहीं होता है और जितने स्वर्ण के कार्य्य नाम के विषय हैं वे सब वाणी करके कथनमात्र मिथ्या हैं उन सब विषे अनुगत स्वर्णही सत्य है ॥ २ ॥ इस तरह हे पुत्र! अनेक श्रु-तिवाक्यों से जब तू बोधित होगा तब तुझको मालूम होगा कि तूही कार्य्य कारणरूप से स्थित है तूही सच्चिदानन्द ज्ञानस्वरूप आत्मा है ॥ १४ ॥

भावार्थ ॥

हे शिष्य! तुम्हारेही अज्ञान से यह जगत् प्रतीत होता है और तुम्हारेही आत्मज्ञान से यह नाश होताहै ॥ प्रश्न ॥ अज्ञान का स्वरूप क्या है और ज्ञान का स्वरूप क्या है ॥ उत्तर ॥ अनादिभावत्वेसतिज्ञाननिवर्त्यत्वमज्ञानम् ॥ जो अनादि हो और भावरूप हो याने अभावरूप न हो और ज्ञान करके निवृत्त होजावै उसी का नाम अज्ञान है ॥ १ ॥ अज्ञाननाशकत्वेसति स्वात्मबोधकत्वंज्ञानम् ॥ जो अज्ञानका नाशकहो और अपने आत्मा के स्वरूप का बोधकहो उसीका नाम ज्ञान है ॥२॥ ज्ञान के उदय होने पर परमार्थ से हे शिष्य! तुम एकही हो संसारी असंसारी भेद तेरेबिषे नहीं है ॥ १६ ॥

मूलम् ॥

भ्रान्तिमात्रमिदंविश्वं नकिञ्चिदितिनिश्चयी ॥ निर्वासनःस्फूर्तिमात्रो नकिञ्चिदिवशाम्यति ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

भ्रान्तिमात्रम् इदम् विश्वम् न

किञ्चित् इति निश्चयी निर्वासनः स्फू-
र्तिमात्रः न किञ्चित् इव शाम्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	= यह	निर्वासनः	= वासनारहित
विश्वम्	= संसार	स्फूर्तिमात्रः	= स्फूर्तिमात्र है
भ्रान्तिमात्रम्	= भ्रान्तिमात्र है	न किंचितइव	= कुछ न हुये की नाईं याने वासनारहित होकर
च	= और	शाम्यति	= शान्ति को प्राप्तहोताहै
न किञ्चित्	= कुछ नहीं है		
इति	= ऐसा		
निश्चयी	= निश्चय करनेवालापुरुष		

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! यह जगत् सब भ्रान्ति करके स्थित होरहा है इस जगत्की अपनी सत्ता किञ्चिन्मात्र भी नहीं है ऐसे निश्चय करके तुम वासना से रहित होकर आनन्दपूर्व्वक संसार में विचरो ॥ १७ ॥

मूलम्॥

एकएवभवांभोधावासीदस्तिभविष्यति॥ नतेबन्धोस्तिमोक्षोवाकृतकृत्यः सुखंचर॥ १८॥

पदच्छेदः॥

एकः एव भवांभोधौ आसीत् अस्ति भविष्यति न ते बन्धः अस्ति मोक्षः वा कृतकृत्यः सुखम् चर॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भवांभोधौ	संसाररूपी समुद्र में	भविष्यति	तूहीहोवेगा
एकः	एक	ते	तेरा
आसीत्	तूहीहोता भया	बंधः	बंध
च	और	वा	और
अस्ति	तूही है	मोक्षः	मोक्ष
+च	और	न	नहींहै
		त्वम्	तू

कृतकृत्यः = कृतार्थहोताहुआ	सुखम् = सुखपूर्वक
	चर = विचर

भावार्थ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! इस संसाररूपी समुद्र में तू सदा अकेला एक आपही था और रहैगा ॥प्रश्न॥ जब मैंही भवसागर में था और रहूंगा तब तो मुझको मोक्ष कदापि नहीं होगा सदैव काल बन्ध मेंही रहूंगा ॥ उत्तर॥ हे पुत्र! अभी तक तुम अपने आप को न जानकर बन्ध और मोक्षके एरफेरमें पड़ेथे अब तुम अपने को जान गयेहो भवसागर में अनुस्यूतरूपं करके याने अधिष्ठान असंग साक्षी होकरके तुम्हीं स्थित थे और रहोगे क्योंकि तुम्हारेमें ही यह संसार रज्जुसर्प्पवत् कल्पित है अब न तेरे में बन्ध है और न मोक्ष है तू कृतकृत्य है॥ १८॥

मूलम्॥

मासंकल्पविकल्पाभ्यांचित्तंक्षोभय चिन्मय॥ उपशाम्यसुखंतिष्ठस्वात्मन्यानन्दविग्रहे॥ १९॥

पदच्छेदः ॥

मा संकल्पविकल्पाभ्याम् चित्तम् क्षोभय चिन्मय उपशाम्य सुखम् तिष्ठ स्वात्मनि आनन्दविग्रहे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
चिन्मय	= हे चैतन्यस्वरूप !	उपशाम्य	= मनकोशान्तकरके
संकल्पविकल्पाभ्याम्	= संकल्पविकल्पोंसे	आनन्दविग्रहे	= आनन्दपूरित
चित्तम्	= चित्तको	स्वात्मनि	= अपनेस्वरूपमें
+ त्वम्	= तू	सुखम्	= सुखपूर्वक
माक्षोभय	= मतक्षोभितकर	तिष्ठ	= स्थितहो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं ॥ हे चैतन्यस्वरूप ! संकल्प और विकल्पों करके अपने चित्त को क्षोभ न करो ॥ संकल्प विकल्प से तुम रहित होकर अपने आनन्दस्वरूप में स्थित हो ॥ १५ ॥

मूलम्॥

त्यजैवध्यानंसर्व्वत्र माकिंचिद्धृदि धारय॥ आत्मात्वम्मुक्तएवासि किं विमृश्यकरिष्यसि॥ २०॥

पदच्छेदः॥

त्यज एव ध्यानम् सर्व्वत्र मा किंचित् हृदि धारय आत्मा त्वम् मुक्तः एव असि किम् विमृश्य करिष्यसि॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्व्वत्रएव	सबही जगह	आत्मा मुक्तः एव	आत्मा मुक्तरूप ही
ध्यानम्	मनन को	आसि	है
त्यज	त्याग	+ त्वम्	तू
हृदि	हृदयमें	विमृश्य	विचार करके
किंचित्	कुछ	किम्	क्या
माधारय	मतधर	करिष्यसि	करैगा
त्वम्	तू		

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो ! अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में स्थिर होना विना ध्यान के बनता नहीं है इस वास्ते ध्यान करना चाहिये ॥ उत्तर ॥ ध्यानका भी त्याग कर क्योंकि ध्यान भी अज्ञानी के लिये कहा है जिसको आत्मा का बोध नहीं हुआ है भेदवादी है वही ध्यान करै ध्यान करना भी मनकाही धर्म्म है तू साक्षी आत्मा है अनात्मा नहीं है सदा मुक्तरूप है ध्यान और विचार से तेरे को क्या फल होगा तू इन से रहित है ॥ २० ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायां तत्त्वोपदेशविंशतिनामकं पञ्चदशंप्रकरणंसमाप्तम् ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

आचक्ष्वश्टृणुवातात नानाशास्त्राण्यनेकशः ॥ तथापिनतवस्वास्थ्यं सर्व्वविस्मरणादृते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

आचक्ष्व शृणु वा तात नानाशास्त्राणि अनेकशः तथा अपि न तव स्वास्थ्यम् सर्व्वविस्मरणात् ऋते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तात	हे प्रिय !	शृणु	सुन
अनेकशः	बहुत प्रकार से	तथाअपि	परन्तु
		ऋते	विना
नानाशास्त्राणि	अनेकशास्त्रों को	सर्व्वविस्मरणात्	सबके विस्मरण से
आचक्ष्व	कह	तव	तुझ को
		स्वास्थ्यम्	शान्ति
वा	या	न	न होगी

भावार्थ ॥

तत्त्वज्ञान करके सम्पूर्ण प्रपञ्च और तृष्णानाशही का नाम मुक्ति है अब इसी वार्त्ताको आगे वर्णन करते हैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे तात ! चहै तुम अनेक शास्त्रों को अनेक बार शिष्यों के प्रति पठन कराओ अथवा गुरु से पठन करो पर विना सबके विस्मरण

करने से तुम्हारा कल्याण कदापि नहीं होवैगा ॥ पञ्चदशी में भी कहा है ॥ ग्रन्थमभ्यस्यमेधावी विचार्य्यचपुनःपुनः ॥ पलालमिवधान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थ मशेषतः ॥ १ ॥ बुद्धिमान् पुरुष प्रथम ग्रन्थों का अभ्यास करै फिर पुनः पुनः उनका विचार करै पश्चात् जैसे चावल का अर्थीपुरुष चावलों को निकाललेताहै और परांली को फेंक देता है तैसेही वह भी जीवन्मुक्ति के सुखके लिये अभ्यास के पश्चात् सबका त्याग कर देवै ॥ प्रश्न ॥ सुषुप्ति में सर्व्व पुरुषों को स्वतःही विस्मरण होजाता है यदि सर्व्व वस्तुओं के विस्मरण करनेसे ही मुक्ति होती है तो सब जीवों को मोक्ष होजाना चाहिये पर ऐसा तो नहीं देखते हैं इसी से सिद्ध होता है कि सर्व्व का विस्मरण व्यर्थ है ॥ उत्तर ॥ सुषुप्ति में यद्यपि विस्मरण होजाता है तथापि सबका विस्मरण नहीं होताहै क्योंकि सर्व्व के अन्तर्गत अज्ञान है सो अज्ञान सुषुप्ति में बना रहता है और जीवन्मुक्त को तो अज्ञान के सहित सम्पूर्ण अध्यस्त वस्तुओं का विस्मरण होजाता है इस वास्ते जीवन्मुक्तिकी इच्छा वाले को सर्व्व वस्तुओं का विस्मरण करना ही उचित है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

भोगंकर्मसमाधिंवाकुरु विज्ञतथापि ते ॥ चित्तंनिरस्तसर्वाशमत्यर्थंरोचयिष्यति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

भोगम् कर्म्म समाधिम् वा कुरु विज्ञ तथा अपि ते चित्तम् निरस्तसर्व्वाशम् अत्यर्थम् रोचयिष्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विज्ञ	हे ज्ञानस्वरूप !	ते	तेरा
भोगम्	भोग	चित्तम्	चित्त
कर्म्म	कर्म्म	निरस्त सर्वा शम्	सबआशा से रहित होता हुआ भी
वा	और	त्वाम्	तुझको
समाधिम्	समाधिको	अत्यर्थम्	अत्यन्त
कुरु	कर	रोचयिष्यति	लोभावैगा
तथाअपि	परन्तु		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे पुत्र! चाहे तू भोगों को भोग चाहे तू कर्म्मोंको कर चाहे तू समाधि को लगा आत्मज्ञान के प्रभाव करके सर्व्व आशा से रहित हुआ २ तेरा चित्त शान्त रहैगा अर्थात् आशा से रहित होकर जो जो कर्म तू करैगा कोई भी तेरे को बन्धन का हेतु न होगा क्योंकि आशाही बंधन का हेतु है इस लिये सर्व्व से निराश होकर सर्व में आसक्ति से रहित होकर जब विचरैगा तब तू सुखी होवेगा ॥ २ ॥

मूलम् ॥

आयासात्सकलोदुःखी नैनंजानाति कश्चन ॥ अनेनैवोपदेशेन धन्यःप्राप्नोतिनिर्वृतिम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

आयासात् सकलः दुःखी न एनम् जानाति कश्चन अनेन एव उपदेशेन धन्यः प्राप्नोति निर्वृतिम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आयासात्	परिश्रमसे	अनेनएव	इसही
सकलः	सबमनुष्य	उपदेशेन	उपदेशसे
दुःखी	दुःखी हैं	धन्यः	सुकृती पुरुष
एनम्	इसको	निर्वृतिम्	परमसुखको
कश्चन	कोई	प्राप्नोति	प्राप्त होताहै
न जानाति	नहींजानता है		

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! सम्पूर्णलोक शरीर के निर्व्वाह करने में ही दुःखी होते हैं अर्थात् शरीरनिर्व्वाहार्थ परिश्रम करनेमें ही दुःख उठाते हैं परन्तु इस बातको नहीं जानते हैं कि परिश्रमही दुःखका हेतु है इसालिये महापुरुष शरीर के निर्व्वाह के लिये अतिपरिश्रम नहीं करते हैं क्योंकि शरीर की रक्षा प्रारब्धकर्म्म आपही करलेता है यत्न की कोई ज़रूरत नहीं होती है ऐसा जान कर वे सदैव सुखी रहते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

व्यापारेखिद्यतेयस्तु निमेषोन्मेष

योरपि ॥ तस्यालस्यधुरीणस्य सुखंनान्यस्यकस्यचित् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

व्यापारे खिद्यते यः तु निमेषोन्मेषयोः अपि तस्य आलस्यधुरीणस्य सुखम् न अन्यस्य कस्यचित् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	जो	आलस्य धुरीणस्य	आलसी धुरीणको
निमेषोन्मेषयोः	नेत्रके ढकने और खोलने के	अपि	ही
व्यापारे	व्यापार से	सुखम्	सुख है
खिद्यते	खेदकोप्राप्त होताहै	अन्यस्य	दूसरे
तस्य	उस	कस्यचित्	किसी को
		न	नहीं है

भावार्थ ॥

व्यापार में अनासक्ति ही सुखका हेतु है ॥ जो ज्ञानवान् जीवन्मुक्त पुरुष हैं उन को नेत्रके खोलने

और मूंदने में भी खेद होता है जो ऐसा आलसी पुरुष है और सम्पूर्ण व्यापारों से रहित है वही सुख को प्राप्त होता है व्यापारवान् को कभी भी सुख नहीं होता है संसार में जितनही पुरुष को व्यवहार विषे अधिक प्रवृत्ति है उतनही उसको दुःख अधिक है और जितनही व्यवहारप्रवृत्ति कम है उतनही उसको सुख अधिक है क्योंकि वृत्ति की वृद्धि दुःख की प्राप्ति और वृत्ति की निवृत्ति सुख की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

इदंकृतमिदंनेति द्वन्द्वैर्मुक्तंयदामनः ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षंतदा भवेत् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

इदम् कृतम् इदम् न इति द्वन्द्वैः मुक्तम् यदा मनः धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षम् तदा भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	यह	मुक्तम्	मुक्त हो
कृतम्	कियागया है	तदा	तब
इदम् न कृतम्	यह नहीं कियागया है	सः	वह
इति	ऐसे	धर्मार्थ काम मोक्षेषु	धर्म अर्थ काम मोक्ष विषे
द्वन्द्वैः	द्वन्द्व से	निरपेक्षम्	इच्छारहित
यदा मनः	जब मन	भवेत्	होता है

भावार्थ ॥

सम्पूर्ण तृष्णा के नाश होने पर शीतोष्णादिजन्य सुख दुःख भी पुरुष को नहीं सता सक्ते हैं इसी वार्त्ता को अब कहते हैं ॥ इस कामको मैंने कर लिया है और इस काम को मैंने नहीं किया है इस तरह के द्वन्द्वों से जब पुरुष का मन शून्य होजाता है तब वह धर्म्म अर्थ काम मोक्ष की इच्छा नहीं करता है ऐसा जो सम्पूर्णद्वन्द्वों से और सब इच्छा से रहित पुरुष है वही जीवन्मुक्ति के सुखको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

विरक्तोविषयद्वेष्टा रागीविषयलोलुपः ॥ ग्रहमोक्षविहीनस्तु न विरक्तो न रागवान् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

विरक्तः विषयद्वेष्टा रागी विषयलोलुपः ग्रहमोक्षविहीनः तु न विरक्तः न रागवान् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विपयद्वेष्टा	= विपयका द्वेपी	ग्रह मोक्ष विहीनः	= ग्रहण और त्यागरहित पुरुप
विरक्तः	= विरक्तहै	न विरक्तः	= न विरक्तहै
विपयलोलुपः	= विपय का लोभी	न रागवान्	= और न रागवान् है
रागी	= रागी है		

भावार्थ ॥

अब इस वार्त्ता को कहते हैं कि सकामी पुरुष से निष्कामपुरुष विलक्षण है ॥

मुमुक्षु होकर जो स्त्री पुत्रादिक विषयों में द्वेष करता है अर्थात् द्वेषदृष्टि करके उनको अंगीकार नहीं करता है किन्तु त्याग देता है उसका नाम विरक्त है और जो विषयों की कामना करके विषयों में लोलुपचित्तवाला है उसका नाम रागी है और जो पुरुष विषयों के ग्रहण और त्याग की इच्छा से रहित है वह विरक्त सरक्त से विलक्षण याने ग्रहण त्याग से रहित जीवन्मुक्त है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

हेयोपादेयतातावत्संसारविटपांकुरः ॥ स्पृहाजीवतियावद्वै निर्विचारदशास्पदम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

हेयोपादेयता तावत् संसारविटपांकुरः स्पृहा जीवति यावत् वै निर्विचारदशास्पदम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यावत्	= जबतक	जीवति	= जीवै है
स्पृहा	= तृष्णा	+ च	= और

यावत् = जबतक	
निर्विचार दशा= स्पदम्	अविवेक दशाकी स्थिति है
तावत् = तब तक	
हेयोपादेयता =	त्याज्यऔर ग्राह्य भाव
संसार विटपां= कुरः	संसाररूपी वृक्षका अंकुर है

भावार्थ ॥

विचारशून्यदशा आस्पदीभूत का नाम तृष्णाहै अर्थात् जिस कालमें कोई विचार न हो केवल भोगों की इच्छा ही उत्पन्न हो उसका नाम तृष्णा है सो जो तृष्णालु पुरुष है वह जबतक जीता है ग्रहण त्याग करता ही रहता है संसाररूपी वृक्ष का अंकुर उत्पन्न करनेवाली तृष्णा ही है सो तृष्णा जीवन्मुक्तों में नहीं रहती है यदि प्रारब्धकर्म्म के वश से जीवन्मुक्त में ग्रहण त्याग का व्यवहार होता भी रहै तौ भी उसकी कोई हानि नहीं है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

प्रवृत्तौजायतेरागो निवृत्तौद्वेषएव हि ॥ निर्द्वन्द्वोबालवद्धीमानेवमेवव्यव स्थितः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रवृत्तौ जायते रागः निवृत्तौ द्वेषः एव हि निर्द्वन्द्वः बालवत् धीमान् एवम् एव व्यवस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रवृत्तौ	प्रवृत्ति में	एवहि	इसलिये
रागः	राग	धीमान्	बुद्धिमान् पुरुष
च	और	निर्द्वन्द्वः	द्वन्द्वरहित
निवृत्तौ	निवृत्ति में	एवमएव	जैसेहोवै वैसाही
द्वेषः	द्वेष	व्यवस्थितः	स्थितरहै
जायते	होता है		

भावार्थ ॥

विषयों में जब रागपूर्व्वक प्रवृत्ति होती है तब पूर्व्व से उत्तर २ विषयों में रागही उत्पन्न होता है और जब विषयों में द्वेषपूर्व्वक निवृत्ति होती है तब पूर्व्व से उत्तर २ विषयों में द्वेषदृष्टि ही उत्पन्न होती है इसी में एक दृष्टान्त कहते हैं ॥ एक राजा दूसरे देश को गया तिस को कई एक वर्ष बीत गये पीछे उस की

रानी बड़ी कामातुर होकर अपने मकान परसे इधर उधर ताकती थी एक सराफ़ का लड़का युवा अवस्थाको प्राप्त बड़ा सुन्दर अपने कोठे पर खड़ा था उसको देखकर रानीका मन उसकी तरफ़ चलागया रानी ने अपनी लौंड़ी को उसके बुलाने के लिये भेजा लौंड़ी उसको बुलालाई रानी उससे बातचीत करने लगी थोड़ी देर में लौंड़ी ने आकर कहा कि राजा साहब आगये तब उस लड़के ने कहा मुझ को कहीं छिपाओ रानी ने उसको पाखाने के नल में खड़ा करदिया इतने में राजा भीतर आगये और नौकर से कहा जल्दी पानी लाओ हम पाखाने जावैंगे नौकर पानी लाया राजा पाखाने गये राजा साहब को दस्त पतले आतेथे नलकी मोहरी पर बैठकर जो पाखाना उन्हों ने फिरा सो नीचे उस लड़के के ऊपर जाकर गिरा तिसका शिर मुँह और कपड़े सब मैले से भरगये राजा पाखाना फिरकर चलेगये तब लौंड़ी ने उसको किसी गंदी नाली के रस्ते से निकाल दिया उस लड़के ने नदीपर जाकर स्नानकिया और सब कपड़े साफ़ करके अपने घरको गया दूसरे दिन फिर रानी ने लौंड़ी को उसके बुलाने के लिये भेजा तब लड़के ने कहा एक दिन मैं रानी के पास

गया और केवल दस पांच बातैं उससे मैंने की तब उसका फल यह हुआ कि अपने सिरपर दूसरे का मैला पड़ा जो रोज़ २ उससे सम्बन्ध करता है न मालूम उसकी क्या गति होगी मेरेको तो वह पायखाना न भूला है न भूलैगा मैं अब कदापि नहीं जाऊंगा इस प्रकार की जब विषयभोग में दोषबुद्धि होती है तब फिर कदापि उसकी विषयभोग में रागपूर्व्वक प्रवृत्ति नहीं होती है ऐसेही विद्वान् भी बालक की तरह शुभ अशुभ के चिन्तन से रहित होकर केवल प्रारब्धवश से कदाचित् प्रवृत्त होता है कदाचित् निवृत्त भी होजाता है परन्तु राग द्वेष करके न तो वह प्रवृत्त होता है और न वह निवृत्त होता है॥ ८॥

मूलम्॥

हातुमिच्छतिसंसारं रागीदुःखजिहासया॥ वीतरागोहिनिर्दुःखस्तस्मिन्नपिनखिद्यति॥ ९॥

पदच्छेदः॥

हातुम् इच्छति संसारम् रागी दुः-

खजिहासया वीतरागः हि निर्दुःखः तस्मिन् अपि न खिद्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
रागी	= रागवान् पुरुष	हि	= निश्चय करके
दुःखजिहासया	= दुःखकी निवृत्ति की इच्छा से	निर्दुःखः	= दुःख से मुक्त होताहुआ
संसारम्	= संसारको	तस्मिन्	= संसारविषे
हातुम्	= त्यागना	अपि	= भी
इच्छति	= चाहता है	न खिद्यति	= नहीं खेद को प्राप्तहोता है
वीतरागः	= रागरहित पुरुष		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे शिष्य ! जो पुरुष विषयों में रागवाला है सोई विषयके सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ जो दुःख है उसके त्याग की इच्छा करताहुआ संसारके त्यागने की इच्छा करता है और जो वीत-

राग पुरुष है वह संसार के बने रहनेपर भी खेद को नहीं प्राप्तहोता है॥ सो पञ्चदशीमें भी कहा है॥ रागोलिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु॥ कुतोवैशाद्वलस्तस्य यस्याग्निःकोटरेतरोः॥ १॥ जिस वृक्ष के कोटर में याने जड़के बिल में अग्नि लगी है उस वृक्षको हरियाई याने उसके हरेपत्ते कदापि उत्पन्न नहीं होते हैं दार्ष्टान्त में जिस पुरुष के चित्त में अज्ञान का चिह्न बना है उसको शान्ति कदापि नहीं होती है॥ ९॥ मूलम्॥

यस्याभिमानोमोक्षेऽपि देहेऽपिममतातथा॥ नचयोगीनवाज्ञानीकेवलंदुःखभागसौ॥ १०॥

पदच्छेदः॥

यस्य अभिमानः मोक्षे अपि देहे अपि ममता तथा न च योगी न वा ज्ञानी केवलम् दुःखभाक् असौ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यस्य	जिस को	अभिमानः	अभिमान है
मोक्षे	मोक्षविषे		

च = और	ज्ञानी = ज्ञानी है
देहे = देह विषे	च = और
अपि = भी	न = न
तथा = वैसाही	योगीवा = योगी है
ममता = ममता है	केवलम् = केवल
असौ = वह	दुःखभाक् = दुःख का भागी है
न = न	

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं मैं ज्ञानी हूं मैं त्रिकालदर्शी हूं मैं मुक्त हूं इस प्रकार का जिसको अभिमान है वह ज्ञानी नहीं है जो कहता है मैं योगाऽभ्यासी हूं मैं नित्यही धोती नेती वस्ती आदिक क्रिया करता हूं वह योगी भी नहीं है किन्तु वह केवल दुःखका भोगनेवाला है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

हरोयद्युपदेष्टाते हरिःकमलजोऽपि वा ॥ तथापिनतवस्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

हरः यदि उपदेष्टा ते हरिः कमलजः अपि वा तथा अपि न तव स्वास्थ्यम् सर्वविस्मरणात् ऋते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदि	अगर	सर्वविस्मरणात् ऋते	बगैर सब के विस्मरण के याने त्याग के
ते	तेरा	तव	तुझ को
उपदेष्टा	उपदेशक	स्वास्थ्यम्	शान्ति
हरः	शिव है	न	नहीं होगी
हरिः	विष्णु है		
वा	अथवा		
कमलजः	ब्रह्मा है		
तथापि	तौभी		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं कि हे जनक! चाहे तुम को महादेव उपदेश करें या विष्णु उपदेश करें या ब्रह्मा उपदेश करें तुम को सुख कदापि न होगा जब विषयों को त्याग करोगे तभी शान्ति और आ-

नन्द को प्राप्त होगे आत्मतत्त्व के उपदेश के पहिले विषयों का त्याग बहुत ज़रूरी है॥ ११॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायां शिष्योपदेशकन्नाम षोडशकंप्रकरणंसमाप्तम्॥ १६॥

सत्रहवां अध्याय॥

मूलम्॥

तेनज्ञानफलम्प्राप्तं योगाभ्यासफल न्तथा॥ तृप्तःस्वच्छेन्द्रियोनित्यमेका कीरमतेतुयः॥ १॥

पदच्छेदः॥

तेन ज्ञानफलम् प्राप्तम् योगाभ्यास-फलम् तथा तृप्तः स्वच्छेन्द्रियः नित्यम् एकाकी रमते तु यः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	= जो पुरुष	नित्यम्	= नित्य

तृप्तः	तृप्त है	ज्ञानफलम्	ज्ञानका फल
स्वच्छेन्द्रियः	शुद्धइन्द्रियवाला है	तथा	और
च	और	योगाभ्यासफलम्	योग के अभ्यास का फल
एकाकी	अकेला	प्राप्तम्	पाया गया है
रमते	रमता है		
तेन	उसी करके		

भावार्थ ॥

अब विंशतिश्लोकों करके सत्रहवें प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं ॥ इतरपुरुषों की प्रवृत्ति ब्रह्मविद्या में कराने के लिये और आत्मज्ञान के फलके दिखानेवास्ते गुरु प्रथम ज्ञानकी दशाको दिखाते हैं ॥ उसी पुरुष को आत्म ज्ञानका फल प्राप्त हुआ है और उसी पुरुष को योगाभ्यास का फल भी प्राप्त हुआ है जिसनें अपने आपमें ही विषयभोगोंसे रहित होकर तृप्ति पाई है वही स्वच्छइन्द्रियोंवाला है याने उसके इन्द्रियों में विषयभोगकी कामना रञ्चकमात्र नहीं है जो नित्य अकेला विचरता है और अपने आप स्थित है ॥ दत्तात्रेयजीने

भी कहा है ॥ वासोबहूनांकलहो भवेद्वार्त्ताद्वयोरपि ॥ एकाकीविचरेद्विद्वान् कुमार्य्यारिवकङ्कणः ॥ १ ॥ दत्तात्रेयजी एक ब्राह्मणके घर भिक्षा मांगनेको गये घरमें एक कुमारी कन्याथी और कोई न था उसकन्याने कहा महाराज आप ठहरैं मैं धान कूटकर चावल निकालकर आप को देतीहूं जब वह कन्या धान कूटने लगी तब उसके हाथ में जो कांचकी चूड़ियांथीं वह छन् २ शब्द करने लगीं उनके शब्द होने से कन्या को बड़ी लज्जा आई वह एक एक करके उन चूड़ियों को उतार दिया जब एकही चूड़ी बाकी रहगई तब शब्द होना बन्द होगया ॥ तब दत्तात्रेयजी ने विचार करके कहा कि जहां बहुत से पुरुषों का एकत्र रहना होताहै वहां लड़ाई झगड़ा ज़रूर होता है और जहां दो पुरुष इकट्ठे रहते हैं वहां पर गपशप होती है श्रवण मननादिक नहीं होते हैं इस वास्ते विद्वान् को चाहिये कि कुमारी कन्या के कङ्कणकी तरह अकेला होकर संसार में विचरै जिस विद्वान् को जीवन्मुक्ति के सुखकी लेनेकी इच्छा होती है वह अकेलाही रहताहै इसी वास्ते संन्यासी को बहुत पुरुषों के मध्यमें रहना और बहुतों को संग रखना भी मना किया है ॥ दक्षस्मृतिः ॥ त्रयोग्रामःसमाख्यातऊर्ध्वंतुनगरायते ॥

नगरंहिनकर्त्तव्यं ग्रामोवामैथुनन्तथा ॥ १ ॥ एतत्त्रय न्तुकुर्व्वाणः स्वधर्म्माच्च्यवतेयतिः ॥ राजवार्त्तादि तेषान्तु भिक्षावार्त्तापरस्परम् ॥ २ ॥ जहां पर तीन भिक्षु मिलकरके रहैं उसका नाम ग्राम है जहांपर तीन से अधिक रहैं उसका नाम नगर है इस वास्ते भिक्षु विद्वान् नगर और ग्रामको न बनावैं और न दूसरे के साथ रहैं अकेले ही विचरा करैं जो भिक्षु ग्राम नगर वा मिथुन को करता है याने दो तीन और अधिकों के साथ रहता है वह अपने धर्म्म से प्रच्युत होजाता है ॥ १२ ॥ सत्कारमानपूजार्थं दण्डकाषायधा रणः ॥ ससंन्यासीनवक्तव्यः संन्यासीज्ञानतत्परः ॥१॥ सत्कार मान पूजा के अर्थ जो भिक्षु दण्ड और कषाय वस्त्रों को धारण करताहै वह संन्यासी नहीं है जो आत्म ज्ञानपरायण होकर अकेला निर्व्वासना हुआ २ ही रहताहै वही शान्तिको प्राप्त होता है दूसरा नहीं॥१॥

मूलम् ॥

न कदाचिज्जगत्यस्मिंस्तत्त्वज्ञोह न्ताखिद्यति ॥ यतएकेनतेनेदं पूर्णंब्रह्मा ण्डमण्डलम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

न कदाचित् जगति अस्मिन् तत्त्वज्ञः हन्त खिद्यति यतः एकेन तेन इदम् पूर्णम् ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तत्त्वज्ञः	= तत्त्वज्ञानी	हन्त	= यहबात ठीकहै
अस्मिन्	= इस	यतः	= क्योंकि
जगति	= जगत् विषे	तेनएकेन	= उसीएक से
न कदाचित्	= कभी नहीं	इदम्	= यह
खिद्यते	= खेदकोप्राप्तहोता है	ब्रह्मांडमंडलम्	= ब्रह्मांडमण्डल
		पूर्णम्	= पूर्णहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! इस संसारमण्डल में तत्त्ववित् ज्ञानी कभी भी खेद को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि वह जानताहै कि मुझ एक करके ही यह सारा जगत् व्याप्त होरहा है खेद दूसरे से होताहै सो दूसरा उसकी दृष्टि में है नहीं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

नजातुविषयाः केपिस्वारामंहर्षय न्त्यमी ॥ सल्लकीपल्लवप्रीतमिवेभान्नि म्बपल्लवाः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

न जातु विषयाः के अपि स्वारा- मम् हर्षयन्ति अमी सल्लकीपल्लवप्रीत- म् इव इभम् निम्बपल्लवाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अमी	ये
केअपि	कोई भी
विषयाः	विषय
नजातु	कभीनहीं
स्वारामम्	स्वात्मा- रामको
हर्षयन्ति	हर्षितकरतेहैं
इव	जैसे
सल्लकीपल्लवप्रीतम्	सल्लकी के पत्तों से प्रसन्न हुये
इभम्	हाथी को
निम्बपल्लवाः	नीम के पत्ते
नहर्षयन्ति	नहींहर्षको प्राप्तकरते हैं

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! जो पुरुष अपने आत्मामें ही रमण करै उसका नाम आत्माराम है वह आत्माराम कदापि विषयों की प्राप्ति होने से और उनके भोगने से हर्ष को नहीं प्राप्त होताहै क्योंकि वह विषयों को तुच्छ जानता है अर्थात् विषयजन्य सुख को वह मिथ्या जानता है और विषयभोग भी उस आत्माराम को हर्ष नहीं करसक्ते हैं क्योंकि अपनी सत्ता से रहित हैं जैसे सल्लकी जो मधुररसवाली बेल है उस बेल के पत्ते जिस हस्ती ने खाये हैं उसको कटुरसवाले नीम के पत्ते हर्षको प्राप्त नहीं करसक्ते हैं तैसे जिसने आत्मानन्द का अनुभव किया है उसको विषयानन्द नहीं आनन्दित करसक्ता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

यस्तुभोगेषुभुक्तेषु नभवत्यधिवासितः ॥ अभुक्तेषुनिराकांक्षीतादृशो भवदुर्लभः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

यः तु भोगेषु भुक्तेषु न भवति

अधिवासितः अभुक्तेषु निराकांक्षी ता-
दृशः भवदुर्लभः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	=जो	च	=और
भुक्तेषु	=भोगेहुये	अभुक्तेषु	=अभुक्तपदार्थों बिषे
भोगेषु	=भोगों में	निराकांक्षी	=आकांक्षा रहितहै
अधिवासितः	= आसक्त	तादृशः	=ऐसामनुष्य
नभवति	=नहींहोताहै	भवदुर्लभः	=दुर्लभहै

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! जिस पुरुष की भोगेहुये भोगों में आसक्ति नहीं है और जो नहीं भोगेहुये भोग हैं उनमें उसकी आकांक्षा भी नहीं है परन्तु जो अपने आत्मामें ही तृप्त है वैसा पुरुष संसार सागरबिषे करोड़ों में एकही है अथवा एक भी दुर्लभ है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

बुभुक्षुरिहसंसारेमुमुक्षुरपिदृश्यते ॥

भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलोहिमहाशयः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

बुभुक्षुः इह संसारे मुमुक्षुः अपि दृश्यते भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलः हि महाशयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
बुभुक्षुः	=भोग की इच्छावाला	हि	=परन्तु
अपि	=और	भोगमोक्ष निराकांक्षी	=भोग औरमोक्ष की आशा से रहित
मुमुक्षुः	=मोक्ष की इच्छावाला	विरलः	=कोई विरलाही
इह	=इस	महाशयः	=महापुरुषहै
संसारे	=संसारविषे		
दृश्यते	=देखेजातेहैं		

भावार्थ ॥

इस संसारमें मुमुक्षु अनेकप्रकार के दिखाई पड़ते

हैं परन्तु जो भोग और मोक्ष दोनोंकी आकांक्षा से रहित हो और महान् परिपूर्ण ब्रह्मबिषे शुद्ध अन्तःकरण से स्थित हो सो दुर्लभ है॥ गीता में भी भगवान्ने कहा है ॥ मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥ यततामपिसिद्धानां कश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ॥ १ ॥ हजारों मनुष्यों में से कोई एक मनुष्य अन्तःकरणकी शुद्धि के लिये यत्न करता है फिर उन में सेभी कोई एक विरला पुरुष आत्मा को यथार्थ जानता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीवितेमरणे तथा ॥ कस्याप्युदारचित्तस्य हेयोपादेयतानहि ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीविते मरणे तथा कस्य अपि उदारचित्तस्य हेयोपादेयता न हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धर्मार्थ काममोक्षेषु	धर्म अर्थ काम मोक्ष विषे	कस्य	किस
जीविते	जीनेविषे	उदार चित्तस्य	उदार चित्त को
तथा	और	हेयोपादेयता	त्याग और ग्रहण
मरणे	मरण विषे	नहि	नहीं है

भावार्थ ॥

हे शिष्य! ऐसा पुरुष संसारविषे दुर्लभहै जो धर्म्म अर्थ काम मोक्ष और जीने और मरने में उदासीन हो याने उसको सुखाकार दुःखाकारवृत्ति न व्यापे अपने अद्वैत आत्मा में शान्त होकर स्थित रहै सुख दुःख सापेक्षिक है जिसको सुख होता है उसीको दुःख भी होता है जिसको दुःख होता है उसीको सुख भी होता है ॥ तुम हे प्रिय! इन दोनों से रहित होकर विचरो ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

वाञ्छानविश्वविलये न द्वेषस्तस्यच

स्थितौ ॥ यथाजीविकयातस्माद्धन्य आस्तेयथासुखम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

वाञ्छा न विश्वविलये न द्वेषः तस्य च स्थितौ यथा जीविकया तस्मात् धन्यः आस्ते यथासुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विश्वविलये	विश्वकेलय होने में	तस्मात्	ताते
वाञ्छा	इच्छा	धन्यः	धन्यपुरुष वह है
न	नहींहै	यः	जो
च	और	यथाजीविकया	यथाप्राप्त आजीविका द्वारा
तस्य	उसके	यथासुखम्	सुखपूर्वक
स्थितौ	स्थिति में	आस्ते	रहताहै
द्वेषः	द्वेष		
न	नहींहै		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे पुत्र ! विश्व के लय होने

की इच्छा जिस विद्वान् को नहीं है और विश्व के स्थिर रहने में जिसको द्वेष नहीं है अर्थात् प्रपञ्च रहै वा नष्ट होजाय और जो अपनेको विश्वका साक्षी अधिष्ठान समझकर स्थित है वही विद्वान् कृतकृत्य है धन्य है पूजने योग्य है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

कृतार्थोऽनेनज्ञानेनेत्येवंगलितधीः कृती ॥ पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्नास्तेयथासुखम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

कृतार्थः अनेन ज्ञानेन इति एवम् गलितधीः कृती पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् आस्ते यथा सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनेन	= इस	कृतार्थः	= कृतार्थहूं मैं
ज्ञानेन	= ज्ञान से	इतिएवम्	= इस प्रकार

गलित धीः = (लित है है बु- द्धि जि- की (ऐसा	स्पृशन् = स्पर्श कर- ताहुआ
	जिघ्रन् = सूंघता हुआ
कृती = ज्ञानीपुरुष	अश्नन् = खाताहुआ
पश्यन् = देखता हुआ	यथासुखम् = (सुखपू- (र्व्वक
शृण्वन् = सुनता हुआ	आस्ते = रहता है

भावार्थ ॥

मैं अद्वैत आत्मज्ञान करके कृतार्थ हुआहूं ऐसी बुद्धिभी जिस विद्वान् की उत्पन्न नहीं होती है और आहारादिकों को करताहुआ भी जो शरीरी सुख को उल्लंघन करके स्थित होता है और बाह्य इन्द्रियों के व्यापारों के होनेपर भी अज्ञानी मूर्खों की तरह खेद नहीं करता है और जो खड़ा हुआ बैठा हुआ चलताहुआ भी समाहितचिंत्तवाला है वही धन्य है वही ब्रह्मरूप है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

शून्यादृष्टिर्वृथाचेष्टा विकलानीन्द्रियाणिच ॥ नस्पृहानविरक्तिर्वा क्षीणसंसारसागरे ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

शून्या दृष्टिः वृथा चेष्टा विकलानि इन्द्रियाणि च न स्पृहा न विरक्तिः वा क्षीणसंसारसागरे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
क्षीण संसार सागरे	= नाश हुआ है संसाररूपी समुद्र जिसका ऐसे पुरुषविषे	दृष्टिः शून्या	= दृष्टिशून्य होगई है
		चेष्टावृथा	= व्यापार जातारहाहै
		इन्द्रियाणि	= इन्द्रियां
		विकलानि	= विकल होगई हैं

क्योंकि जो जागता है वह नेत्रकी पलकों को खोले रहता है याने बाह्यविषयों को देखता है और स्मरण भी करता है ज्ञानी बाह्यविषयोंको न देखता है और न स्मरण करता है इस वास्ते वह जागता नहीं है और ज्ञानवान् सोता भी नहीं है क्योंकि जो सोता है वह नेत्रोंके पलकों को मूंद लेता है और इसी कारण तब वह बाहर के किसी पदार्थ को नहीं देखता है सो विद्वान् ऐसा नहीं करता है किन्तु बाहर के सब पदार्थों को ब्रह्मरूप करके देखता है ॥ प्रश्न ॥ ऐसे ज्ञानवान् की कौन दशा होती है ॥ उत्तर ॥ अहो बड़ा आश्चर्य्य है २ शान्तचित्तवाला ज्ञानी कोई एक अलौकिक उत्कृष्ट तुरीय अवस्था को प्राप्त होता है उस दशा का बयान चर्म्मसुखसे बाहर है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

सर्व्वत्रदृश्यतेस्वस्थःसर्व्वत्राविमलाशयः ॥ समस्तवासनामुक्तो मुक्तःसर्व्वत्रराजते ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्व्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्व्वत्र

विमलाशयः समस्तवासनामुक्तः मुक्तः सर्व्वत्रराजते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्तः	= जीवन्मुक्त ज्ञानी	दृश्यते	= दिखलाई देता है
सर्व्वत्र	= सब जगह	च	= और
स्वस्थः	= शान्तहुआ	सर्व्वत्र	= सब जगह
सर्व्वत्र	= सब जगह	समस्त वासना मुक्तः	= सब वासनारहित
विमलाशयः	= निर्म्मल अन्तःकरणवाला हुआ	राजते	= विराजता है

भावार्थ ॥

अब ज्ञानवान्‌की अलौकिक दशाको दिखलाते हैं ॥ हे शिष्य ! विद्वान् जीवन्मुक्त सर्व्वत्र सुख दुःख में स्वस्थचित्त रहता है अज्ञानी सुखमें हर्ष को और दुःख में शोक को प्राप्त होता है ज्ञानवान् सुख दुःख हर्ष शोकको बराबर जानकर अपने आत्मानन्दमें मग्न रहताहै॥ अज्ञानी मित्र से राग और शत्रु से द्वेष क-

रता है ज्ञानवान् शत्रु मित्र में समदृष्टिवाला रहता है विद्वान् सम्पूर्ण विषयवासनाओं से रहित होकर जीवन्मुक्त हुआ सम्पूर्ण अवस्थाओं में एकरस ज्योंका त्यों प्रकाशमान रहता है॥ ११ ॥

मूलम् ॥

पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गृह्णन्वदन्व्रजन् ॥ ईहितानीहितैर्मुक्तो मुक्तएवमहाशयः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गृह्णन् वदन् व्रजन् ईहितानीहितैः मुक्तः मुक्तः एव महाशयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पश्यन्	देखता हुआ	जिघ्रन्	सूंघता हुआ
शृण्वन्	सुनता हुआ	वदन्	बोलता हुआ
स्पृशन्	स्पर्श करता हुआ	व्रजन्	जाता हुआ
		ईहितानीहितैः	रागद्वेषसे

मुक्तः = छूटाहुआ	महाशयः = महात्मा पुरुष
एव = निश्चयकरके ऐसा	मुक्तः = ज्ञानी है

भावार्थ॥

सर्व्वत्र देखताहुआ सुनताहुआ स्पर्श करताहुआ सूंघताहुआ खाताहुआ ग्रहण करताहुआ बोलताहुआ चलताहुआ भी इच्छा द्वेषसे रहितही होता है क्योंकि उसका चित्त महान् ब्रह्मविषे स्थित है और इसी से वह जीवन्मुक्त है॥ १२॥

मूलम्॥

ननिंदतिनचस्तौति न हृष्यति न कुप्यति॥ नददातिनगृह्णाति मुक्तःसर्व त्रनीरसः॥ १३॥

पदच्छेदः॥

न निन्दति न च स्तौति न हृष्यति न कुप्यति न ददाति न गृह्णाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
न निन्दति	= न निन्दा करता है	न कुप्यति	= न क्रोध करता है
च	= और	न ददाति	= न देताहै
न स्तौति	= न स्तुति करता है	न गृह्णाति	= न लेताहै
न हृष्यति	= न हर्ष को प्राप्तहोता है	मुक्तः	= ज्ञानी
		सर्वत्र	= सर्वत्र
		नीरसः	= रसरहित है

भावार्थ ॥

अब जीवन्मुक्त के लक्षण को दिखाते हैं ॥ जो जीवन्मुक्त है वह न किसी की निन्दा करता है और न स्तुति करता है और न हर्ष करता है और न कभी कोप को प्राप्त होता है याने जो संसारी पुरुष जीवन्मुक्त को आदर सन्मान करते हैं वह उन की स्तुति नहीं करता है और जो उसको निरादर करते हैं उनकी वह निन्दा नहीं करता है और न वह ने उत्तम खान पान आदिकों के प्राप्त होनेपर हर्ष न होता है और न घृतहीन बासी भोजन मि- वह शोक करता है और न किसी से शरीर

के निर्व्वाह के सिवाय अधिक वस्तु के ग्रहण करने की इच्छा करता है और न किसी से लेकर दूसरे को देता है और न किसी से किसी को कुछ दिलवाता है वह सदा अपने आप में मग्न रहता है ॥ प्रश्न ॥ संसारमें तो लोक नग्न रहनेवाले को जीवन्मुक्त कहते हैं और कोई कोई भिक्षा मांगकर खानेवाले को जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ उत्तर ॥ संसारीलोक सकामी होते हैं जो सकामी होते हैं उनको नहीं मालूम होता है कि कौन ज्ञानी है और कौन अज्ञानी है और उनको सत्य असत्य का विवेक भी नहीं होता है वे दम्भ में फँसते हैं जो हठ से वस्त्रों को त्यागकर मानके वास्ते नंगे रहते हैं और शिष्यों के कान फूंकते हैं एक से द्रव्य लेकर दूसरे को देते हैं या नाम के वास्ते मठादिकों को बनाते हैं वे जीवन्मुक्त कदापि नहीं होसक्ते हैं वे भी चेलेकी तरह सकामी हैं उनके चेलों में स्त्री पुत्रादिकों की कामना भरी है उनके कल्याण के लिये वे चेले नंगों को गुरु बनाकर उनकी सेवा करते हैं जिस महात्मा का चित्त विषयभोग में है वह अवश्य नरक को प्राप्त होता है चाहै वह कितना ही नंगा रहै और पाखण्ड करै ॥ दृष्टान्त ॥ एक महात्मा एक राजा के मन्दिर में बहुत कालतक रहे एक दिन वह

मरगये उसीदिन राजा भी मरगया नगर के बाहर जंगल में एक तपस्वी योगी रहताथा एक आदमी उन के पास बैठाथा तपस्वी हँसने लगे तब उस आदमी ने पूछा कि महाराज विना प्रयोजन आज आप क्यों हँसते हो उन्हों ने कहा हम विना प्रयोजन नहीं हँसते हैं राजा के पास जो महात्मा रहतेथे वे मरगये हैं राजा भी मरगया है राजा स्वर्ग में गया और महात्मा नरक में गये क्योंकि राजा का मन महात्मा में रहताथा इसी वास्ते वह स्वर्ग में गया उस को वैराग्य बना रहताथा और महात्मा का मन राजभोगों में रहताथा वैराग्य से शून्य रहताथा इसी वास्ते वह नरक को गये (दार्ष्टान्त) चाहे कितनाही नंगा रहै वह कदापि जीवन्मुक्त नहीं होसक्ता है जो वासनासे रहित है वही जीवन्मुक्त है ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

सानुरागांस्त्रियंदृष्ट्वा मृत्युंवासमुपस्थितम् ॥ अविह्वलमनाःस्वस्थो मुक्त एवमहाशयः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

सानुरागाम् स्त्रियम् दृष्ट्वा मृत्युम् वा

समुपस्थितम् अविह्वलमनाः स्वस्थः मुक्तः एव महाशयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सानुरागाम्	प्रीतियुक्त	च	और
स्त्रियम्	स्त्री को	स्वस्थः	शान्तहोता हुआ
वा	और	महाशयः	महापुरुष
समुपस्थितम्	समीप में स्थित	एव	निश्चयकरके
मृत्युम्	मृत्युको	मुक्तः	ज्ञानी है
दृष्ट्वा	देखके		
अविह्वलमनाः	व्याकुलतारहित होताहुआ		

भावार्थ ॥

अनुराग याने प्रीति के सहित स्त्रीको देख करके जिसका मन कामातुर नहीं होता है और मृत्यु को समीप स्थित देखकर जिसका मन भय को नहीं प्राप्त होता है किन्तु अपने आत्मानन्द में आनन्द रहता है वही जीवन्मुक्त है ॥ १४ ॥

मूलम्॥

सुखेदुःखेनरेनार्य्यां संपत्सुचविप त्सुच॥ विशेषोनैवधीरस्य सर्वत्रस मदर्शिनः॥ १५॥

पदच्छेदः॥

सुखे दुःखे नरे नार्याम् सम्पत्सु च विपत्सु च विशेषः न एव धीरस्य सर्वत्र समदर्शिनः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सुखे	= सुख बिषे	विपत्सु	= विपत्तियोंमें
दुःखे	= दुःख बिषे	सर्वत्र	= सर्वत्र
नरे	= नर बिषे	समदर्शिनः	=समदर्शी
नार्याम्	= नारी बिषे	धीरस्य	= ज्ञानी का
सम्पत्सु	= सम्पत्तियोंमें	विशेषःन	= भेद नहीं है

भावार्थ॥

जिसका चित्त सुख दुःखमें सम रहता है अर्थात् शरीर को अतिसुख होने से जो हर्ष को नहीं प्राप्त होता है और शरीर को खेद होने से जो शोक को

नहीं प्राप्त होता है और सम्पदा के प्राप्त होनेपर जिसको हर्ष नहीं होता है और विपदा के आनेपर जिस को शोक नहीं होता है वही जीवन्मुक्त है ॥ १५ ॥

मूलम् ॥

नहिंसानैवकारुण्यं नौद्धत्यन्नचदीनता ॥ नाश्चर्यन्नैवचक्षोभः क्षीणसंसरणेनरे ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

न हिंसा न एव कारुण्यम् न औद्धत्यम् न च दीनता न आश्चर्यम् न एव च क्षोभः क्षीणसंसरणे नरे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
क्षीणसंसरणे	= क्षीण हुआ है संसार जिसकाऐसे	न औद्धत्यम्	= न अनम्रता है
नरे	= मनुष्य विषे	च	= और
न हिंसा	= न हिंसाहै	न दीनता	= न दीनताहै
न कारुण्यम्	= नदयालुता है	न आश्चर्यम्	= न आश्चर्यहै
		न क्षोभः	= न क्षोभ है

भावार्थ ॥

जो वासनारहित पुरुषों के साथ न द्रोह करता है और न दीन के साथ करुणा करता है और न शारीरिक सुख के लिये किसी के आगे हाथ बढ़ाता है और न कभी आश्चर्य्य को प्राप्त होता है और न कभी क्षोभ को प्राप्त होता है वही पुरुष जीवन्मुक्त है ॥ १६ ॥

मूलम् ॥

नमुक्तोविषयद्वेष्टा नवाविषयलोलुपः ॥ असंसक्तमनानित्यंप्राप्ताप्राप्तमुपाश्नुते १७ ॥

पदच्छेदः ॥

न मुक्तः विषयद्वेष्टा न वा विषयलोलुपः असंसक्तमनाः नित्यम् प्राप्ताप्राप्तम् उपाश्नुते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्तः	जीवन्मुक्त	वा	और
न विषयद्वेष्टा	न विषय में द्वेष करने वाला है	न विषयलोलुपः	न विषयों में लोभी है
		नित्यम्	सदा

असंसक्त मनाः =	आसक्तिरहितमनवालाहोताहुआ	प्राप्ताप्राप्तम् =	प्राप्तऔर अप्राप्त वस्तु को
		उपाश्नुते=भोगता है	

भावार्थ ॥

जो विषयों के साथ द्वेष नहीं करता है और जो विषय लोलुप नहीं है किन्तु असंसक्त मनवाला है अर्थात् जिसका मन कहीं आसक्त नहीं है प्रारब्ध-वश से जो प्राप्त होता है उस को भोगता है जो नहीं प्राप्त होता उसकी इच्छा नहीं करता है वही जीवन्मुक्त कहाजाता है ॥ १७ ॥

मूलम् ॥

समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः ॥ शून्यचित्तोनजानाति कैवल्यमिवसंस्थितः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः शून्यचित्तः न जानाति कैवल्यम् इव संस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
शून्यचित्तः	बाहरसेशून्य चित्तवाला ज्ञानी	न	नहीं
समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः	समाधान और असमाधान हित और अहितकी कल्पनाको	जानाति	जानता है
		परन्तु	परन्तु
		कैवल्यम्	मोक्षरूप
		इव	सा
		संस्थितः	स्थितहै

भावार्थ ॥

जो समाधानता और असमाधानता को यानी हित अहित की कल्पना को नहीं जानता है ऐसा शून्य-चित्तवाला जो विदेह कैवल्य को प्राप्त हुआ है वही जीवन्मुक्त है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

निर्ममोनिरहङ्कारो नकिञ्चिदिति निश्चितः ॥ अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन्नपिनालिप्यते ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्ममः निरहंकारः न किंचित् इति निश्चितः अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन् अपि न लिप्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अन्तर्गलितसर्वाशः	अभ्यन्तर गलित होगई हैं सब आशाजिसकी ऐसा पुरुष	नकिञ्चित्	कुछभी नहीं है
निर्ममः	ममतारहितहै	इति	ऐसा
निरहंकारः	अहंकाररहितहै	निश्चितः	निश्चयकरताहुआभी
		कुर्वन्	कर्म करता हुआ भी
		नलिप्यते	लिपायमान नहीं होता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जो विद्वान् अहंमम अभिमान से शून्य है अर्थात् यह मैंहूं और यह मेरा है इस प्रकार के अभिमानसे भी जो रहितहै

और अधिष्ठान चेतन से अतिरिक्त किञ्चित् भी सत्य नहीं है ऐसे निश्चयवाला जो पुरुष है वह सर्व्व व्यवहारों को करताहुआ भी कुछ नहीं करताहै क्योंकि उसको कर्तृत्व अभिमान नहीं है ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः ॥ दशांकामपिसंप्राप्तो भवेद्गलितमानसः ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः दशाम् काम् अपि संप्राप्तः भवेत् गलितमानसः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
गलित मानसः	गलितहुआहै मन जिसका ऐसा ज्ञानी
मनःप्रकाश संमोह स्वप्न जाड्य विवर्जितः	मनके प्रकाश से चित्तकी भ्रान्तिसे स्वप्न और जड़ता याने सुषुप्ति से वर्जित होता हुआ

काम् = अनिर्वचनीय | संप्राप्तः = प्राप्त
दशाम् = दशा को | भवेत् = होता है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! गलित होगई है अन्तःकरण की वृत्ति जिसकी अर्थात् जिस विद्वान् के मनके सङ्कल्प विकल्पादिक नहीं फुरते हैं और दूर होगया है स्त्री पुत्रादिकों में मोह जिसका अन्तरात्मा की तरफ़है चित्त का प्रवाह जिसका और जो जड़ता से रहित है अपने आत्मानन्दमें ही सदैवकाल स्थित है वही जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ २० ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायां सप्तदशकम्प्रकरणं समाप्तम् ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

यस्यबोधोदयेतावत्स्वप्नवद्भवति भ्रमः ॥ तस्मैसुखैकरूपायनमःशांतायतेजसे १ ॥

पदच्छेदः ॥

यस्य बोधोदये तावत् स्वप्नवत् भवति भ्रमः तस्मै सुखैकरूपाय नमः शान्ताय तेजसे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यस्यबोधोदये	जिसके बोधके उदयहोनेपर	तस्मै	उस
तावत्	पहले	सुखैकरूपाय	आनन्दरूप
भ्रमः	भ्रान्ति	शान्ताय	शान्तरूप
स्वप्नवत्	स्वप्नके समान	च	और
भवति	होतीहै	तेजसे	तेजोमयरूपको
		नमः	नमस्कारहै

भावार्थ ॥

अब अठारहवें प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं ॥ इस प्रकरण में शान्ति की प्रधानता को दिखलातेहुये प्रथम शान्तरूप परमात्मा को नमस्कार करते हैं ॥ जो आत्मा शान्तरूप है जिसमें सङ्कल्प विकल्प नहीं

उत्पन्न होते हैं और जो सुख और प्रकाशस्वरूप है जिस के स्वरूप के ज्ञान होते ही जगद्भ्रम स्वप्नकी तरह मिथ्या प्रतीत होने लगता है उस आत्मा को नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

अर्ज्जयित्वाखिलानर्थान् भोगाना प्नोतिपुष्कलान् ॥ नहिसर्वपरित्याग मन्तरेणसुखी भवेत् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

अर्जयित्वा अखिलान् अर्थान् भोगान् आप्नोति पुष्कलान् न हि सर्वपरित्यागम् अन्तरेण सुखी भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अखिलान्	संपूर्ण	भोगान्	भोगोंको
अर्थान्	धनोंको	+पुरुषः	पुरुष
अर्जयित्वा	जोड़करके	हि	अवश्य
पुष्कलान्	सब	आप्नोति	प्राप्तहोताहै

परन्तु=परन्तु	अन्तरेण=विना
सर्वपरित्यागम् = सबके परित्यागके	सुखी=सुखी
	नभवेत्=नहीं होताहै

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ धनीलोक भी तो संसार में सुखी दिखाई पड़ते हैं उन में और ज्ञानी में क्या भेद रहा॥उत्तर ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! धनीलोक स्त्री पुत्र धनादिक अर्थों को संग्रह करके उनको भोगते हैं और उनके नाश होनेपर अत्यन्त दुःखी होते हैं ॥ देखो ॥ पृथिवींधनपूर्णांचेदिमांसागरमेखलाम् ॥ प्राप्नोतिपुनरप्येष स्वर्गमिच्छतिनित्यशः ॥ १ ॥ यदि समुद्रपर्य्यन्त धनकरके पूर्ण यह पृथिवी पुरुष को मिल भी जावै तौभी वह स्वर्ग की नित्य ही इच्छा करता है ॥ १ ॥ संसार में धनवान् ही प्रायः करके रोगी दिखाते हैं किसी धनी को क्षुधाका किसी को प्रमेह वग़ैरह का रोग बनाही रहता है धनियों की परस्पर स्पर्धा बहुत रहती है उनको राजा और चोरों से भय नित्यही बना रहता है चोरों के भय से रात्री को नींद नहीं आती है धनके संग्रह करने में और धनकी रक्षाकरने में उनको बड़ा क्लेश होता है

संसारमें जितना दुःख धनियों को है उतना दुःख ग़रीबोंको नहीं है धनकरके जो विषयभोगादिकों से सुख है वह सुखनाशी है तुच्छ है इसवास्ते संपूर्ण धनादिक विषयभोगों के त्यागे विना सुखरूपी आत्माकी प्राप्ति कदापि नहीं होती है ॥ जैसे बंध्याके पुत्रको असत् जानलेनाही उसका त्याग है विना असत् जानने के उसका त्याग बनता नहीं है क्योंकि जो वस्तु तीनों कालमें हैही नहीं उसका त्याग कैसे कियाजावै इसलिये उसका मिथ्याजाननाही त्याग है इसी तरह संकल्प विकल्परूपी जितना जगत् है उसको असत् जानलेनाही उसका त्याग है इसी वार्ताको अब दिखलाते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कर्तव्यदुःखमार्तण्डज्वालादग्धान्तरात्मनः ॥ कुतःप्रशमपीयूषधारासारमृतेसुखम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

कर्तव्यदुःखमार्तण्डज्वालादग्धान्तरा-

त्मनः कुतः प्रशमपीयूषधारासारम् ऋते सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्तव्य दुःख मार्तण्ड ज्वाला-दग्धान्तरा-त्मनः	कर्मजन्य दुःखरूपी सूर्य्यके ज्वालासे भस्म हुआहै मन जिसका ऐसेपुरुषको	प्रशम पीयूष धारा सारम्	शान्तिरूपी अमृत की धारा की वृष्टि
		ऋते	विना
		सुखम्	सुख
		कुतः	कहां है

भावार्थ ॥

कर्तव्यरूपी जितने कर्म हैं उनसे जन्य जो दुःखहैं वही एक सूर्य्य की तप्तरूपी अग्नि है तिस अग्नि करके जिसका मन दग्ध होरहा है उसको शांतिरूपी अमृतजल के विना कदापि सुखकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

भवोयंभावनामात्रो न किञ्चित्परमा

र्थतः ॥ नास्त्यभावःस्वभावानां भावा भावविभाविनाम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

भवः अयम् भावनामात्रः न किञ्चित् परमार्थतः न अस्ति अभावः स्वभावानाम् भावाभावविभाविनाम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अयम्	यह	हि	क्योंकि
भवः	संसार	भावाभावविभाविनाम्	भावरूप और अभावरूप पदार्थों में स्थित हुये
भावनामात्रः	भावनामात्र है यानेसंकल्पमात्र है	स्वभावानाम्	स्वभावों का
परमार्थतः	परमार्थ से	अभावः	अभाव
किंचित्	कुछ	न अस्ति	नहीं होता है
न	नहीं है		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! यह जगत् संकल्पमात्र है ॥ परमार्थदृष्टि से तो आत्मासे अतिरिक्त

कोई भी वस्तु भावरूप याने सत्यरूप नहीं है आत्मा ही सत्यरूप है और संपूर्ण प्रपंच अभावरूप है याने असत्यरूप है॥ प्रश्न॥ अभावरूप प्रपंच भी कालादिकोंके वशसे भाव स्वभाववाला होजावैगा॥ उत्तर॥ भावरूप और अभावरूपमें स्थित स्वभावों का अभाव रूप कदापि नहीं होसक्ता है अर्थात् भाव पदार्थ का अभाव कदापि नहीं होता है और अभाव पदार्थ का भाव कदापि नहीं होता है जैसे मनोराजके और स्वप्नके पदार्थों का कदापि भाव नहीं होता है तैसे प्रपंच के पदार्थों का भी कदापि भाव नहीं होता है जैसे मनोराज स्वप्नके पदार्थ सब संकल्पमात्र हैं तैसे जाग्रत् के पदार्थ भी सब संकल्पमात्रहैं संकल्पके दूर होने से संसाररूपी तापभी दूर होजाता है संकल्पों का नाशही मोक्षका हेतु है॥ ४॥

मूलम्॥

नदूरंनचसंकोचाल्लब्धमेवात्मनः पदम्॥ निर्विकल्पंनिरायासं निर्विकारं निरञ्जनम्॥ ५॥

पदच्छेदः॥

न दूरम् न च संकोचात् लब्धम्

एव आत्मनः पदम् निर्विकल्पम् निरा-
यासम् निर्विकारम् निरञ्जनम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मनः	= आत्माका	निर्विकल्पम्	= संकल्प रहित है
पदम्	= स्वरूप	निरायासम्	= प्रयत्न रहितहै
दूरम्	= दूर	निर्विकारम्	= विकार रहित है
न	= नहीं है	निरञ्जनम्	= दुःख रहितहै
च	= और		
संकोचात् लब्धम् न	= संकोच से प्राप्त नहीं है याने परिच्छिन्ननहींहै		

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ संकल्पके दूरकरनेमात्र से कैसे आत्मारूपी अमृतकी प्राप्ति होतीहै ॥उत्तर॥ आत्मा किसीको दूर नहीं है और आत्मा परिच्छिन्नभी नहीं है क्योंकि सर्वत्र व्यापक है इसी वास्ते आत्मा नित्यही प्राप्त है मनके संकल्पके वश से अज्ञानीपुरुष आत्माको अप्राप्तकी नाईं मानते हैं ॥ जैसे किसी पुरुष के कंठमें स्वर्णका भूषण पड़ा है तथापि उसको भ्रमके वश से

ऐसा ज्ञान होता है कि मेरा भूषण कहीं खोगया है यदि वह भूषण उसको प्राप्त भी है परंतु भ्रम करके अप्राप्तकी तरह प्रतीत होता है ॥ तैसेही यह आत्मा सर्व पुरुषों को नित्य प्राप्तभी है पर अपने स्वरूप के अज्ञान होनेसे संकल्पों के वश से अप्राप्तकी तरह होरहा है॥ आत्मा विकल्पों से अतीत है याने मनके विकल्पों के अभाव होजाने से जानाजाताहै विकारोंसे भी रहित है और उपाधियों से शून्य है वह सदैव काल एकरस है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः ॥ वीतशोकाविराजन्ते निरावरणदृष्टयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः वीतशोकाः विराजन्ते निरावरणदृष्टयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
व्यामोह मात्र विरतौ	= विशेषमोह के निवृत्त होनेपर	वीतशोकाः	= शोकसे रहित
		निरावरण दृष्टयः	= आवरणरहित दृष्टिवाले या-ने ज्ञानीपुरुष
स्वरूपादान मात्रतः	= अपने स्व-रूपकेग्रहण-मात्रसे ही	विराजन्ते	= शोभाय-मानहोते हैं

भावार्थ ॥

प्रश्न॥ जब आत्मा नित्यही प्राप्त है तब फिर शास्त्रके विचार की और आचार्य के उपदेश की क्या ज़रूरत है ॥ उत्तर ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक! अज्ञान-रूपी मोहका आवरण सबके अन्तःकरण में होरहा है उस आवरण करके आत्माका साक्षात्कार किसी को नहीं होता है उस आवरण के दूर करने के लिये गुरु शास्त्रकी ज़रूरत है ॥ जैसे दश पुरुष एक नदी के पार उतर कर कहा कि सबको गिनती करलो कोई नदी में तो बह नहीं गया है उनमें से एक पुरुष जब गि-नती करने लगा तब उसने अपने को छोड़कर औरें

को गिना तब नव आदमी गिनती में आये उसने कहा दशवां पुरुष नदी में बह गया है फिर दूसरे ने गिना तब उसने भी अपने को छोड़करके ही गिना तब भी नवही पुरुष पाया इसी तरह हर एक ने अपने को छोड़करके गिना और एक कम पाया तब उन सबको निश्चय होगया कि दशवां पुरुष नदी में बहगया तो फिर वे सब मिलकर रोने लगे उधर से एक बुद्धिमान् पुरुष आया उसने उनको रोते देखकर पूछा तुम क्यों रोतेहो उन्होंने कहा हम दश आदमी नदी से पार उतरे उन में से एक आदमी नदीमें बह गया है उनकी वार्ता को सुनकर उस आदमीने जब उनको गिना तब वे दश पूरेथे उसने जाना यह सब मूर्ख हैं तब उनसे कहा हमारे सामने तुम फिर गिनो उसके सामने जब एक उनमें से गिनने लगा तब उसने अपने को न गिना और कहा केवल नव हैं तब उसने कहा दशवां तू है तब उसको ज्ञान हुआ कि हम सब पूरे हैं कोई भी बहा नहीं (दार्ष्टान्त) अज्ञान के वश होकर जो अपने आत्माको तीर्थोंमें और पर्वतों में खोजता फिरता है वह दशवां पुरुष की तरह अपने को नहीं जानताहै जब गुरु उसको उपदेश देता है तब वह जानता है कि सुखरूप आत्मा

मैंही हूं इसलिये गुरु शास्त्रकी भी ज़रूरत है तात्पर्य यह है कि जिसने गुरु शास्त्रके उपदेशको श्रवण करके अपने स्वरूप का निश्चय करलिया है उसके अन्तःकरणमें फिर मोहरूपी आवरण कदापि नहीं रहता है वह संसार में शोभा को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

समस्तङ्कल्पनामात्रमात्मामुक्तः सनातनः ॥ इतिविज्ञायधीरोहि किमभ्यस्यतिबालवत् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

समस्तम् कल्पनामात्रम् आत्मा मुक्तः सनातनः इति विज्ञाय धीरः हि किम् अभ्यस्यति बालवत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
समस्तम्	सबजगत्	मुक्तः	मुक्त है
कल्पनामात्रम्	कल्पनामात्र है	च	और
आत्मा	आत्मा	सनातनः	सनातन है
		इति	ऐसा

विज्ञाय = जानकरके	किम् = क्या
धीरः = पंडित	अभ्यस्यति=अभ्यास
बालवत् = बालकोंकी नाईं	करताहै

भावार्थ ॥

संपूर्णजगत् मनकी कल्पनामात्रहै ॥ शुद्धोमुक्तः सदैवात्मा नवैबध्येतकर्हिचित् ॥ बंधमोक्षौमनस्संस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यति ॥ १ ॥ आत्मा शुद्धहै नित्य-मुक्त है कदापि वह बंधायमान नहीं है बंध और मोक्ष मनमें स्थित हैं उस मनके शान्तहोने से बंध और मोक्ष भी शांत होजाते हैं ॥ १ ॥ आत्मा नित्यमुक्त है सनातन है ऐसे निश्चय करके विद्वान् ज्ञानी बालक की नाईं चेष्टा करता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

आत्माब्रह्मेतिनिश्चित्य भावाभावौ चकल्पितौ ॥ निष्कामःकिंविजानाति किंब्रूतेचकरोतिकिम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा ब्रह्म इति निश्चित्य भावा-

**भावौ च कल्पितौ निष्कामः किम् विजा-
नाति किम् ब्रूते च करोति किम्॥**

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा	= जीवात्मा	निष्कामः	=कामनारहितपुरुप
ब्रह्म	= ब्रह्म है	किम्	= क्या
च	= और	विजानाति	= जानताहै
भावाभावौ	=भाव और अभाव	किम्	= क्या
कल्पितौ	= कल्पितहैं	ब्रूते	= कहता है
इति	= ऐसा	च	= और
निश्चित्य	= निश्चयकरके	किम्	= क्या
		करोति	= करता है

भावार्थ॥

त्वंपदका अर्थ जो जीवात्मा है और तत्पदका अर्थ जो ब्रह्म है दोनों के अभेद को निश्चय करके भाव और अभाव याने भाव जो घटादि पदार्थ हैं और तिनका जो अभाव है ये दोनों अधिष्ठानचेतन में कल्पित हैं इस प्रकार सारे जगत् को तुच्छ जानकर जिस विद्वान् की अविद्या नष्ट होगई है वह किसके

जानने की और कथन करने की इच्छा करता है किंतु किसी की भी नहीं करता है और न वह किसी काम को करता है क्योंकि उस में कर्तृत्वाभिमान रहा नहीं है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

अयंसोऽहमयंनाहमितित्तीणाविकल्पनाः ॥ सर्वमात्मेति निश्चित्यतूष्णीभूतस्ययोगिनः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ॥

अयम् सः अहम् अयम् न अहम् इति क्षीणाः विकल्पनाः सर्वम् आत्मा इति निश्चित्य तूष्णीभूतस्य योगिनः

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वम्	= सब	तूष्णीभूतस्य	=चुपचाप हुये
आत्मा	= आत्मा है	योगिनः	= योगी की
इति	= ऐसा	इति	= ऐसी
निश्चित्य	= निश्चय करके	विकल्पनाः	=कल्पना कि

अयम् = यह	अहम् = मैं
सः = वह	न = नहीं हूं
अहम् = मैं हूं	क्षीणाः = क्षीण होजा-
अयम् = यह	ती हैं

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् ने ऐसा निश्चय किया है कि सर्व-रूप आत्माही है वह बाह्य शरीरादिकों के व्यापारसे रहित होजाता है और वही जीवन्मुक्त भी कहाजाताहै ॥ सो कहा भी है ॥ वृत्तिहीनंमनःकृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥ एकीकृत्यविमुच्येत योगोऽयंमुख्यउच्यते ॥ १ ॥ क्षेत्रज्ञ याने जीवात्मा और परमात्मा में जो ध्येयाकारवृत्ति हुईथी उस वृत्ति के नाश होनेपर दोनों की एकता को निश्चय करके ही पुरुष मुक्त होजाताहै याने जिस कालमें मन नानाप्रकार की कल्पना से रहित होजाता है उसी कालमें वह मुक्त कहा जाता है ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

नविक्षेपोनचैकाग्र्यंनातिबोधो न मूढता ॥ नसुखंनचवा दुःखमुपशान्तस्ययोगिनः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

न विक्षेपः न च एकाग्र्यम् न अति-बोधः न मूढता न सुखम् न च वा दुःख-म् उपशान्तस्य योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
उपशान्तस्य	शान्तहुये	नअतिबोधः	नबोध है
योगिनः	योगीको	नमूढता	नमूर्खता है
नविक्षेपः	नविक्षेपहै	नसुखम्	नसुखहै
च	और	वा	और
नएकाग्र्यम्	नएकाग्रताहै	नदुःखम्	नदुःख है

भावार्थ ॥

अब संकल्पसे रहित मनके स्वरूप को दिखाते हैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जिसका मन संकल्प विकल्प से रहित होगया है उसको न विक्षेप होता है और न वह एकाग्रता के लिये उद्यम करता है क्योंकि जिसको विक्षेप होता है वही निरोध के लिये यत्न करता है उसको पदार्थों का अत्यन्त ज्ञान या मूढ़ता नहीं होती है और न उसको विषय-

जन्य सुख या दुःख होता है क्योंकि वह केवल आत्मानन्दमें मग्न है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

स्वराज्येभैक्ष्यवृत्तौच लाभालाभे जनेवने ॥ निर्विकल्पस्वभावस्य नवि शेषोऽस्तियोगिनः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

स्वराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ च लाभालाभे जने वने निर्विकल्पस्वभावस्य न विशेषः अस्ति योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वराज्ये	= राज्यमें	जने	= मनुष्यों के समूहविषे
भैक्ष्यवृत्तौ	= भिक्षावृत्ति में	वा	= या
लाभालाभे	= लाभ और अलाभ में	वने	= वनविषे

निर्विकल्पस्वभावस्य	= विकल्परहित स्वभाव वाले	योगिनः = योगीको विशेषः = कोईविशेषता न अस्ति = नहींहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त को स्वर्ग के राज्य मिलने पर भी न उसको हर्ष होता है और भिक्षावृत्ति में न उसको विक्षेप होता है और पदार्थ का लाभ और अलाभ दोनों उसको बराबर हैं वनमें रहै वा घरमें रहै वह एकरस रहता है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

क्वधर्मःक्वचवाकामः क्वचार्थःक्वविवेकता ॥ इदंकृतमिदंनेतिद्वन्द्वैर्मुक्तस्ययोगिनः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः

क्व धर्मः क्व च वा कामः क्व च अर्थः क्व विवेकता इदम् कृतम् इदम् न इति द्वन्द्वैः मुक्तस्य योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	= यह	क्व	= कहां है
कृतम्	= कियागयाहै	वा	= और
इदम्	= यह	कामः	= काम
नकृतम्	= नहींकिया गया है	क्व	= कहां है
		च	= और
इति	= इसप्रकार	अर्थः	= अर्थ
द्वन्द्वैः	= द्वन्द्वसे	क्व	= कहां है
मुक्तस्य	= छूटेहुये	च	= और
योगिनः	= योगी को	विवेकता	= विचार
धर्मः	= धर्म	क्व	= कहां है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं स्थिरचित्तवाले योगी को धर्म काम और अर्थ के साथ कुछ प्रयोजन नहीं रहता है और इस कामको मैंने करलियाहै या इसको मैं करूंगा इस प्रकार के द्वन्द्वों से जो रहित है वही जीवन्मुक्त योगी है ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

कृत्यंकिमपिनएव नकापिहृदिरं

जना ॥ यथाजीवनमेवेह जीवन्मुक्त
स्ययोगिनः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

कृत्यम् किम् अपि न एव न का अपि हृदि रंजना यथा जीवनम् एव इह जीवन्मुक्तस्य योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
जीवन्मुक्तस्य	= जीवन्मुक्त
योगिनः	= योगीको
कृत्यम्	= कर्तव्य कर्म
किम्अपिनएव	= कुछ भी नहीं है
च	= और
न	= न
हृदि	= मन में
काअपि	= कोई

अन्वयः	शब्दार्थ
रंजनाअपि	= अनुराग-ही है
इह	= इससंसार में
यथा	= जैसे
जीवनम्	= जीवनहै
एव	= वैसाही है याने उसका भोगकर्मानुसार है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ जब जीवन्मुक्त कोई क्रिया नहीं करैगा तब उसके शरीरका निर्वाह कैसे होगा ॥ उ० ॥ जीवन्मुक्त पुरुषकी कोई क्रिया अपने संकल्पसे नहीं होती है और न कुछ उसको करने योग्य कर्म बाकी रहा है क्योंकि उसको किसी पदार्थ में रागनहीं है और रागसे विना कोई कृत्य कर्म है नहीं और रागद्वेष का हेतु जो अविद्या है वह उसकी नष्टहोगई है उसके शरीर की यात्रा प्रारब्धवश से होती है ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

क्कमोहःक्कचवाविश्वं क्कतद्ध्यानं क्कमुक्तता ॥ सर्वसंकल्पसीमायां विश्रान्तस्यमहात्मनः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः

क्क मोहः क्क च वा विश्वम् क्क तत् ध्यानम् क्क मुक्तता सर्वसंकल्पसीमायाम् विश्रान्तस्य महात्मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वसंकल्प सीमायाम् =	संपूर्ण संकल्पों कीसीमा में याने आत्म ज्ञानविषे
विश्रांतस्य =	विश्रान्त हुये
योगिनः =	योगी को
क्क =	कहां
मोहः =	मोहहै
च =	और
क्क =	कहां
विश्वम् =	संसारहै
क्क =	कहां
तत् =	वह
ध्यानम् =	ध्यानहै
वा =	और
क्क =	कहां
मुक्तता =	मुक्तिहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त के सब संकल्प नष्टहोजाते हैं इसी से उसको मोहभी किसी पदार्थ में नहीं रहता है इसी से उसकी दृष्टि में जगत् भी नहीं प्रतीत होता है और न वह ध्यानकी तथा मुक्तिकी इच्छा करता है ॥ क्योंकि उसके मनकी फुरना कोई भी बाकी नहीं रही है ॥ १४ ॥

मूलम् ॥

येनविश्वमिदंदृष्टंसनास्तीतिकरोतुवै ॥ निर्वासनःकिंकुरुतेपश्यन्नपि नपश्यति ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

येन विश्वम् इदम् दृष्टम् सः न अस्ति इति करोतु वै निर्वासनः किम् कुरुते पश्यन् अपि न पश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
येन	= जिसपुरुष करके	करोतु	= जानैकि
इदम्	= यह	तत	= वह याने विश्व
विश्वम्	= विश्वघट पटआदि	न	= नहीं
दृष्टम्	= देखागयाहै	अस्ति	= है
सः	= वह	वै	= निश्चय करके
इति	= ऐसा	निर्वासनः	= वासनारहितपुरुष

किंकुरुते = { क्याकरताहैयाने कुछभी नहींकरताहै	पश्यन् = देखताहुआ
सः = वह	अपि = भी
	नपश्यति = नहींदेखताहै

भावार्थ ॥

जिसने इस विश्वको याने जगत् को देखा है वह यह नहीं कहसक्ता है कि जगत् है नहीं क्योंकि उस को जगत् होने और न होने की वासना बनी है और जो निर्वासनिक पुरुष है वह जगत् को देखता हुआ भी नहीं देखता है क्योंकि वह सुषुप्तियुक्त पुरुष की तरह मनके संकल्प और विकल्प से राहित है॥ १५॥

मूलम् ॥

येन दृष्टं परंब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति चिन्तयेत् ॥ किंचिन्तयतिनिश्चिन्तो द्वितीयं यो नपश्यति॥ १६॥

पदच्छेदः ॥

येन दृष्टम् परम् ब्रह्म सः अहम्

ब्रह्म इति चिन्तयेत् किम् चिन्तयति
निश्चिन्तः द्वितीयम् यः न पश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
येन	=जिस पुरुष करके	यः	=जो पुरुष
परम्	=श्रेष्ठ	निश्चिन्तः	=निश्चिन्त हुआ
ब्रह्म	=ब्रह्म	द्वितीयम्	=दूसरे को
दृष्टम्	=देखागयाहै	न पश्यति	=नहींदेखता है
सःअहम्	=सो मैं ब्रह्महूं	सः	=वह
इति	=ऐसा	किंचिन्तयति	=क्या चिंता करैगा
चिन्तयेत्	=विचारकरै		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं जिस पुरुष ने सब से अलग ब्रह्मको देखाहै उसीको ऐसा अनुभवहै "अहं ब्रह्म" मैं ब्रह्महूं ॥ उसीको साराजगत् ब्रह्मरूप दिखाई देता है और वह सर्वचिंता से रहित हुआ २ कुछ भी चिंतन नहीं करता है और जो ब्रह्मका चिंतन है कि मैं ब्रह्महूं उसको भी वह अभ्यास नहीं करता है ॥ १६ ॥

मूलम्॥

दृष्टोयेनात्मविक्षेपो निरोधं कुरुतेत्वसौ॥ उदारस्तु न विक्षिप्तः साध्याभावात्करोतिकिम्॥ १७॥

पदच्छेदः॥

दृष्टः येन आत्मविक्षेपः निरोधम् कुरुते तु असौ उदारः तु न विक्षिप्तः साध्याभावात् करोति किम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
येन	जिस पुरुष करके	करोति	करता है
आत्मविक्षेपः	आत्मा विषे विक्षेप	तु	परन्तु
दृष्टः	देखागयाहै	उदारः	ज्ञानीपुरुष
असौ	वह पुरुष	तु	तो
निरोधम्	चित्तकेनिरोधको	नविक्षिप्तः	विक्षेपरहित है.
		अतःएव	इसलिये

साध्याभावात् = साध्य के अभावहोने के कारण	किम्=क्या
सः=वह	करोति = करैगा याने कुछ भी न करैगा

भावार्थ ॥

जिस पुरुषने अपने में विक्षेपों को देखा है वही विक्षेपोंके दूरकरने के लिये चित्तके निरोधकी चिंता को करता है जिसको विक्षेप कोई नहीं रहा है वह विक्षेपके दूरकरने के लिये चित्तका निरोध भी नहीं करता है ॥ १७ ॥

मूलम् ॥

धीरोलोकविपर्य्यस्तोवर्त्तमानोऽपि लोकवत् ॥ नसमाधिंनविक्षेपंनलेपं स्वस्यपश्यति ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

धीरः लोकविपर्य्यस्तः वर्तमानः अपि लोकवत् न समाधिम् न विक्षेपम् न लेपम् स्वस्य पश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धीरः	=ज्ञानीपुरुष	न	=न
लोकविपर्य्यस्तः	=लोक विषे विक्षेपरहित हुआ	स्वस्य	=अपने
च	=और	समाधिम्	=समाधिको
लोकवत्	=लोककीतरह	न	=न
वर्त्तमानः अपि	=वर्त्तता हुआ भी	विक्षेपम्	=विक्षेपको
		च	=और
		न	=न
		लेपम्	=बंधनको
		पश्यति	=देखता है

भावार्थ ॥

जो विद्वान् है वह लोकों में विक्षेप से रहित होकर प्रारब्धवशात् लोकों में रहकरके बाधिता अनुवृत्ति करके व्यवहारको करताहुआ भी अपने आत्मामें निर्लेप स्थित है क्योंकि न वह समाधि करता है और न विक्षेप को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

भावाभावविहीनो यस्तृप्तोनिर्वास

नोबुधः ॥ नैवकिञ्चित्कृतंतेनंलोक दृष्ट्याविकुर्वता ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

भावाभावविहीनः यः तृप्तः निर्वासनः बुधः न एव किञ्चित् कृतम् तेन लोकदृष्ट्या विकुर्वता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	जो	लोकदृष्ट्या	लोकदृष्टि में
तृप्तः	तृप्त हुआ	तेन	उस
बुधः	ज्ञानी	कुर्वता	किये हुये करके
भावाभावविहीनः	भाव और अभाव से रहित है	किञ्चित् एव	कुछ भी
च	और	नकृतम्	नहीं किया गया है
निर्वासनः	वासनारहित है		

भावार्थ ॥

जो विद्वान् अपने आत्मानंद करकेही तृप्त है वह

स्तुति और निंदाआदिकों से रहित है क्योंकि वह लोकदृष्टि से कर्त्ता हुआ भी अकर्त्ता है आत्म-ज्ञान करके उसके कर्तृत्वादि अध्यास सब नाश होगये हैं ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

प्रवृत्तौवानिवृत्तौवा नैवधीरस्यदुर्ग्रहः ॥ यदायत्कर्तुमायाति तत्कृत्वातिष्ठितःसुखम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा न एव धीरस्य दुर्ग्रहः यदा यत् कर्त्तुम् आयाति तत् कृत्वा तिष्ठतः सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब कभी	तत्	= उसको
यत्	= जो कुछ कर्म	सुखम्	= सुखपूर्वक
कर्त्तुम्	= करने को	कृत्वा	= करके
आयाति	= आपड़ताहै	तिष्ठतः	= समाधिस्थ

धीरस्य = ज्ञानीपुरुषको | निवृत्तौ = निवृत्ति में
प्रवृत्तौ = प्रवृत्ति में | दुर्ग्रहः = दुराग्रह
वा = अथवा | नएव = कभीनहींहै

भावार्थ ॥

विद्वान्को प्रवृत्ति में और निवृत्तिमें कोई आग्रह याने हठ नहीं है क्योंकि वह कर्तृत्वादि अभिमान से रहित है यदि प्रारब्धके वशसे विद्वान्को प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति करने को पड़जावै तब वह सुखपूर्वक उनको करता है और असंग भी बनारहता है क्योंकि उसको कर्तृत्वादिकों का अभिमान नहीं है ॥ २० ॥

मूलम् ॥

निर्वासनोनिरालम्बःस्वच्छन्दोमुक्तबन्धनः ॥ क्षिप्तःसंसारवातेनचेष्टतेशुष्कपर्णवत् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्वासनः निरालम्बः स्वच्छन्दः मुक्तबन्धनः क्षिप्तः संसारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
निर्वासनः	=वासनारहित
निरालम्बः	=आलम्बरहित
स्वच्छन्दः	=स्वेच्छाचारी
मुक्तबन्धनः	=बन्धनरहित
ज्ञानिनः	=ज्ञानी

अन्वयः	शब्दार्थ
संसारवातन	=प्रारब्धरूपी पवन करके
क्षिप्तः	=प्रेराहुआ
शुष्कपर्णवत्	=सूखे पत्ते की तरह
चेष्टते	=चेष्टा करता है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि ज्ञानी निर्वासन है तब वह किस करके प्रेराहुआ कर्मोंको करताहै ॥ उत्तर ॥ ज्ञानी जिस हेतु करके निर्वासन है उसी हेतु करके वह निरालम्ब भी है अर्थात् कर्तव्यताका जो अनुसंधान याने चिंतन है उससे वह रहित है और स्वच्छन्द भी है याने वह राग द्वेषादिकों के आधीन नहीं है और बंधका हेतु जो अज्ञान है उससे रहित है जैसे सूखा पत्ता वायुकरके प्रेराहुआ इधर उधर डोलता है तैसेही ज्ञानी प्रारब्धरूपी वायुकरके चलायाहुआ इधर उधर फिरता है ॥ २१ ॥

मूलम्॥

असंसारस्यतुक्कापिनहर्षोन विषाद तां॥ सशीतलमनानित्यंविदेहइव राजते २२॥

पदच्छेदः॥

असंसारस्य तु क्क अपि न हर्षः न विषादता सः शीतलमनाः नित्यम् विदेहः इव राजते॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
असंसारस्य	ज्ञानीको	सः	वह
न	न	शीतल मनाः	शान्त मन वाला
तु	तो	नित्यम्	सदा
क्क अपि	कभी	विदेहःइव	मुक्तकीतरह
हर्षः	हर्ष है	राजते	शोभायमान रहता है
च	और		
न	न		
विषादता	शोक है		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! ज्ञानी संसारसे रहित है संसारका हेतु याने कारण अज्ञान जिसमें न रहे उसीका नाम असंसारी है और हर्ष विषादादि भी उसमें नहीं उत्पन्न होते हैं इसी से वह शीतलहृदय है और विदेहमुक्त की तरह वह रहता है॥ २२ ॥

मूलम् ॥

कुत्रापिनजिहासाऽस्ति आशावाऽपिनकुत्रचित ॥ आत्मारामस्यधीरस्य शीतलाच्छतरात्मनः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ॥

कुत्र अपि न जिहासा अस्ति आशा वा अपि न कुत्रचित् आत्मारामस्य धीरस्य शीतलाच्छतरात्मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मारामस्य	= आत्मामें रमण करनेवाले	शीतलाच्छतरात्मनः	= शीतल और अति निर्मल चित्तवाले

धीरस्य = ज्ञानीको	वा अपि = और
न = न	न = न
कुत्रअपि = कहीं	कुत्रचित् = कहीं
जिहासा = त्यागकी इच्छा	आशा = ग्रहणकी इच्छा
अस्ति = है	अस्ति = है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! अपने आत्मामेंही जो नित्य रमण करनेवाला है उसका चित्तभी स्थिर रहता है उसकी इच्छा किसी पदार्थ के ग्रहण और त्याग विषे नहीं रहती है ॥ और न वह अनर्थ को करता है क्योंकि अनर्थ का हेतु उसमें बाक़ी नहीं रहा है ॥ २३ ॥

मूलम् ॥

प्रकृत्याशून्यचित्तस्य कुर्वतोऽस्य यदृच्छया ॥ प्राकृतस्येवधीरस्य नमानोनावमानता ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तस्य कुर्वतः अस्य यदृच्छया प्राकृतस्य इव धीरस्य न मानः न अवमानता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रकृत्या	= स्वभावसे	धीरस्य	= ज्ञानी को
यदृच्छया	= प्रारब्धवशकरके	न	= न
प्राकृतस्य	= अज्ञानीकी	मानः	= मान है
इव	= तरह	च	= और
कुर्वतः	= करता हुआ	न	= न
अस्य	= इस	अवमानता	= अपमान है
शून्यचित्तस्य	= विकाररहितचित्तवाले		

भावार्थ ॥

स्वभाव सेही जिसका चित्त शून्य है अर्थात् विकारसे रहित है कदापि विकारी नहीं होता है अपने आत्मामेंही जो शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है वह अज्ञानी की तरह प्रारब्धवश से चेष्टा

को करताहुआ भी हर्ष शोक को नहीं प्राप्त होता है और अपने मान अपमान का भी उसको अनुसंधान नहीं है॥ अब ज्ञानी के अनुभव को दिखाते हैं॥ २४॥

मूलम्॥

कृतंदेहेनकर्मेदं नमयाशुद्धरूपिणा॥ इतिचिन्तानुरोधी यः कुर्वन्नपिकरोतिन॥ २५॥

पदच्छेदः॥

कृतम् देहेन कर्म इदम् न मया शुद्धरूपिणा इति चिन्तानुरोधी यः कुर्वन् अपि करोति न॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	= यह	मया	= मुझ
कर्म	= कर्म	शुद्धरूपिणा	= शुद्धरूप करके
देहेन	= देहकरके		
कृतम्	= कियागया	न	= नहीं

इति = इसप्रकार	कुर्वन् = कर्म करता हुआ
यः = जो	अपि = भी
चिन्तानुरोधी = चिन्ताकरनेवाला है	न करोति = नहीं करता है
सः = वह	

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! ज्ञानी ऐसा मानता है कि यह कर्म देहने किया है शुद्धरूप आत्माने नहीं किया है ॥ इसी कारण वह कर्मोंको करता हुआ भी कुछ नहीं करता है ॥ प्रश्न ॥ अज्ञानीपुरुष व्यभिचार कर्मोंको करके ऐसा कहे कि यह सब कर्म देहने किया है तब उसकी भी मुक्ति होनी चाहिये॥ उत्तर॥अज्ञानी को कर्मोके फल में अध्यास बनारहताहै क्योंकि शुभकर्म करने से उसके चित्तमें हर्ष उत्पन्न होता है और अशुभकर्म करने से उसके चित्त में भय और लज्जा उत्पन्न होती है और व्यभिचारकर्म करने में छिपाकर प्रयत्न करता है इस वास्ते उसका निश्चय कच्चा है वह कदापि मुक्त नहीं होसक्ता है और ज्ञानवान् का व्यवहार उससे उलटा है शुभकर्म करने से उसके चित्तमें हर्ष नहीं होता है

और अशुभकर्म करने से उसके चित्तमें भय और लज्जा नहीं होती है और व्यभिचारकर्म करनेके लिये वह प्रयत्न नहीं करता है जिस पुरुष का स्त्री आदिकों में राग होता है और जो उसके संगसे आनन्द मानता है वही अज्ञानी व्यभिचारके लिये प्रयत्न करता है जिस पुरुषका कभी मिश्री खानेको नहीं मिली है और न उसके रसको जानता है वही गुड़ या रावके खाने के लिये यत्न करता है जिसको नित्यही मिश्री खानेको मिलती है वह कदापि गुड़के रसके लिये यत्न नहीं करता है जो नीमका कीट है या विष्ठाका कीड़ा है वह मिश्री के स्वादको नहीं जानता है अज्ञानीपुरुष विष्ठारूपी विषयानन्दका स्वादलेनेवाला है ज्ञानवान् आत्मानन्दरूपी मिश्री के स्वादका लेनेवाला है इसवास्ते अज्ञानी ज्ञानीके आनन्दको नहीं जान सक्ता है ॥ २५ ॥

मूलम् ॥

अतद्वादीवकुरुते नभवेदपिबालिशः ॥ जीवन्मुक्तःसुखीश्रीमान् संसरन्नपिशोभते ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ॥

अतद्वादी इव कुरुते न भवेत् अपि बालिशः जीवन्मुक्तः सुखी श्रीमान् संसरन् अपि शोभते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अतद्वादी इव =	उलटा याने बरखिलाफ उस कहने वाले की तरह कि	न भवेत् =	नहीं होवैहै याने मोह को नहीं प्राप्त होता है
अहंइदं कार्यं न करिष्यामि =	मैं इस कार्य को नहीं करूंगा	अतएव =	इसी लिये
जीवन्मुक्तः =	ज्ञानी	संसरन् =	व्यवहार को करताहुआ
कुरुते =	कार्य को करता है	सः =	वह
अपि =	तौभी	सुखी =	सुखी
बालिशः =	मूर्ख	श्रीमान् =	शोभायमान
		शोभते =	शोभाको प्राप्तहोताहै

भावार्थ ॥

मैं इस कार्य्य को करूंगा ऐसा न कहता हुआ जीवन्मुक्त प्रारब्धवश से कार्य्य को करता है पर बालक की तरह वह मूर्ख नहीं होजाता है संसारिक व्यवहारको करता हुआ भी वह प्रसन्न शान्तचित्त वाला शोभायमान प्रतीत होता है ॥ २६ ॥

मूलम् ॥

नानाविचारसुश्रान्तो धीरोविश्रान्तिमागतः ॥ नकल्पतेनजानाति न शृणोति न पश्यति ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ॥

नानाविचारसुश्रान्तः धीरः विश्रान्तिम् आगतः न कल्पते न जानाति न शृणोति न पश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यतः	= जिसकारण	धीरः	= ज्ञानी
नाना विचार सुश्रान्तः	= द्वैतकेविचारसेनिवृत्तहुआ	विश्रान्तिम्	= शान्तिको
		आगतः	= प्राप्तभया है
		अतएव	= इसी कारण

सः = वह	न शृणोति = न सुनताहै
नकल्पते = न कल्पना करता है	न पश्यति = न देखताहै
न जानाति = न जानताहैं	

भावार्थ॥

हे शिष्य! नाना प्रकारके विचारों से रहित हुआ २ ज्ञानी अन्तरात्मा बिषेही शान्तिको प्राप्तरहता है वह संकल्पादिक मनके व्यापारों को नहीं करता है और न बुद्धिके व्यापारों को करता है और न वह इन्द्रियों के व्यापारों को करता है क्योंकि उसमें कर्तृत्वादिकों का अभिमान नहीं है॥ २७॥

मूलम्॥

असमाधेरविक्षेपान्न मुमुक्षुर्नचेतरः॥ निश्चित्यकल्पितम्पश्यन् ब्रह्मैवास्तेमहाशयः॥ २८॥

पदच्छेदः॥

असमाधेः अविक्षेपात् न मुमुक्षुः न

च इतरः निश्चित्य कल्पितम् पश्यन् ब्रह्म एव आस्ते महाशयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
महाशयः	= ज्ञानी	निश्चित्य	= निश्चयकरके
असमाधेः	= समाधिरहितहोनेसे	इदम्सर्वम्	= इस सब जगत्को
मुमुक्षुःन	= मुमुक्षुनहींहै	कल्पितम्	= कल्पित
च	= और	पश्यन्	= समझता है
अविक्षेपात्	= द्वैतभ्रमके अभाव से		
इतरःन	= बद्धनहीं है	ब्रह्मएव	= विश्रा-
परन्तु	= परन्तु	आस्ते	= जानाति

भावार्थ ॥

ज्ञानी मुमुक्षु नहीं होता है क्योंकि विक्षेप की निवृत्ति के लिये मुमुक्षु समाधि को करताहै ज्ञानी में विक्षेप है नहीं इसी लिये वह समाधि को नहीं करता है उसमें बन्ध भी नहीं है क्योंकि द्वैतभ्रम उस का नष्ट होगया है जिसको द्वैतभ्रम होता है उसीको

बंध भी होताहै ॥प्रश्न॥ फिर वह ज्ञानी कैसाहै ॥उत्तर॥ वह ब्रह्मरूप है क्योंकि संपूर्ण जगत् उसको पूर्वही से कल्पित प्रतीत होता है पश्चात् वह बाधितानुवृत्ति करके जगत् को देखता है इसी कारण वह निर्विकार चित्तवाला ही होता है ॥ २८ ॥

मूलम् ॥

यस्यान्तःस्यादहंकारो नकरोतिक रोतिसः ॥ निरहंकारधीरेण नकिञ्चिद कृतंकृतम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ॥

यस्य अन्तः स्यात् अहंकारः न करोति करोति सः निरहंकारधीरेण न किञ्चित् अकृतम् कृतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यस्य	= जिसके	अहंकारः	= अहंकारका अध्यास
अन्तः	= अन्तःकरणमें	स्यात्	= है

सः = वह
+यद्यपि = यद्यपि
+लोकदृष्ट्या = लोकदृष्टि करके
न करोति = नहीं कर्म करता है
तुअपि = तोभी
करोति = मनमेंसङ्कल्पादिकर्म करता है
निरहंकारधीरेण = अहंकाररहितज्ञानी करके

यद्यपिलोकदृष्ट्या = यद्यपिलोक दृष्टिसे
न किञ्चित् = कुछ भी नहीं
कृतम् = कियागयाहै
तथापि = तथापि
स्वदृष्ट्या = अपनी दृष्टि से
तत् = वह
कृतम् = कियागयाहै

भावार्थ ॥

प्रश्न॥ संसारको देखताहुआभी वह कैसे ब्रह्मरूप होसक्ता है॥ उत्तर॥ जिस पुरुष के अंतःकरण में अहंकार का अध्यास होता है वह लोकदृष्टिकरके न करताहुआभी संकल्पादिकोंको करताहै॥जैसे जब कोई जटा रखाकर धूनी लगाकर मौन होकर बैठजाता है तब लोक कहते हैं यह बाबाजी कुछ नहीं करते हैं

पर वह भीतर मन में संकल्प करतारहता है कि कोई बड़ा आदमी आवै तो भांग बूटी का कामचलै इस तरह से ज्ञानी का व्यवहार नहीं होता है उसको भीतर से ही संकल्प विकल्प नहीं फुरते हैं इसी वास्ते वह कर्तृत्वादि अध्यास से रहित है ॥ २९ ॥

मूलम् ॥

नोद्विग्नंनचसंतुष्टमकर्तृस्पन्दवर्जितम् ॥ निराशंगतसंदेहं चित्तंमुक्तस्य राजते ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ॥

न उद्विग्नम् न च संतुष्टम् अकर्तृस्पन्दवर्जितम् निराशम् गतसंदेहम् चित्तम् मुक्तस्य राजते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्तस्य =	ज्ञानी का	निराशम् =	आशारहित
अकर्तृस्पन्दवर्जितम् =	कर्तृत्वरहित और संकल्प विकल्परहित	गतसंदेहम् =	संदेह रहित

चित्तम् = चित्त	न संतुष्टम् = न संतोष
न उद्विग्नम् = न द्वेषको	को
च = और	राजते = प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं जीवन्मुक्त का चित्त प्रकाश रूप है इसीवास्ते वह उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि उद्वेग का हेतु जो द्वैत है वह उसके चित्तमें नहीं रहाहै और संकल्प विकल्प से भी शून्य है इसी वास्ते उसका चित्त जगत् से निराश है और संदेह से भी रहित है क्योंकि संदेह का हेतु जो अज्ञान है वह उसमें रहानहीं ॥ ३० ॥

मूलम् ॥

निध्यातुंचेष्टितुं वापियच्चित्तंनप्रवर्तते ॥ निर्निमित्तमिदंकिन्तु निध्यांयतिविचेष्टते ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ॥

निध्यातुम् चेष्टितुम् वा अपि यत् चित्तम् न प्रवर्तते निर्निमित्तम् इदम् किन्तु निध्यायति विचेष्टते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानिनः	= ज्ञानी का	किन्तु	= परन्तु
यत्	= जो	इदम्	= वह चित्त
चित्तम्	= चित्त है	निर्निमित्तम्	= संकल्परहित
तत्	= वह	निर्ध्यायति	= निश्चल स्थित होता है
निर्ध्यातुम्	= निष्क्रिय भावमें स्थित होने को	च	= और
वा अपि	= अथवा	विचेष्टते	= नानाप्रकार की चेष्टाको करता है
चेष्टितुम्	= चेष्टाकरनेको		
न प्रवर्तते	= नहीं प्रवृत्त होता है		

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं जिस ज्ञानीका चित्त संकल्पविकल्परूपी चेष्टा करने में प्रवृत्त नहीं होता है वह चित्त के निश्चल शुद्ध होने से अपने स्वरूप में स्थिर होता है ॥ ३१ ॥

मूलम् ॥

तत्त्वंयथार्थमाकर्ण्य मन्दःप्राप्नोति

मूढताम् ॥ अथवाऽऽया[ति] तुष्टम् = न संतोष को
मूढःकोऽपिमूढवत् ॥ ३२ ॥ = प्राप्त होता है

पदच्छेदः ॥

तत्त्वम् यथार्थम् आकर्ण्य चित्त प्रकाश
प्राप्नोति मूढताम् अथवा आयाति स-
ङ्कोचम् अमूढः कः अपि मूढवत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मन्दः = अज्ञानी

यथार्थम् तत्त्वम् = तत्त्वपदार्थ याने उपनिषदादिकों को

आकर्ण्य = सुनकर

मूढताम् = मूढ़ता याने संशय विपर्यय को

प्राप्नोति = प्राप्त होता है

अथवा = अथवा

अन्वयः शब्दार्थ

सङ्कोचम् = चित्तकी समाधिको

आयाति = प्राप्त होता है

च = और

तथाएव = वैसाही

कःअपि = और कोई

अमूढः = ज्ञानी

मूढवत् = अज्ञानी की तरह

मूढताम् =	संशय विप-र्यय याने व्यवहारको	+बाह्यदृष्ट्या=बाह्यदृष्टि से प्राप्नोति = प्राप्त होताहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! मन्दपुरुष तत् और त्वंपद के कल्पित भेद को श्रुति से श्रवण करके भी संशय विपर्यय के कारण मूढ़ताको ही प्राप्त होता है अथवा तत् और त्वंपद के अभेद अर्थ के जानने के लिये समाधि को लगाता है परन्तु हजारों में कोई एक पुरुष अंतर से शान्तचित्तवाला होकर बाहर से मूढ़वत् व्यवहार करता है ॥ ३२ ॥

मूलम् ॥

एकाग्रतानिरोधोवा मूढैरभ्यस्य तेभृशम् ॥ धीराःकृत्यंनपश्यन्ति सुप्तवत्स्वपदेस्थिताः ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः ॥

एकाग्रता निरोधः वा मूढैः अभ्यस्यते भृशम् धीराः कृत्यम् न पश्यन्ति सुप्तवत् स्वपदे स्थिताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एकाग्रता	= चित्तकी एकाग्रता	कृत्यम्	= पूर्वकृत्य को याने चित्तकी एकाग्रता को और निरोध-ताको
वा	= या	न पश्यन्ति	= नहीं देखते हैं
निरोधः	= चित्तकी निरोधता	परंतु	= परंतु
मूढैः	= अज्ञानियों करके	सुप्तवत्	= सोये हुए पुरुष की तरह
भृशम्	= अत्यन्त	स्वपदे	= अपने स्वरूप विषे
अभ्यस्यते	= अभ्यास कियाजाता है	स्थिताः	= स्थितरहतेहैं
धीराः	= ज्ञानीपुरुष		

भावार्थ ॥

मुमुक्षुजन चित्त की एकाग्रता के लिये और विपरीत वासना की निवृत्ति के लिये यत्न करते हैं परन्तु जो धीरपुरुष है वह कुछभी पूर्वोक्त कृत्य को

नहीं देखता है क्योंकि वह अपने स्वरूप में ही स्थित है ॥ ३३ ॥ मूलम् ॥

अप्रयत्नात्प्रयत्नाद्वा मूढोनाप्नोतिनिर्वृतिम् ॥ तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञोभवतिनिर्वृतः ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ॥

अप्रयत्नात् प्रयत्नात् वा मूढः न आप्नोति निर्वृतिम् तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञः भवति निर्वृतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मूढः	= अज्ञानी पुरुष	न आप्नोति	= नहीं प्राप्त होता है
अप्रयत्नात्	= चित्तके निरोधसे	प्राज्ञः	= ज्ञानी पुरुष
वा	= अथवा	तत्त्व निश्चय मात्रेण	= केवल तत्त्व के निश्चय करनेसे ही
प्रयत्नात्	= कर्मानुष्ठानसे	निर्वृतः	= कृतार्थ
निर्वृतिम्	= परमसुखको	भवति	= होता है

भावार्थ ॥

जिस पुरुष को जीव ब्रह्मकी ऐक्यता का निश्चय नहीं है वही पुरुष मूर्ख कहा जाता है वह पुरुष चाहै चित्तकी निरोधरूपी समाधि को करै अथवा कर्मों के अनुष्ठान को करै वह कदापि परमसुखको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि आनंद का हेतु जो आत्माका अनुभव वह उसको है नहीं और जो विद्वान् ज्ञानी है वह न समाधि को और न कर्मों को करता है निर्वृतिको याने नित्यसुखको प्राप्त होता है क्योंकि उसको कुछ कर्तव्य बाकी नहीं रहा है ॥ गीतामें भी कहाहै ॥ यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ॥ आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्य्यंनविद्यते ॥ १ ॥ आत्मा में ही जिसकी रतिहै और अपने आत्मानंद करकेही जो तृप्त है आत्मा में ही जो संतुष्ट है बाहर के पदार्थों में जिसको तोष नहीं है उसको कोई भी कर्तव्य बाकी नहीं रहाहै ॥ ३४ ॥

मूलम् ॥

शुद्धम्बुद्धम्प्रियम्पूर्णं निष्प्रपञ्चंनिरामयम् ॥ आत्मानंतंनजानन्ति तत्राभ्यासपराजनाः ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः॥

शुद्धम् बुद्धम् प्रियम् पूर्णम् निष्प्रपञ्चम् निरामयम् आत्मानम् तम् न जानन्ति तत्र अभ्यासपराः जनाः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तत्र	= इस संसार विषे	पूर्णम्	= पूर्ण
अभ्यासपराः	= अभ्यासी	निष्प्रपञ्चम्	= प्रपञ्चरहित
जनाः	= मनुष्य	च	= और
तम्	= उस	निरामयम्	= दुःखरहित
शुद्धम्	= शुद्ध	आत्मानम्	= आत्माको
बुद्धम्	= चैतन्य	न जानन्ति	= नहींजानते हैं
प्रियम्	= प्रिय		

भावार्थ॥

जगत् में कर्मादिकोंके अभ्यासपरायण जो अज्ञानी पुरुष हैं वह उस आत्मा को नहीं जानते हैं जो शुद्ध है अर्थात् जो मायामल से रहित है जो स्वप्रकाश है जो परिपूर्ण है जो प्रपञ्च से रहितहै और जो दुःख के सम्बन्ध से भी रहित है॥ ३५॥

मूलम् ॥

नाप्नोतिकर्मणामोक्षं विमूढोऽभ्यासरूपिणा ॥ धन्योविज्ञानमात्रेणमुक्तस्तिष्ठत्यविक्रियः ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ॥

न आप्नोति कर्मणा मोक्षम् विमूढः अभ्यासरूपिणा धन्यः विज्ञानमात्रेण मुक्तः तिष्ठति अविक्रियः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विमूढः	= अज्ञानी	धन्यः	= भाग्यवान्
अभ्यास रूपिणा	= अभ्यास रूपी	पुरुषः	= पुरुष
कर्मणा	= कर्म से	विज्ञान मात्रेण	= केवल ज्ञान करके ही
मोक्षम्	= मोक्षको	मुक्तः	= मुक्तहुआ
न आप्नोति	= नहीं प्राप्त होता है	तिष्ठति	= स्थितरहता है याने मोक्ष प्राप्त होताहै
अविक्रियः	= क्रियारहित		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जो मूढ अज्ञानी

ज्न है वह कर्मोंकरके याने योगाऽभ्यासरूप कर्मों करके कदापि भी मोक्षको नहीं प्राप्त होते हैं॥तथाच॥ नकर्मणानप्रजयानधनेन ॥ कर्मों करके प्रजा करके धन करके पुरुष मोक्षको कदापि प्राप्त नहीं होता है परन्तु जिसका अविद्यामल दूर होगयाहै वह केवल विज्ञानमात्र करके मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ ३६ ॥

मूलम् ॥

मूढोनाप्नोतितद्ब्रह्म यतोभवितुमिच्छति ॥ अनिच्छन्नपिधीरोहि परब्रह्मस्वरूपभाक् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ॥

मूढः न आप्नोति तत् ब्रह्म यतः भवितुम् इच्छति अनिच्छन् अपि धीरः हि परब्रह्मस्वरूपभाक् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यतः	=जिसकारण	भवितुम्	=होने को
मूढः	=अज्ञानी	इच्छति	=इच्छा करता है
ब्रह्म	=ब्रह्म		

ततः = उसीकारण	हि = निश्चय करके
सः = वह	अनिच्छन् अपि = नहींचाहताहुवाभी
तत् = उसकोयाने ब्रह्मको	परब्रह्मस्वरूपभाक् = परब्रह्मस्वरूपका भजनेवाला
नआप्नोति = नहीं प्राप्त होता है	भवति = होता है
धीरः = ज्ञानी	

भावार्थ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! अज्ञानी मूढ़ चित्तके निरोध करने से ब्रह्मरूप होने की इच्छा करता है इसीवास्ते वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त होताहै और जिस धीरने अपने को ज्ञानी निश्चय करलिया है वह मोक्षकी नहीं इच्छा करता हुआ मोक्षको प्राप्त होता है॥ ३७॥

मूलम्॥

निराधाराग्रहव्यग्रा मूढाःसंसारपोषकाः॥ एतस्यानर्थमूलस्य मूलच्छेदःकृतोबुधैः॥ ३८॥

पदच्छेदः ॥

निराधाराः ग्रहव्यग्राः मूढाः संसारपोषकाः एतस्य अनर्थमूलस्य मूलच्छेदः कृतः बुधैः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निराधाराः	आधाररहित	अनर्थमूलस्य	अनर्थरूप मूलवाले
ग्रहव्यग्राः	दुराग्रही	संसारस्य	संसार के
मूढाः	अज्ञानी	मूलच्छेदः	मूलका नाश
संसारपोषकाः	संसार के पोषण करनेवाले हैं	बुधैः	ज्ञानियों करके
एतस्य	इस	कृतः	कियागया है

भावार्थ ॥

जो मूढ़ अज्ञानी है उसको ऐसा ख्याल है कि मैं वेदांतशास्त्र और आत्मवित गुरुके आधार के विना ही केवल चित्त के निरोध से ही मोक्ष को प्राप्त होजाऊंगा ऐसा दुराग्रहपुरुष संसार से छुड़ानेवाला

जो ज्ञान है उससे पराङ्मुख होता है इस संसार के मूलाज्ञान को वह छेदन नहीं करसक्ता है॥ ३८॥

मूलम्॥

नशान्तिंलभतेमूढोयतःशमितुमिच्छति॥ धीरस्तत्त्वंविनिश्चित्यसर्वदाशान्तमानसः॥ ३९॥

पदच्छेदः

न शान्तिम् लभते मूढः यतः शमितुम् इच्छति धीरः तत्त्वम् विनिश्चित्य सर्वदा शान्तमानसः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यतः	जिसकारण	ततः	तिसीकारण
शमितुम्	शान्तहोने को	सः	वह
मूढः	अज्ञानी	शान्तिम्	शान्तिको
इच्छति	इच्छा करता है	नलभते	नहीं प्राप्त होता है
		धीरः	ज्ञानी

तत्त्वम् = तत्त्वको	सर्वदा = सर्वदा
विनिश्चित्य=निश्चयक-रके	शान्तमानसः = शान्तमन वाला है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजीकहतेहैं हे जनक ! मूढ़ अज्ञानी जिस हेतु चित्तके निरोध से शान्ति की इच्छा करता है इसीवास्ते वह शान्ति को नहीं प्राप्त होता है और धीर जो है सो आत्मतत्त्व को निश्चयकरके शान्ति की इच्छा नहीं करता है इसीलिये शान्ति को प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

मूलम् ॥

क्वात्मनोदर्शनंतस्ययदृष्टमवलम्बते ॥ धीरास्तंतंनपश्यन्ति पश्यन्त्यात्मानमव्ययम् ॥ ४० ॥

पदच्छेदः ॥

क्व आत्मनः दर्शनम् तस्य यत् दृष्टम् अवलम्बते धीराः तम् तम् न पश्यन्ति पश्यन्ति आत्मानम् अव्ययम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तस्य	= उस को	धीराः	= ज्ञानी
आत्मनः	= आत्माका	तम्‌तम्	= उस
दर्शनम्	= दर्शन	दृष्टम्	= दृष्टको
क्व	= कहां है	नपश्यन्ति	= नहींदेखतेहैं
यत्	= जो	परन्तु	= परन्तु
दृष्टम्	= दृष्टको	अव्ययम्	= अविनाशी
अवलम्बते	= अवलम्बन करता है	आत्मानम्	= आत्माको
		पश्यन्ति	= देखते हैं

भावार्थ ॥

जो अज्ञानी पुरुष है वह प्रत्यक्षप्रमाणों करके ही ज़ाने हुये पदार्थों को सत्यरूप करके मानता है इसीकारण उसको आत्मदर्शन कदापि प्राप्त नहीं होता है और जो ज्ञानी है वह दीखतेहुये पदार्थ को नहीं देखता है किंतु उनके अन्तर्गत कारणशक्ति सर्वत्र चिद्रूप आत्मा को ही देखताहै इसीकारण वह परमात्मा में सदालीन रहता है और कार्यरूपी बाह्य पदार्थ उसको कोई भी दिखाई नहीं देता है ॥ ४० ॥

मूलम् ॥

क्व निरोधोविमूढस्ययोनिर्बन्धंकरोतिवै ॥ स्वारामस्यैवधीरस्यसर्वदाऽसावकृत्रिमः ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः

क्व निरोधः विमूढस्य यः निर्बन्धम् करोति वै स्वारामस्य एव धीरस्य सर्वदा असौ अकृत्रिमः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	= जो	स्वारामस्य	=आत्माराम
निर्बन्धम्	= चित्तके निरोधको	धीरस्य	= ज्ञानीको
वै	= हठ करके	सर्वदा	= सदैवकाल
करोति	= करता है	एव	=निश्चयकरके
तस्य	= उस	असौ	=यह
विमूढस्य	=अज्ञानीको	चित्तनिरोधः	=चित्तका निरोध
क्व	=कहां	अकृत्रिमः	=स्वाभाविक है
निरोधः	= चित्तका निरोध है		

भावार्थ ॥

जो अज्ञानी पुरुष शुष्कचित्त के निरोध में हठ करता है उसका चित्त कभी निरोध नहीं होता है अज्ञानीही चित्तके निरोधके लिये समाधि लगाता है जब समाधि से वह उत्थान होता है तब फिर उसका चित्त संसारके पदार्थों में फैल जाता है और जो आत्मामें रमणकरनेवाला योगी है जिसका चित्त निश्चल है उसका चित्त सर्वदाकाल आत्मामेंही निरुद्ध रहता है इसीकारण सर्वदाकाल समाधि उसकी बनी रहती है ॥ ४१ ॥

मूलम् ॥

भावस्यभावकःकश्चिन्नाकिञ्चिद्भावकोऽपरः ॥ उभयाऽभावकःकश्चिदेवमेव निराकुलः ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ॥

भावस्य भावकः कश्चित् न कि-ञ्चित् भावकः अपरः उभयाऽभावकः कश्चित् एवम् एव निराकुलः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
कश्चित्	कोई
भावस्य	भावका
भावकः	माननेवाला है
अपरः	और कोई
किञ्चित्	कुछभी
न	नहीं है
एवम्	ऐसा
भावकः	माननेवाला है
एवम्एव	वैसाही
कश्चित्	कोई
उभयाऽभावकः	दोनों याने भाव और अभावका नहींमानने वाला
निराकुलः	स्वस्थचित्त है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजन्! कोई एक नैयायिक ऐसा मानता है कि भावरूप प्रपञ्च परमार्थ से सत्य है और कोई शून्यवादी कहता है कि सब प्रपञ्च शून्यरूप है क्योंकि शून्य ही से उसकी उत्पत्ति होती है और कोई एक हज़ारोंमें से आत्माको अनुभव करनेवाला होता है वह भाव और अभाव दोनों की भावना को त्याग करके और स्वस्थचित्त होकर अपने आत्मानन्द में ही सदा मग्न रहता है ॥ ४२ ॥

मूलम्॥

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्तिकुबु द्धयः॥ नतुजानन्तिसंमोहाद्यावज्जीव मनिर्वृताः॥ ४३॥

पदच्छेदः॥

शुद्धम् अद्वयम् आत्मानम् भावयन्ति कुबुद्धयः न तु जानन्ति संमोहात् यावज्जीवम् अनिर्वृताः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कुबुद्धयः	दुर्बुद्धिपुरुप	संमोहात्	अज्ञानता के कारण
शुद्धम्	शुद्ध	नजानन्ति	नहीं जानतेहैं
अद्वयम्	अद्वैत	अतः	इसलिये
आत्मानम्	आत्मा को	यावज्जीवम्	जबतक उनका जीवनहै
भावयन्ति	भावना करते हैं	अनिर्वृताः	संतोषरहितहैं
तु	परन्तु		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! मूढ़ अज्ञानी हैं शुद्ध निर्म्मल द्वैतसे रहित व्यापक आत्माको अनुभव नहीं करते हैं क्योंकि उनका मोह संसारिक पदार्थों से निवृत्त नहीं हुआ है इसी कारण उन को आत्माका साक्षात्कार नहीं होता है जब तक वे जीते हैं सन्तोष को कदापि प्राप्त नहीं होते हैं बिना आत्मा के साक्षात्कार होने के सन्तोष की प्राप्ति नहीं होसक्ती है ॥ ४३ ॥

मूलम् ॥

मुमुक्षोर्बुद्धिरालम्बमन्तरेणनविद्यते ॥ निरालम्बैवनिष्कामा बुद्धिर्मुक्तस्यसर्वदा ॥ ४४ ॥

पदच्छेदः ॥

मुमुक्षोः बुद्धिः आलम्बम् अन्तरेण न विद्यते निरालम्बा एव निष्कामा बुद्धिः मुक्तस्य सर्वदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुमुक्षोः	= मुमुक्षुपुरुषकी	बुद्धिः	= बुद्धि
बुद्धिः	= बुद्धि	सर्वदा	= सबकालविषे
आलम्बम्अन्तरेण	= विना आलम्ब के	निष्कामा	= कामनारहित
नविद्यते	= नहींरहतीहै	च	= और
मुक्तस्य	= मुक्तपुरुष की	निरालम्बा	= आश्रयरहित
		एव	= निश्चय करके
		विद्यते	= रहती है

भावार्थ॥

जिसको आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है उस की बुद्धि संसारिक विषय को आलम्बन करती है, और जो निष्काम जीवन्मुक्त है उस की बुद्धि आत्मा के आश्रय रहती है आत्मा के अचल होने से वह बुद्धि भी सदैव काल स्थिर रहती है॥ ४४॥

न्वयः शब्दार्थ

मूलम्। ते = वे

विषयद्वीपिनो वीक्ष्य चकिताः शरणार्थिनः ॥ विशन्ति झटिति क्रोडन्निरोधैकाग्र्यसिद्धये ॥ ४५ ॥

चाटवः=प्रियवादी

पदच्छेदः ॥

विषयद्वीपिनः वीक्ष्य चकिताः शरणार्थिनः विशन्ति झटिति क्रोडम् निरोधैकाग्र्यसिद्धये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विषयद्वीपिनः	= विषयरूपी व्याघ्र को	निरोधैकाग्र्यसिद्धये	= चित्तकी निरोधता औरएकाग्रताकी सिद्धिके लिये
वीक्ष्य	= देख करके	झटिति	= शीघ्र
चकिताः	= डरेहुये	क्रोडम्	= पहाड़की गुहाविषे
शरणार्थिनः	= अपनेशरीरकीरक्षाकरनेवालेमूढ़ पुरुष	विशन्ति	= प्रवेश करते हैं

अन्वयः शब्दार्थ ॥

मुमुक्षोः = मु

रूपी व्याघ्रों को देखकरके भय को प्राप्त होता है और चित्त की वृत्ति को एकाग्र करनेके लिये पहाड़ी कन्दरा में प्रवेश कर जाता है परन्तु उसका कार्य्य सिद्ध नहीं होता है उस की अन्तर्वृत्ति फैलती जाती है और वह हरदिन दुःखी होता जाता है शान्ति उस को लेशमात्र भी नहीं होती है और जो ज्ञानी जीवन्मुक्त है वह विषयरूपी व्याघ्र को इन्द्रजालजन्य पदार्थों की तरह देखकर उन से भय नहीं खाता है ॥ ४५ ॥

मूलम् ॥

निर्वासनंहरिंदृष्ट्वा तूष्णींविषयदन्तिनः ॥ पलायन्तेनशक्तास्ते सेवन्तेकृतचाटवः ॥ ४६ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्वासनम् हरिम् दृष्ट्वा तूष्णीम् विषयदन्तिनः पलायन्ते न शक्ताः ते सेवन्ते कृतचाटवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निर्वासनम्=	वासनारहित	ते=	वे
पुरुषम्=	पुरुषरूपी	कृतचाटवः=	प्रियवादी यानै संसारी पुरुष
हरिम्=	सिंहको	ईश्वराकृष्टाः=	ईश्वरकरकेप्रेरितहुये
दृष्ट्वा=	देखकर	तम् निर्वासनम् पुरुषम्=	उसवासनारहित पुरुषको
नशक्ताः=	असमर्थ	स्वयम्=	स्वतः
विषयदन्तिनः=	विषयरूपीहाथी	आगत्य=	आकर
तूष्णीम्=	चुपचाप हुये	सेवन्ते=	सेवतेहैं
पलायन्ते=	भागते हैं		
च=	और		

भावार्थ ॥

क्योंकि वासनारहित पुरुषरूपी सिंह को देखकर विषयरूपी हस्ती असमर्थ होकर भागजाता है और ऐसेही नरसिंहकी प्रतिष्ठा और सेवा इतर पुरुष ईश्वर करके प्रेरितहुये करते हैं ॥ ४६ ॥

मूलम् ॥

नमुक्तिकारिकान्धत्ते निःशंकोयुक्त

मानसः ॥ पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्र न्नश्नन्नास्तेयथासुखम् ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः ॥

न मुक्तिकारिकाम् धत्ते निःशंकः युक्त-मानसः पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् आस्ते यथासुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निःशंकः	=शंकारहित	किन्तु	=परन्तु
च	=और	पश्यन्	=देखताहुआ
युक्तमानसः	=निश्चल मनवाला	शृण्वन्	=सुनताहुआ
ज्ञानी	=ज्ञानी	स्पृशन्	=स्पर्शकरता हुआ
मुक्तिकारिकाम्	=यमनियमादियोग क्रियाको	जिघ्रन्	=सूंघताहुआ
आग्रहात्	=आग्रहसे	अश्नन्	=खाताहुआ
नधत्ते	=नहींधारण करताहै	सः	=वह
		यथासुखम्	=सुखपूर्वक
		आस्ते	=रहताहै

भावार्थ ॥

दूर होगये हैं संशय जिसके निश्चल है मन जिसका ऐसा जो जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुष है वह यम नियमादिक क्रिया को भी हठ से नहीं करताहै क्योंकि उसको कर्तृत्वाध्यास नहीं है वह देखताहुआ सुन-ताहुआ स्पर्शकरताहुआ सूंघताहुआ अर्थात् लोक-दृष्टि करके सर्व्वक्रिया को करताहुआ अपने आत्मा-नन्द में ही स्थिर रहता है ॥ ४७ ॥

मूलम् ॥

वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिर्निराकुलः ॥ नैवाचारमनाचारमौदास्यंवाप्रपश्यति ॥ ४८ ॥ पदच्छेदः ॥

वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिः निरा-कुलः न एव आचारम् अनाचारम् औदास्यम् वा प्रपश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वस्तुश्रवणमात्रेण	=यथार्थवस्तु के श्रवण-मात्रसेही	शुद्धबुद्धिः	=शुद्धबुद्धि वाला
		च	=और

निराकुलः=स्वस्थचित्त वालापुरुष	वा=और
न एव=न	औदास्यम्=उदासीनताको
आचारम्=आचारको	प्रपश्यति=देखताहै

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं चिदात्मा के श्रवणमात्र से ही जिसकी शुद्ध अखण्डाकार बुद्धि उत्पन्न हुई है वही अपने आत्मा के स्वरूप में स्थित है वह न आचार को न अनाचार को याने न शुभ न अशुभकर्म्म को न उन से रहित होने की इच्छा को करता है क्योंकि वह सदा अपने में मग्न रहता है ॥ ४८ ॥

मूलम् ॥

यदायत्कर्तुमायाति तदातत्कुरुते ऋजुः॥ शुभंवाप्यशुभंवापि तस्यचेष्टा हिबालवत् ॥ ४९ ॥

पदच्छेदः ॥

यदा यत् कर्तुम् आयाति तदा तत् कुरुते ऋजुः शुभम् वा अपि अशुभम् वा अपि तस्य चेष्टा हि बालवत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	=जब	धीरः	= ज्ञानी
यत्	=जो कुछ	ऋजुः	= आग्रहरहित
शुभम्	=शुभ	कुरुते	= करताहै
वाअपि	=अथवा	हि	= क्योंकि
अशुभम्	=अशुभ	तस्य	= उसको
कर्तुम्	=करने को	चेष्टा	= व्यवहार
आयाति	= आप्राप्तहोताहै	बालवत	= बालवत्
तदा	= तब	भवति	= प्रतीतहोताहै
तत्	= उसको		

भावार्थ ॥

जिस कालमें वह ज्ञानी शुभकर्म्म को अथवा अशुभकर्म्म को करता है वह प्रारब्ध के वश से दैव-गति से अकस्मात् करता है शोभन अशोभन बुद्धि करके वा हठ करके नहीं करताहै क्योंकि उसकी चेष्टा बालक की तरह प्रारब्ध के अधीन होती है राग द्वेष के अधीन नहीं होती है ॥ ४९ ॥

मूलम्॥

स्वातन्त्र्यात्सुखमाप्नोति स्वातन्त्र्याल्लभतेपरम्॥ स्वातन्त्र्यान्निर्वृतिं गच्छेत् स्वातन्त्र्यात्परमंपदम्॥५०॥

पदच्छेदः॥

स्वातन्त्र्यात् सुखम् आप्नोति स्वातन्त्र्यात् लभते परम् स्वातन्त्र्यात् निर्वृतिम् गच्छेत् स्वातन्त्र्यात् परमम् पदम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वातन्त्र्यात्	= स्वतन्त्रतासे	स्वातन्त्र्यात्	= स्वतन्त्रता से
सुखम्	= सुखको	निर्वृतिम्	= नित्यसुख को
ज्ञानी	= ज्ञानी	गच्छेत्	= प्राप्तहोताहै
आप्नोति	= प्राप्तहोताहै	स्वातन्त्र्यात्	= स्वतन्त्रतासे
स्वातन्त्र्यात्	= स्वतन्त्रतासे	परमंपदम्	= परमपदको याने अपने स्वरूप को
परम्	= ज्ञानको		
लभते	= प्राप्तहोताहै	आप्नोति	= प्राप्तहोता है

भावार्थ ॥

स्वतन्त्रता से याने राग द्वेष की अधीनता से रहित पुरुष सुखको प्राप्त होताहै और उसी स्वतन्त्रता करके आत्मज्ञानको भी पुरुष प्राप्त होता है और स्वतन्त्रता से ही पुरुष नित्य सुखको भी प्राप्त होता है और स्वतन्त्रता करके ही परमशान्ति को भी पुरुष प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

मूलम् ॥

अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मनोमन्यतेयदा ॥ तदात्तीणाभवन्त्यैव समस्ताश्चित्तवृत्तयः ॥ ५१ ॥

पदच्छेदः ॥

अकर्तृत्वम् अभोक्तृत्वम् स्वात्मनः मन्यते यदा तदा क्षीणाः भवन्ति एव समस्ताः चित्तवृत्तयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा	= जब	स्वात्मनः	= अपनेआत्माके
पुरुषः	= पुरुष		

अकर्तृत्वम् = अकर्ता पनेको	समस्ताः = सम्पूर्ण
अभोक्तृत्वम्=अभोक्ता पनेको	चित्तवृत्तयः=चित्त की वृत्तियां
मन्यते = मानताहै	एव = निश्चय करके
तदा = तब	क्षीणाः = नाश
तस्य = उसकी	भवन्ति = होतीहैं

भावार्थ ॥

जिस कालमें विद्वान् अपने को अकर्त्ता अभोक्ता मानता है उसी काल में सम्पूर्ण चित्त की वृत्तियां नाश होजाती हैं याने जब वह ऐसा निश्चय करता है कि इस कर्म्म को मैं करूंगा और उसका फल मेरेको प्राप्त होगा तब उसके चित्तकी अनेक वृत्तियां उदय होती हैं और वह दुःखी होता है परन्तु जब अपने को अकर्त्ता अभोक्ता निश्चय करता है तब सम्पूर्ण उसके चित्तकी वृत्तियां निरोध होजाती हैं और वह शान्ति को प्राप्त होता है ॥ प्रश्न ॥ केवल अकर्त्ता अभोक्ता निश्चय करने सेही यदि चित्त की वृत्तियों का अभाव होजावै और वह जीवन्मुक्त हो-

जावै तो बद्धज्ञानियों के चित्त की वृत्तियों का अभाव होना चाहिये और उनको भी जीवन्मुक्त कहना चाहिये पर ऐसा नहीं देखते हैं क्योंकि बद्धज्ञानियों के चित्त की वृत्तियां विषयों में लगी रहती हैं और उनको लोग जीवन्मुक्त भी नहीं कहते हैं इसी से सिद्ध होता है केवल अकर्त्ता अभोक्ता मान लेनेसे ही वृत्तियों का निरोध नहीं होता है ॥ उत्तर ॥ उन बद्धज्ञानियों का जो कथन है हम अकर्त्ता हैं हम अभोक्ता हैं सो सब मिथ्या है क्योंकि उनका अध्यास बना है उनकी विषयाकार वृत्तियां उदय होती हैं और न उनका निश्चय परिपक्व है यदि परिपक्व निश्चय होता तो कदापि उनकी वृत्तियां विषयाकार उत्पन्न न होतीं ॥ दृष्टान्त ॥ जैसे हिन्दूधर्म्म के लिये गोमांस अतिनिषिद्ध है किसी हिन्दू का मन गोमांस के तरफ स्वप्न में नहीं जाता है तैसेही जिस विद्वान् ज्ञानी का यह परिपक्व निश्चय है कि मैं अकर्त्ता हूं अभोक्ता हूं उसका मन कभी स्वप्नमें भी विषयों की तरफ नहीं जाता है और न उसकी विषयाकार वृत्ति कदापि उदय होती है और जिसका निश्चय परिपक्व नहीं है अर्थात् जो बद्धज्ञानी है वह लोकों को सुनाता है मैं अकर्त्ता हूं अभोक्ता हूं परन्तु भीतर से

उसकी विषयों की तरफ बिलार की तरह दृष्टि रहती है जैसे बिलार तबतक आंख को मूंदे रहती है जब तक मूसेको नहीं देखती है जब मूसे को देखती है तुरन्त झपट कर खाजाती है तैसेही ब्रह्मज्ञानी भी तबतकही अकर्त्ता अभोक्ता बना रहता है जब तक विषयरूपी मूस उसको नहीं दिखाता है जब विषयरूपी मूस उसके सामने आता है तुरन्त ही वह कर्त्ता भोक्ता होकर उसको खाजाता है ॥ एक निर्म्मल सन्त पञ्जाब देशके किसी ग्राम में एक युवा स्त्रीको विचारसागर पढ़ाते थे पढ़ाते २ उसपर उन का मन चलायमान होगया तब उसके स्थलोंपर हाथ फेरने लगे उस स्त्रीने कहा कि महाराज अभी तो आपने मेरेको पढ़ाया है कि विषयभोगों को विष के तुल्य जानकर त्याग करना चाहिये और आप ही अब मेरे जांघोंपर हाथ फेरते हैं यह क्या बात है तब उन महात्मा ने कहा हम तुम्हारी परीक्षा करते हैं तुमने समग्र विचारसागर पढ़ लिया परन्तु तुम्हारा देहाभ्यास नहीं छूटा अब देखिये महात्माजी तो खुद अपना देहाभ्यास दूर किया नहीं विषयलोलुप होकर परस्त्री की जांघोंपर हाथ फेरने लगे परन्तु दूसरे का देहाभ्यास छुड़ाने को तैयार हुये थे ऐसे ब्रह्मज्ञानियों

अठारहवां अध्याय कहैं वेही पण्डित के चित्त में कदापि शान्ति नहीं होती है पूर्वोक्त युक्ति- को भी सुनिये पूर्वदेशमें एक पण्डित किसी वही बद्ध- योगवासिष्ठ की कथा कहते थे उनकी कथामें मां अकर्त्ता भी बहुतही आतीथीं गन्धर्व्व जातिकी एक वेश्य उनकी कथामें आतीथी और माईलोकों में बैठती। एक दिन कथामें स्त्रीके सङ्गका बहुत निषेध आया और परस्त्री के सङ्गका बहुतही दोष निकला उस दिन कथा कहते २ पण्डितजी की दृष्टि उस वेश्या के ऊ- पर जब पड़ी तब पण्डितजी का मन उस वेश्या में आसक्त होगया जब कथा समाप्त हुई तब सब कोई अपने २ घर को चले गये वह वेश्या भी अपने म- कानको गई और जाकर उसने विचार किया कि आज से फिर मैं इस व्यभिचार कर्म को नहीं करूंगी ऐसा निश्चय करके उसने अपना फाटक संध्यासेही बन्द करादिया और भीतर बैठकर भजन करने लगी इधर तो यह हाल हुआ और उधर जब पण्डितजी कथा बांचकर अपने घर गये तब रात्रि आने का शोच कर- नेलगे इतने में रात्रि होगई जब एक पहर रात्रि व्य- तीत हुई तब पण्डितजी शिरपर कपड़ा डाले हुये उस वेश्या के मकान के नीचे पहुँचे और जाकर कि- वाड़े को हिलाया तब नौकरने वेश्या से कहा पण्डित

उसकी विषयों
है जैसे वि वेश्याने तुरंत किवाड़ खोलदिया पण्डितजी तक मूर्ख वेश्याने उनको पलंग पर बैठाया और आप है तुरन्ठी तब पण्डितजी ने कहा हे प्यारी! मेरे पास भी हम तो आज तुम्हारे साथ आनन्द करने आयेहैं तश्याने कहा महाराज आपने तो आज कथा में वि-षय भोगकी बड़ी निन्दा सुनाई और फिर आपहीने यह भी कहा था कि जो पुरुष परस्त्री के साथ भोग करताहै उसको यमदूत अग्निसे तपेहुये खम्भोंके साथ बांधते हैं और स्त्री को भी अग्निसे तपेहुये खम्भों के साथ लगाते हैं तब फिर कैसे आप के साथ क्रीड़ा करूं तब पण्डितजी ने कहा जब कृष्णजी अवतार हुये तब उन्होंने उन सब खम्भों को उखेड़कर समुद्र में डालदिया अब वह खम्भे नहीं रहे हैं वह तो पूर्व युगोंकी वार्त्ता थी इस युगकी नहीं है तू अपने को अकर्त्ता मानकर आकर आनन्द ले ऐसे बद्धज्ञा-नियों के चित्त कभी भी शान्तिको प्राप्त नहीं होते हैं धर्मशास्त्रमें भी कहा है ॥ पठकाः पाठकाश्चैवयेचान्ये शास्त्रचिन्तकाः ॥ सर्वेतेव्यसिनोमूर्खायःक्रियावान्स पण्डितः॥१॥ जितने शास्त्र के पढ़नेवाले हैं और जितने शास्त्र के पढ़ानेवाले हैं और जो केवल शास्त्रका वि-चारही करते हैं वे सब व्यसनी और मूर्ख हैं जो उन

में वैराग्यादि साधन सम्पत्ति करके युक्तहैं वेही पण्डित हैं दूसरे शास्त्रदृष्टि से पण्डित नहीं हैं पूर्वोक्त युक्तियों से यह साबित हुआ जो अध्यासी पुरुषहै वही बद्धज्ञानी है केवल अकर्त्ता अभोक्ता कहनेसे वह अकर्त्ता अभोक्ता कदापि नहीं होसक्ताहै ॥ ५१ ॥

मूलम् ॥

उच्छृङ्खलाप्याकृतिका स्थितिर्धीरस्यराजते ॥ नतुसंस्पृहचित्तस्यशान्तिर्मूढस्यकृत्रिमा ॥ ५२ ॥

पदच्छेदः

उच्छृङ्खला अपि आकृतिका स्थितिः धीरस्य राजते न तु संस्पृहचित्तस्य शान्तिः मूढस्य कृत्रिमा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धीरस्य	= ज्ञानीकी	स्थितिः	= स्थिति
उच्छृङ्खला	= शान्ति रहित	अपि	= भी
आकृतिका	= स्वाभाविक	राजते	= शोभतीहै
		तु	= परन्तु

संस्पृह चित्तस्य = इच्छासहित चित्तवाले	कृत्रिमा = बनावट वाली
मूढस्य = अज्ञानी की	शान्तिः = शान्ति
	नराजते = नहींशोभती है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक ! जो पुरुष निःस्पृह है उसकी भी स्वाभाविक स्थिति शोभाकरके युक्तही होती है क्योंकि उसमें कोई बनावट नहीं होतीहै और जो मूढ़ इच्छाकरके व्याकुलहै उसकी बनावटकी शान्तिभी शोभायमान नहीं होतीहै ॥५२॥

मूलम् ॥

विलसन्तिमहाभोगैर्विशन्तिगिरिगह्वरान् ॥ निरस्तकल्पनाधीराअबद्धा मुक्तबुद्धयः ॥ ५३ ॥

पदच्छेदः ॥

विलसन्ति महाभोगैः विशन्ति गिरिगह्वरान् निरस्तकल्पनाः धीराः अबद्धाः मुक्तबुद्धयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निरस्त कल्पनाः	= कल्पनारहित	महाभोगैः	= बड़े२ भोगोंकेसाथ
अवद्धाः	= बन्धनरहित	विलसन्ति	= क्रीड़ाकरते हैं
मुक्तबुद्धयः	= मुक्तबुद्धिवाले	च	= और
धीराः	= ज्ञानी	कदाचित्	= कभी
कदाचित्प्रारब्धवशात्	= कभीप्रारब्धवशसे	गिरिगह्वरान्	= पहाड़की कन्दरों में
		विशन्ति	= प्रवेशकरते हैं

भावार्थ ॥

जिस ज्ञानी धीरके चित्तकी कल्पना सब नष्ट होगई है वह प्रारब्धके वश कभी भोगों बिषे क्रीड़ा करता है कभी प्रारब्धवश पर्वत और वनों में फिरा करताहै पर उसका चित्त सदा शान्त रहताहै क्योंकि वह आसक्ति कर्तृत्वाऽध्यास से रहित बुद्धिवाला है ॥ ५३ ॥

मूलम् ॥

श्रोत्रियंदेवतांतीर्थमंगनांभूपतिंप्रि

यम् ॥ दृष्ट्वासंपूज्यधीरस्य नकापिहृदिवासना ॥ ५४ ॥

पदच्छेदः ॥

श्रोत्रियम् देवताम् तीर्थम् अंगनाम् भूपतिम् प्रियम् दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य न का अपि हृदि वासना ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
श्रोत्रियम्	= पण्डितको	प्रियम्	= पुत्रादिको
देवताम्	= देवताको	दृष्ट्वा	= देखकरके
तीर्थम्	= तीर्थको	धीरस्य	= ज्ञानी के
संपूज्य	= पूजनकर के	हृदि	= हृदय में
		काअपि	= कोईभी
च	= और	वासना	= वासना
अंगनाम्	= स्त्री को	नभवति	= नहींहोती है
भूपतिम्	= राजा को		

भावार्थ ॥

हे शिष्य! जो श्रोत्रिय ब्रह्मवेत्ता हैं उन बिषे इन्द्र अग्निआदिक देवताओं गंगाआदिकतीर्थोंके पूजाकरने

से कामना उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वे निष्कामहैं और सुन्दर स्त्री पुत्रादिकों के प्रति और राजा को देख करके भी उनके चित्त में कोई वासना खड़ी नहीं होतीहै क्योंकि वे सर्वत्र समबुद्धि औ समदर्शीहैं ॥५४॥

मूलम् ॥

भृत्यैःपुत्रैःकलत्रैश्चदौहित्रैश्चापि गोत्रजैः ॥ विहस्यधिक्कृतोयोगी नयातिविकृतिंमनाक् ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः ॥

भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैः च दौहित्रैः च अपि गोत्रजैः विहस्य धिक्कृतः योगी न याति विकृतिम् मनाक् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भृत्यैः	= किंकरोंकरके	च	= और
पुत्रैः	= पुत्रों करके	गोत्रजैः	=बांधवों करके
दौहित्रैः	= नातियोंकरके	अपि	= भी
		विहस्य	= हँसकरके

धिक्कृतः = धिक्कार कियाहुआ		विकृतिम् =	विकारको यानेचित्तके क्षोभको
योगी = ज्ञानी		नयाति =	नहींप्राप्तहोताहै
मनाक् = किंचित्भी			

भावार्थ ॥

हे शिष्य! जो ज्ञानी जीवन्मुक्त हैं उनका चित्त भृत्यों करके याने नौकरोंकरके पुत्रोंकरके स्त्रियों करके कन्योंकरके और स्वगोत्रियोंकरके अर्थात् सम्बन्धियोंकरके भी तिरस्कार कियाहुआ क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है और उन करके सत्कार कियाहुआ न हर्ष को प्राप्त होता है क्योंकि राग द्वेष का हेतु जो मोहहै सो मोह उनमें नहीं है ॥ ५५ ॥

मूलम् ॥

संतुष्टोऽपिनसंतुष्टःखिन्नोऽपिनचखिद्यते ॥ तस्याश्चर्यदशान्तांतांतादृशा एवजानते ॥ ५६ ॥

पदच्छेदः ॥

संतुष्टः अपि न संतुष्टः खिन्नः अपि

न च खिद्यते तस्य आश्चर्यदशाम्
ताम् ताम् तादृशाः एव जानते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानी	ज्ञानी पुरुष
लोकदृष्ट्या	लोकदृष्टि से
संतुष्टः	संतोषवान् हुआ
अपि	भी
न	नहीं
संतुष्टः	संतुष्ट है
च	और
खिन्नः	खेदकोपायाहुआ

अन्वयः	शब्दार्थ
अपि	भी
न खिद्यते	नहींदुःखको प्राप्तहोताहै
तस्य	उसकी
ताम्ताम्	उस उस
आश्चर्य दशाम्	आश्चर्य दशाको
तादृशाएव	वैसेही ज्ञानी
जानते	जानते हैं

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! लोकदृष्टिकरके खेद को प्राप्तहुआ भी वह खेदको नहीं प्राप्त होता है और लोकदृष्टिकरके वह हर्षको प्राप्त हुआ भी वह हर्षको नहीं प्राप्त

होता है ऐसे विद्वान् की आश्चर्यवत् लीलाको विद्वान् ही जानता है दूसरा नहीं ॥ ५६ ॥

मूलम् ॥

कर्त्तव्यतैवसंसारो न तांपश्यन्ति सूरयः ॥ शून्याकारानिराकारा निर्विकारानिरामयाः ॥ ५७ ॥

पदच्छेदः ॥

कर्त्तव्यता एव संसारः न ताम् पश्यन्ति सूरयः शून्याकाराः निराकाराः निर्विकाराः निरामयाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्त्तव्यता	कर्त्तव्यता	निर्विकाराः	संकल्प रहित
एव	ही	च	और
संसारः	संसारहै	निरामयाः	दुःखरहित
ताम्	उसकर्त्तव्यताको	सूरयः	ज्ञानी
शून्याकाराः	शून्याकार	नपश्यन्ति	नहींदेखतेहैं
निराकाराः	आकार रहित		

भावार्थ ॥

हे शिष्य! "ममेदंकर्त्तव्यम्" मेरे को यह कर्तव्य है ऐसे निश्चयका नामही संसार है इसी कारण जीवन्मुक्त ज्ञानी उस कर्त्तव्यता को नहीं देखताहै और न उसका संकल्प करताहै क्योंकि वह संकल्पमात्र से रहितहै वह शून्याकारहै और निराकारादिक संकल्पों से भी रहितहै और विकारों से भी रहितहै और जो आध्यात्मिकादि रोग हैं उनसे भी रहित है ॥ ५७ ॥

मूलम् ॥

अकुर्वन्नपिसंक्षोभाद्व्यग्रःसर्वत्रमूढधीः ॥ कुर्वन्नपितुकृत्यानि कुशलोहि निराकुलः ॥ ५८ ॥

पदच्छेदः ॥

अकुर्वन् अपि संक्षोभात् व्यग्रः सर्वत्र मूढधीः कुर्वन् अपि तु कृत्यानि कुशलः हि निराकुलः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मूढधीः	= अज्ञानी	अकुर्वन्	= कर्मोंकोनहीं करताहुआ

अपि = भी	च = और
सर्वत्र = सब जगह	कृत्यानि = कर्मोंको
संक्षोभात् = संकल्पवि-कल्पके कारण	कुर्वन् = करता हुआ
व्यग्रः = व्याकुल	अपि = भी
भवति = होता है	हि=निश्चयकरके
च = और	निराकुलः = निश्चल-चित्तवाला
कुशलः = ज्ञानी	भवति = होताहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य! अज्ञानी शून्यमंदिरों में और वनादिक पर्वतादिक एकांत स्थानोंमें कर्मों को अर्थात् शरीर इन्द्रियादिके व्यापारोंको न करताहुआ भी संकल्पों से व्यग्रचित्तवालाही होताहै और विद्वान् सर्वत्र शरीर इन्द्रियादिकों के व्यापारों को लोकदृष्टिकरके करता हुआभी व्यग्रचित्तवाला नहीं होता है क्योंकि वह निःसंकल्पहै ॥ ५८ ॥

मूलम् ॥

सुखमास्तेसुखंशेते सुखमायातिय

तिच॥ सुखंवक्तिसुखंभुङ्क्ते व्यवहारेपि
शान्तधीः ॥ ५९ ॥

पदच्छेदः ॥

सुखम् आस्ते सुखम् शेते सुखम् आयाति याति च सुखम् वक्ति सुखम् भुङ्क्ते व्यवहारे अपि शान्तधीः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
व्यवहारे	= व्यवहार बिषे	च	= और
अपि	= भी	याति	= जाता है
शान्तधीः	= ज्ञानी	सुखम्	= सुखपूर्वक
सुखम्	= सुखपूर्वक	वक्ति	= बोलताहै
आस्ते	= बैठता है	च	= और
सुखम्	= सुखपूर्वक	सुखम्	= सुखपूर्वक
आयाति	= आता है	भुङ्क्ते	= भोजनकरता है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी व्यवहार आदिकों में भी आत्मसुखकरकेही स्थित रहताहै बैठते उठते शयन करते

खाते पीते संपूर्ण क्रियाओं को करते हुये भी विद्वान् शांतचित्तवाला रहता है ॥ ५९ ॥

मूलम् ॥

स्वभावाद्यस्यनैवार्तिर्लोकवद्व्यवहारिणः ॥ महाहृदइवाक्षोभ्यो गतक्लेशः सुशोभते ॥ ६० ॥

पदच्छेदः ॥

स्वभावात् यस्य न एव आर्तिः लोकवत् व्यवहारिणः महाहृदः इव अक्षोभ्यः गतक्लेशः सुशोभते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यस्य	= जिस	लोकवत्	= लोककी तरह
व्यवहारिणः	= व्यवहार करनेवाले	आर्तिः	= पीड़ा
ज्ञानिनः	= ज्ञानी को	न	= नहीं है
स्वभावात्	= आत्मज्ञान के स्वभावसे	एव	= निश्चय करके

सः = सो	अक्षोभ्यः = क्षोभरहित
गतक्लेशः = क्लेशरहित ज्ञानी	सुशोभते = शोभाय-मान होताहै
महाह्रदइव=समुद्रवत्	

भावार्थ ॥

ज्ञानवान् व्यवहार को करताहुआ भी अज्ञानी पुरुषोंकी तरह खेद को नहीं प्राप्त होताहै वह महाह्रदकी तरह क्षोभसे रहित शोभाको प्राप्त होताहै॥६०॥

मूलम् ॥

निवृत्तिरपिमूढस्य प्रवृत्तिरुपजायते ॥ प्रवृत्तिरपिधीरस्य निवृत्तिफलदायिनी ॥ ६१ ॥

पदच्छेदः ॥

निवृत्तिः अपि मूढस्य प्रवृत्तिः उपजायते प्रवृत्तिः अपि धीरस्य निवृत्तिफलदायिनी ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मूढस्य	= मूढ़की	अपि	= भी
निवृत्तिः	= निवृत्ति	प्रवृत्तिः	= प्रवृत्तिरूप

उपजायते = होती है	अपि = भी
च = और	निवृत्ति फल- दायिनी = निवृत्तिके फलको देने वाली है
धीरस्य = ज्ञानी की	
प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति	

भावार्थ ॥

मूढ़ पुरुष के इन्द्रियों के व्यापारोंकी निवृत्ति तो लोकदृष्टि करके जरूर प्रतीत होतीहै परंतु वह निवृत्ति प्रवृत्ति ही है क्योंकि उस के अहंकारादिक निवृत्त नहीं हुये हैं और ज्ञानवान् की लोकदृष्टि करके इन्द्रियों की प्रवृत्ति प्रतीतभी होतीहै तौभी वह निवृत्ति रूपही है और मुक्तिरूपी फलको देनेवाली है क्योंकि उस में अभिमान का अभावहै॥ ६१ ॥

मूलम् ॥

परिग्रहेषुवैराग्यं प्रायोमूढस्यदृश्यते ॥ देहेविगलिताशस्य करागःकविरागता ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः ॥

परिग्रहेषु वैराग्यम् प्रायः मूढस्य

दृश्यते देहे विगलिताशस्य क्व रागः क्व विरागता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मूढस्य	= ज्ञानीका	विगलिताशस्य	= गलितभई हुई है आशा जिस की ऐसे ज्ञानी को
वैराग्यम्	= वैराग्य	क्व	= कहां
प्रायः	= विशेष करके	रागः	= राग है
परिग्रहेषु	= गृहआदि विषे	च	= और
दृश्यते	= देखा जाताहै	क्व	= कहां
परन्तु	= परन्तु	विरागता	= वैराग्य है
देहे	= देहविषे		

भावार्थ ॥

हे शिष्य! देहाभिमानी मूढ़ पुरुषको देहके साथ सम्बन्धवाले जो धन वेश्या आदिक हैं उनमें यदि किसी निमित्त से वैराग्य भी उत्पन्न होजावे तौ भी वह वैराग्यशून्य है परन्तु जिसका देहादिकों के साथ अभिमान नष्टहोगयाहै उसको देह सम्बन्धी पुत्रादि-

कों में न राग है और शत्रुव्याघ्रादिकों में न विराग है राग और विराग उसको होता है जिसको अपने देह का अभिमान है ॥ ६२ ॥

मूलम् ॥

भावनाभावनासक्ता दृष्टिर्मूढस्यसर्वदा ॥ भाव्यभावनयासातु स्वस्थस्या दृष्टिरूपिणी ॥ ६३ ॥

पदच्छेदः ॥

भावनाभावनासक्ता दृष्टिः मूढस्य सर्वदा भाव्यभावनया सा तु स्वस्थस्य अदृष्टिरूपिणी ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
मूढस्य	= अज्ञानी की
दृष्टिः	= दृष्टि
सर्वदा	= सर्वदा
भावना भावना- क्ता	= भावना विषे या अभावना विषे लगी है

अन्वयः	शब्दार्थ
तु	= परन्तु
स्वस्थस्य	= ज्ञानी की
सा	= दृष्टि
भाव्य भावन- या	= दृश्यकीचिन्तासे युक्त होकर के
अपि	= भी

अदृष्टि रूपिणी =	दृश्य के दर्शन से रहित रूप वाली	भवति = होती है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! मूढ़ पुरुष कहता है मैं भावना करता हूं मैं अभावना करताहूं इस प्रकार सर्वदाकाल भावना अभावनामेंही आसक्त रहता है क्योंकि उस को भावना अभावना में अहंकार है और जो अपने स्वरूपमें निष्ठावालाहै उसकी दृष्टि भावना अभावना से रहित सर्वदाकाल अपने आत्मा में ही रहती है ॥ ६३ ॥

मूलम् ॥

सर्वारम्भेषुनिष्कामो यश्चरेद्बालव न्मुनिः ॥ नलेपस्तस्यशुद्धस्य क्रियमा णेपिकर्मणि ॥ ६४ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्वारम्भेषु निष्कामः यः चरेत् बाल- वत् मुनिः न लेपः तस्य शुद्धस्य क्रियमाणे अपि कर्मणि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	= जो	चरेत्	= करताहै
मुनिः	= ज्ञानी	तस्य	= उस
बालवत्	= बालकोंकी तरह	शुद्धस्य	= शुद्धस्वरूपको
निष्कामः	= कामनारहितहुआ	क्रियमाणे कर्म्मणि अपि	= कियेहुए कर्म में भी
सर्वारम्भेषु	= सब क्रियाओंमें आरम्भ	लेपः न भवति	= लेप नहीं होता है

भावार्थ ॥

जो विद्वान् बालक की तरह कामना से रहित होकर पूर्वले कर्मों के वश से अर्थात् प्रारब्ध वश से सम्पूर्ण आरम्भों में प्रवृत्त होता भी है तौभी वह वास्तव से कुछ भी नहीं करता है क्योंकि वह अहंकाररूपी मलसे रहित है और इसी कारण तिसमें कर्तृत्वभाव नहीं है ॥ ६४ ॥

मूलम् ॥

सएवधन्यआत्मज्ञः सर्वभावेषुयः

समः ॥ पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्न
श्नन्निस्तर्षमानसः ॥ ६५ ॥

पदच्छेदः ॥

सः एव धन्यः आत्मज्ञः सर्वभावेषु यः समः पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् निस्तर्षमानसः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सःएव	= सोई	शृण्वन्	= सुनताहुआ
आत्मज्ञः	= आत्म-ज्ञानी	स्पृशन्	= स्पर्श करताहुआ
धन्यः	= धन्य है	जिघ्रन्	= सूंघता हुआ
यः	= जो	अश्नन्	= खाताहुआ
निस्तर्षमानसः	= तृष्णा रहित	सर्वभावेषु	= सबभावों विषे
पश्यन्	= देखताहुआ	समः	= एक रसहै

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! वही आत्मज्ञानी पुरुष धन्य है जिसको सब प्राणियों में आत्मबुद्धि है

इसी कारण उसका चित्त तृष्णा से रहित है वह सर्व प-
दार्थों को देखताहुआ श्रवण करता हुआ स्पर्श करता
हुआ सूंघता हुआ खाताहुआ भी कुछ नहीं करता
है वह सर्वदा शान्त एकरस है ॥ ६५ ॥

मूलम् ॥

क्वसंसारःक्वचाभासः क्वसाध्यंक्वंच साधनम् ॥ आकाशस्येवधीरस्यानिर्विं कल्पस्यसर्वदा ॥ ६६ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व संसारः क्व च आभासः क्व साध्यम् क्व च साधनम् आकाशस्य इव धीरस्य निर्विकल्पस्य सर्वदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वदा	= सर्वदा	धीरस्य	= ज्ञानी को
अकाशस्यइव	= आकाशवत	क्व	= कहां
निर्विकल्पस्य	= विकल्प रहित	संसारः	= संसार है
		च	= और

क्व = कहां	साध्यम् = साध्ययाने स्वर्ग है
आभासः = उसका भानहै	च = और
क्व = कहां	साधनम् = साधन याने यज्ञादिकर्महै

भावार्थ ॥

सर्वदा काल जो संकल्प विकल्पोंसे रहित विद्वान् है उसको प्रपञ्च कहां और उसकी दृष्टिमें स्वर्गादिक कहां जब उसकी दृष्टि में स्वर्गादिक ही नहीं तब उनका साधनीयभूत यागादिक उसकी दृष्टिमेंकहां आत्मवित् जीवन्मुक्त की दृष्टि में जब कि सर्वत्र एक आत्माही व्यापक परिपूर्ण है दूसरा पदार्थ कोई भी नहीं है तब स्वर्ग नर्क और तिनके साधनभूत पुण्य पापादिक भी कहीं नहीं ॥ ६६ ॥

मूलम् ॥

सजयत्यर्थसंन्यासी पूर्णस्वरसविग्रहः ॥ अकृत्रिमोऽनवच्छिन्ने समाधिर्यस्यवर्तते ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ॥

सः जयति अर्थसंन्यासी पूर्णस्वरसविग्रहः अकृत्रिमः अनवच्छिन्ने समाधिः यस्य वर्त्तते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सः	सोई	यस्य	जिसका
अर्थसंन्यासी	दृष्टादृष्ट कर्मफल	अकृत्रिमः	स्वाभाविक
पूर्णस्वरसविग्रहः	पूर्णानन्दस्वरूप वाला ज्ञानी	समाधिः	समाधि
जयति	जयको प्राप्त होता है	अनवच्छिन्ने	अपने पूर्ण स्वरूपविषे
		वर्त्तते	वर्त्तता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! जो विद्वान् दृष्ट अदृष्ट याने इस लोक के और परलोक के फलों की कामना से रहित है अर्थात् जो निष्काम है वही परिपूर्ण स्वरूपवाला है अर्थात् अपने स्वरूपमेंही जिसकी समाधि सर्वदाकाल बनी रहती है वही विद्वान् है इ सब से श्रेष्ठ होकर संसार में फिरता है ॥ ६७ ॥

मूलम् ॥

बहुनात्रकिमुक्तेन ज्ञाततत्त्वोमहाशयः ॥ भोगमोक्षनिराकांक्षी सदासर्वत्रनीरसः ॥ ६८ ॥

पदच्छेदः ॥

बहुना अत्र किम् उक्तेन ज्ञाततत्त्वः महाशयः भोगमोक्षनिराकांक्षी सदा सर्वत्र नीरसः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अत्र	इसविषे	भोगमोक्षनिराकांक्षी	भोग और मोक्षकीआकांक्षाका त्यागी
बहुना	बहुत	महाशयः	ज्ञानी
उक्तेन	कहने से	सदा	सदैव
किम्	क्या प्रयोजन है	सर्वत्र	सर्वत्र
ज्ञाततत्त्वः	तत्त्वजानने वाला	नीरसः	रागद्वेष रहित है

भावार्थ ॥

हे जनक ! ज्ञाततत्त्व जो विद्वान् है अर्थात् जिस विद्वान् ने आत्मतत्त्व को जानलिया है उसीका नाम ज्ञाततत्त्व है क्योंकि वह भोग और मोक्ष दोनों में निराकांक्षी है आकांक्षा से रहित है अर्थात् दोनों में राग से रहित है ॥ ६८ ॥

मूलम् ॥

महदादिजगद्द्वैतं नाममात्रविजृम्भितम् ॥ विहायशुद्धबोधस्य किंकृत्यमवशिष्यते ॥ ६९ ॥

पदच्छेदः ॥

महदादि जगत् द्वैतम् नाममात्रविजृम्भितम् विहाय शुद्धबोधस्य किम् कृत्यम् अवशिष्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
महदादि	= महत्तत्त्व आदि	द्वैतम्जगत्	= द्वैत जगत्

नाममात्रविजृम्भितम् = नाममात्र भिन्न है	शुद्धबोधस्य = शुद्ध बुद्ध स्वरूप वाले को
तत्र = तिसविषे	किम् = क्या
कल्पनाम्=कल्पनाको	कृत्यम् = कर्तव्यता
विहाय = छोड़कर	अवशिष्यते=अवशेष रहती है

भावार्थ ॥

हे जनक ! महदादिरूप जितना जगत् है अर्थात् महत् अहंकार पञ्चतन्मात्रा पञ्चमहाभूत और तिनका कार्यरूप जितना जगत् है वह केवल नाममात्र करके ही फैला है और आत्मा से भिन्न की नाईं प्रतीत होताहै परन्तु वास्तव से भिन्न नहीं है ॥ वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यमितिश्रुतेः ॥ जितना कि नामका विषय विकार है वह सब वाणी का कथनमात्रही है ॥ मृत्तिकाही सत्यहै ॥ १ ॥ इसीतरह जितना कि नामका घटपटादिरूप जगत् है वह सब कल्पनामात्रही है अधिष्ठानरूप ब्रह्मही सत्य है ॥ जिस विद्वान् ने संपूर्ण कल्पना का त्याग करदिया है जो केवल शुद्ध चैतन्यस्वरूप मेंही स्थित है उसको कोई कर्तव्य बाकी नहीं रहाहै ॥ ६९ ॥

मूलम् ॥

भ्रमभूतमिदंसर्वं किंचिन्नास्तीति निश्चयी ॥ अलक्ष्यस्फुरणःशुद्धः स्वभावेनैवशाम्यति ॥ ७० ॥

पदच्छेदः ॥

भ्रमभूतम् इदम् सर्वम् किंचित् न अस्ति इति निश्चयी अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभावेन एव शाम्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इदम्	यह	शुद्धः	शुद्ध
सर्वम्	सब	निश्चयी	निश्चय करनेवाला
भ्रमभूतम्	प्रपञ्च	स्वभावेन	स्वभाव से
किञ्चित्	कुछ	एव	हि
न अस्ति	नहीं है	शाम्यति	शान्तिको प्राप्तहोता है
इति	ऐसा		
अलक्ष्य स्फुरणः	चैतन्यात्मानुभवी		

भावार्थ ॥

प्रश्न॥अनर्थकी शान्तिकेलिये प्रयत्न करना चाहिये उत्तर ॥ अधिष्ठानके साक्षात्कार होनेपर यह संपूर्ण जगत् भ्रम करकेही कल्पित प्रतीत होताहै वास्तव से कुछ भी सत्य प्रतीत नहीं होताहै जिस पुरुषको ऐसा ज्ञानहै वह किंचित् भी प्रयत्न नहीं करता है क्योंकि वह स्वभाव करकेही शांतरूप है शान्ति के लिये फिर उसको कुछ भी बाकी कर्तव्य नहीं रहताहै ॥ ७० ॥

मूलम् ॥

शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावमपश्यतः ॥ कविधिःकचवैराग्यं कत्यागः कशमोऽपिवा ॥ ७१ ॥

पदच्छेदः ॥

शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावम् अपश्यतः क विधिः क च वैराग्यम् क त्यागः क शमः अपि वा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
दृश्यभावम्	= दृश्यभावको	अपश्यतः	= नहींदेखतेहुये

शुद्धस्फुरणरूपस्य = शुद्धस्फुरण रूपवालेको	च = और
क्व = कहां	क्व = कहां
विधिः = कर्मकी विधि है	त्यागः = त्याग है
	वा अपि = अथवा
	क्व = कहां
	शमः = शम है

भावार्थ ॥

जो विद्वान् शुद्ध स्वरूप स्वप्रकाश चिद्रूप अपने आप को देखता है वह किसी और दृश्य पदार्थ को नहीं देखता है उसको कर्म में राग कहां है और विधि कहां है और किस विषय में उसको वैराग्य है और किसमें शम ॥ ७१ ॥

मूलम् ॥

स्फुरतोऽनंतरूपेण प्रकृतिंचनपश्यतः ॥ क्वबन्धःक्वचवामोक्षः क्वहर्षःक्वविषादता ॥ ७२ ॥

पदच्छेदः ॥

स्फुरतः अनन्तरूपेण प्रकृतिम् च

न पश्यतः क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः क्व हर्षः क्व विषादता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
च	= और	बन्धः	= बन्धन है
अनन्तरूपेण	=अनन्त रूपसे	क्व	= कहां
		मोक्षः	= मोक्षहै
प्रकृतिम्	= मायाको	वा	= और
नपश्यतः	= नहींदेखते हुये	क्व	= कहां
		हर्षः	= हर्ष है
स्फुरतः	= प्रकाशमान यानेज्ञानीको	च	= और
		क्व	= कहां
क्व	= कहां	विषादता	= शोक है

भावार्थ ॥

जो चिद्रूपआत्मामें कार्य के सहित मायाको नहीं देखताहै उसकी दृष्टिमें बन्ध कहां है और मोक्ष कहां है और हर्ष विषाद कहांहै ॥ ७२ ॥

मूलम् ॥

बुद्धिपर्यन्तसंसारे मायामात्रंविव

र्तते ॥ निर्ममोनिरहंकारो निष्कामः शोभतेबुधः ॥ ७३ ॥

पदच्छेदः ॥

बुद्धिपर्यन्तसंसारे मायामात्रम् विवर्तते निर्ममः निरहंकारः निष्कामः शोभते बुधः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
बुद्धि पर्यन्त संसारे	= बुद्धिपर्यन्त संसार विषे	बुधः	= ज्ञानी पुरुष
माया मात्रम्	= मायाविशिष्टचैतन्य	निर्ममः	= ममता रहित
जगत्	= जगत् भावको	निरहंकारः	= अहंकार रहित
विवर्त्तते	= कल्पित करताहै	निष्कामः	= कामना रहित
		शोभते	= शोभायमान होता है

भावार्थ ॥

आत्मज्ञान पर्यन्तही है संसार जिसमें अर्थात् आ-

त्मज्ञानरूप अंतवाले संसारमें माया शबल चेतनही विवर्तरूप कल्पित जगदाकार हो भासता है ऐसे निश्चयवाले विद्वान् का शरीरादिकों में अहंकार नहीं रहता है वह ममता से और कामना से रहित होकर विचरता है ॥ ७३ ॥

मूलम् ॥

अक्षयंगतसंतापमात्मानंपश्यतोमुनेः ॥ कविद्याचकवाविश्वं कदेहोहंममेतिवा ॥ ७४ ॥

पदच्छेदः ॥

अक्षयम् गतसंतापम् आत्मानम् पश्यतः मुनेः क्व विद्या च क्व वा विश्वम् क्व देहः अहम् मम इति वा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अक्षयम्	अविनाशी	आत्मानम्	आत्माको
च	और	पश्यतः	देखतेविष
गतसंतापम्	संताप रहित	मुनेः	मु

क्व = कहां	क्व = कहां
विद्या = विद्या,शास्त्र	देहः = देह है
च = और	वा = और
क्व = कहां	क्व = कहां
विश्वम् = विश्व है	अहम्मम = अहंमम भावहै
वा = अथवा	

भावार्थ ॥

जो विद्वान् नाश से रहित संतापों से रहित आत्माको देखता है उसको विद्या कहां और शास्त्र कहां क्योंकि उसकी दृष्टि में न जगत् है और न शरीर है आत्मासे अतिरिक्त का उसमें स्फुरण नहीं होताहै ७४॥

मूलम् ॥

निरोधादीनिकर्माणि जहातिजड धीर्यदि ॥ मनोरथान्प्रलापांश्च कर्तु म्यतत्क्षणात् ॥ ७५ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मबादीनि कर्माणि जहाति ज-

डधीः यदि मनोरथान् प्रलापान् च कर्तुम् आप्नोति अतत्क्षणात् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदि	= जब	अतत्क्षणात्	= तभी से
जडधीः	= अज्ञानी	मनोरथान्	= मनोरथों
निरोधादीनि	= चित्तनिरोधादिक	च	= और
कर्माणि	= कर्मों को	प्रलापान्	= प्रलापोंके
जहाति	= त्यागताहै	कर्तुम्	= करने को
		आप्नोति	= प्रवृत्तहोताहै

भावार्थ ॥

यदि अज्ञानी चित्तके निरोधादि कर्मों का त्याग भी करदेवै तौ भी वह मनोराज्यादिकों को और वाणी के प्रलापों को किया करता है ॥ ७५ ॥

मूलम् ॥

मन्दःश्रुत्वापितद्वस्तु नजहातिविमूढताम् ॥ निर्विकल्पोबहिर्यत्नादंतर्विषयलालसः ॥ ७६ ॥

पदच्छेदः ॥

मन्दः श्रुत्वा अपि तत् वस्तु न जहाति विमूढताम् निर्विकल्पः बहिः यत्नात् अन्तर्विषयलालसः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मन्दः	मूर्ख	बहिः	बाह्य
तत्	तिस	यत्नात्	व्यापारसे
वस्तु	आत्माको	निर्विकल्पः	संकल्परहितहुआ
श्रुत्वा	सुनकरके	अन्तर्विषयलालसः	भीतरयाने मनमें विषयकीलालसावाला
अपि	भी	भवति	होता है
विमूढताम्	मूढ़ताको		
न जहाति	नहींत्यागताहै		
परन्तु	परन्तु		

भावार्थ ॥

मूर्ख आत्मा को श्रवणकरके भी अपनी मूर्खता का त्याग नहीं करता है मलिनचित्तवाले को आत्माके श्रवण करने से भी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती

है मूर्ख बाह्य व्यापार से रहित भी होताहुआ मन में विषयों को धारण किया करता है ॥ ७६ ॥

मूलम् ॥

ज्ञानाद्गलितकर्मा यो लोकदृष्ट्यापि कर्मकृत् ॥ नाप्नोत्यवसरं कर्तुं वक्तुमेव न किंचन ॥ ७७ ॥

पदच्छेदः ॥

ज्ञानात् गलितकर्मा यः लोकदृष्ट्या अपि कर्मकृत् न आप्नोति अवसरम् कर्तुम् वक्तुम् एव न किंचन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानात्	ज्ञानसे	कर्मकृत्	कर्मका करनेवाला
गलितकर्मा	नष्टहुआ है कर्म जिस का ऐसा	अपि	भी
यः	जो ज्ञानी	अस्ति	है
लोकदृष्ट्या	लोकदृष्टि करके	परन्तु	परन्तु
		सः	वह
		न	न

किंचन = कुछ	च = और
कर्तुम् = करने को	न = न
अवसरम् = अवसर	किंचन = कुछ
आप्नोति = पाता है	वक्तुमपि = कहनेको

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् का अध्यास कर्मों में आत्मज्ञान से नष्ट होगया है वह लोकदृष्टि से कर्म करताहुआ मालूम देता है परन्तु मैं कर्म को करताहूं ऐसा वह कभी भी नहीं कहता है क्योंकि उसको आत्मज्ञान के प्रताप से कर्मफल की इच्छाही नहीं होतीहै ७७॥

मूलम् ॥

क्वतमःक्वप्रकाशोवा हानंक्वचनकिंचन ॥ निर्विकारस्यधीरस्य निरातंकस्यसर्वदा ॥ ७८ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व तमः क्व प्रकाशः वा हानम् क्व च न किंचन निर्विकारस्य धीरस्य निरातंकस्य सर्वदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
निर्विकारस्य	निर्विकार
च	और
सर्वदा	सर्वदा
निरातंकस्य	निर्भय
धीरस्य	ज्ञानी को
क्व	कहां
तमः	अन्धकार है
वा	अथवा
क्व	कहां
प्रकाशः	प्रकाश है
च	और
क्व	कहां
हानम्	त्याग है
न किंचन	कुछ नहीं है

भावार्थ ॥

हे शिष्य! जिस विद्वान् के मोहादिरूप विकार सब दूर होगये हैं उसकी दृष्टि में तम कहां है और तम के अभाव होने से प्रकाश कहां है ये दोनों सापेक्षिक हैं एकके न होने से दूसरे की भी स्थिति नहीं है क्योंकि लौकिकदृष्टिकरके ही तम और प्रकाश हैं सो लौकिकदृष्टि उसकी आत्मदृष्टि करके नष्ट होजाती है इसलिये उसकी दृष्टि में प्रकाश और तम दोनों नहीं रहते हैं ऐसे विद्वान्को कालादिकोंका भी भय नहीं रहता है उसको न कहीं हानि है न लाभ है न किसी में राग है न द्वेष है न ग्रहण है न त्याग है ॥ ७८ ॥

मूलम् ॥

क्वधैर्य्यंक्वविवेकित्वं क्वनिरातंकतापि वा ॥ अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्वभावस्ययोगिनः ॥ ७९ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व धैर्यम् क्व विवेकित्वम् क्व निरातंकता अपि वा अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्वभावस्य योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनिर्वाच्यस्वभावस्य	अनिर्वचनीय स्वभाववाले	क्व	कहां है
च	और	विवेकित्वम्	विवेकिता
निःस्वभावस्य	स्वभाव रहित	क्व	कहां
योगिनः	योगीको	वा	अथवा
धैर्य्यम्	धैर्य्यता	निरातंकता	निर्भयता
		अपि	भी
		क्व	कहां है

भावार्थ ॥

अनिर्वाच्यस्वभाववाले योगी को धीर्यता कहां

और विवेकता कहां स्वभावरहित योगी को भय और निर्भयता कहां वह सदा आनन्दरूप एकरसहै ॥७९॥

मूलम् ॥

नस्वर्गोनैवनरको जीवन्मुक्तिर्नचैवहि ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन योगदृष्ट्यान किंचन ॥ ८० ॥

पदच्छेदः ॥

न स्वर्गः न एव नरकः जीवन्मुक्तिः न च एव हि बहुना अत्र किम् उक्तेन योगदृष्ट्या न किंचन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानिनम्	= ज्ञानीको	जीवन्मुक्तिः एव	= जीवन्मुक्तिही
न	= न	हि	= निश्चय करके
स्वर्गः	= स्वर्ग है	अत्र	= इसविषे
न	= न	बहुना	= बहुत
नरकःएव	= नरकहीहै	उक्तेन	= कहने से
च	= और		
न	= न		

किम् = क्याप्रयोजन है	योगदृष्ट्या = योगदृष्टिसे
योगिनः = योगीको	किंचनन=कुछभीनहींहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त आत्मज्ञानी की दृष्टि में न स्वर्ग है और न नरक है॥प्रश्न॥नास्तिक भी स्वर्ग नरकको नहीं मानता है अर्थात् नास्तिक की दृष्टि में भी न स्वर्गहै न नरक है तब नास्तिकमें और जीवन्मुक्त में कुछभी भेद न रहा॥उत्तर॥नास्तिक की दृष्टि में यह लोक तो है परन्तु परलोक नहीं है और न उसकी दृष्टि में आत्माही है वह तो केवल शून्यकोही मानता है और ज्ञानी जीवन्मुक्तकी दृष्टि में लोक परलोक दोनों नहीं हैं किंतु सर्वत्र एक आत्माही परिपूर्ण व्यापक है आत्मा से अतिरिक्त और कुछ भी विद्वान् की दृष्टि में नहीं है ॥ ८० ॥

मूलम् ॥

नैवप्रार्थयतेलाभं नालाभेनानुशोचति ॥ धीरस्यशीतलंचित्तममृतेनैव पूरितम् ॥ ८१ ॥

पदच्छेदः ॥

न एव प्रार्थयते लाभम् न अलाभेन अनुशोचति धीरस्य शीतलम् चित्तम् अमृतेन एव पूरितम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धीरस्य	= ज्ञानी का	प्रार्थयते	= प्रार्थना करता है
चित्तम्	= चित्त	च	= और
अमृतेन	= अमृतसे	न	= न
पूरितम्	= पूरित हुआ	अलाभेन	= हानि होनेसे
शीतलम्	= शीतल है	एव	= कभी
अतःएव	= इसीलिये	अनुशोचति	= शोच करता है
न	= न		
सः	= वह		
लाभम्	= लाभके लिये		

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी न लाभ प्रति प्रार्थना करता है और न अलाभ पर शोक करता है उसका चित्त पर-

मानन्दरूपी अमृत करकेही तृप्त याने आनन्दित रहता है ॥ ८१ ॥

मूलम् ॥

नशान्तंस्तौतिनिष्कामो नदुष्टमपि निन्दति ॥ समदुःखसुखस्तृप्तः किञ्चित्कृत्यंनपश्यति ॥ ८२ ॥

पदच्छेदः ॥

न शान्तम् स्तौति निष्कामः न दुष्टम् अपि निन्दति समदुःखसुखः तृप्तः किञ्चित् कृत्यम् न पश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निष्कामः =	कामनारहितपुरुषयाने ज्ञानी	अपि =	और
शान्तम् =	शान्त पुरुषको	दुष्टम् =	दुष्टपुरुषको
न =	न	न =	न
स्तौति =	स्तुति करताहै	निन्दति =	निन्दाकरताहै

समदुःखसुखः = सुख और दुःख हैं तुल्य जिसको ऐसा	कृत्यम् = किये हुये कर्मको
योगी = योगी	किञ्चित् = कुछभी
तृप्तः = आनन्दित होताहुआ	न = नहीं
	पश्यति = देखता है

भावार्थ ॥

विद्या और कामुक कर्मों से रहित जो ज्ञानी है वह शांतिआदिक शुद्धगुणों करके युक्त हुये पुरुष की स्तुति नहीं करता है॥ निःस्तुतिर्निर्नमस्कारो निः-स्वधाकारएवच॥चलाचलानिकेतश्चयतिर्निष्कामुकोभवेत् ॥ १ ॥ ज्ञानवान् यति किसी की न स्तुति करता है न किसीको नमस्कार करता है अग्निमें न हवनादि करता है न एक जगह वास करता है और न वह किसी की निंदा करता है सुख दुःख में सम रहता है निष्काम होने से किसी कृत्यको नहीं देखता है ॥ ८२ ॥

मूलम्॥

धीरोनद्वेष्टिसंसारमात्मानंनदिदृक्षति ॥ हर्षामर्षविनिर्मुक्तो नमृतोनचजीवति ॥ ८३ ॥

पदच्छेदः ॥

धीरः न द्वेष्टि संसारम् आत्मानम् न दिदृक्षति हर्षामर्षविनिर्मुक्तः न मृतः न च जीवति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हर्षामर्षविनिर्मुक्तः	हर्ष रोष रहित	न	न
धीरः	ज्ञानी	दिदृक्षति	देखनेकी इच्छाकरताहै
संसारम्	संसार के प्रति	सः	वह
न	न	न	न
द्वेष्टि	द्वेष करताहै	मृतः	मरा हुआ
च	और	च	और
		न	न
		जीवति	जीवता है

भावार्थ ॥

जो धीर विद्वान् जीवन्मुक्त है वह संसार के साथ द्वेष नहीं करता है क्योंकि वह संसारको देखताही नहीं है अपने आत्माकोही देखता है और यदि सं-

सारको देखता है तो बाधितानुवृत्ति करके देखता है और इसीलिये वह संसार के साथ द्वेष नहीं करता है परिपक्क अवस्था में वह आत्माको भी नहीं देखता है क्योंकि वह स्वयम् आत्मरूपहै और इसी कारण वह हर्षादिकों से और जन्म मरण से रहित है ॥ ८३ ॥

मूलम् ॥

निःस्नेहःपुत्रदारादौ निष्कामोविषयेषुच ॥ निश्चिन्तःस्वशरीरेपि निराशः शोभतेबुधः ॥ ८४ ॥

पदच्छेदः ॥

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामः विषयेषु च निश्चिन्तः स्वशरीरे अपि निराशः शोभते बुधः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पुत्रदारादौ	= पुत्रऔरस्त्री आदिकोंविषे	विषयेषु	= विषयों विषे
निःस्नेहः	= स्नेहरहित	निष्कामः	= कामना रहित
च	= और		

अपि = और	बुधः = ज्ञानी
स्वशरीरे = अपने शरीरविषे	शोभते = शोभायमान होता है
निश्चिन्तः=चिन्तारहित	

भावार्थ ॥

विद्वान् जीवन्मुक्त निराशहुआ २ ही शोभा को पाताहै क्योंकि स्त्री पुत्रादिके स्नेहसे वह रहितहै और इसीकारण विषयों में और भोगों में वह निष्काम है अर्थात् अपने शरीर की स्थिति के लिये भी भोजन आदिकों की चिन्ता नहीं करता है ॥ ८४ ॥

मूलम् ॥

तुष्टिःसर्वत्रधीरस्य यथापतितवर्तिनः ॥ स्वच्छंदंचरतोदेशान्यत्रास्तमितशायिनः ॥ ८५ ॥

पदच्छेदः ॥

तुष्टिः सर्वत्र धीरस्य यथापतितवर्तिनः स्वच्छंदम् चरतः देशान् यत्र अस्तमितशायिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र	= जहां	देशान्	= देशोंमें
अस्तमितशायिनः	= सूर्य्य अस्त होताहैवहां ही शयन करनेवाले	चरतः	= फिरनेवाले
च	= और	धीरस्य	= ज्ञानीको
स्वच्छंदम्	= इच्छानुसार	यथापतितवर्त्तिनः	= पतितवर्त्ती के समान
		सर्वत्र	= सर्वत्र
		तुष्टिः	= आनन्द
		+भवति	= होताहै

भावार्थ ॥

धीर विद्वान् को जैसे २ प्रारब्धवश से पदार्थ की प्राप्ति होती है वैसेही वह संतुष्ट रहता है और प्रारब्ध के वशसे नानाप्रकार के देशोंमें वनोंमें नगरों में विचरताहुआ सर्वत्रही तुष्ट रहता है ॥ ८५ ॥

मूलम् ॥

पततूदेतुवादेहो नास्यचिंतामहात्मनः ॥ स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशेषसंसृतेः ॥ ८६ ॥

पदच्छेदः ॥

पततु उदेतु वा देहः न अस्य चिन्ता महात्मनः स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशेषसंसृतेः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशेषसंसृतेः	= निजस्वभाव रूपी भूमि विषे विश्राम करता है जो विस्मरण है संपूर्ण संसार जिसको ऐसे	अस्य	= इसबातकी
		चिन्ता	= चिन्ता
		न	= नहीं है
		वा	= चाहे
		देहः	= देह
		उदेतु	= स्थिर रहै
		वा	= चाहै
महात्मनः	= महात्माको	पततु	= नाशहोवै

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् को अपना स्वरूपही भूमि है याने विश्राम का स्थान है अपने स्वरूप में विश्राम करके जिसको किसी प्रकार की भी चिन्ता नहीं होती है देह चाहे रहै व न रहै वही जीवन्मुक्तहै वही संसार से निवृत्तहै ॥ ८६ ॥

मूलम् ॥

अकिञ्चनःकामचारो निर्द्वन्द्वश्छिन्न संशयः ॥ असक्तःसर्वभावेषु केवलोरमतेबुधः ॥ ८७ ॥

पदच्छेदः ॥

अकिञ्चनः कामचारः निर्द्वन्द्वः छिन्नसंशयः असक्तः सर्वभावेष केवलः रमते बुधः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अकिञ्चनः	=गृहस्थधर्म रहित	केवलः	= विकाररहित
कामचारः	=विधिनिषेध रहित	बुधः	= ज्ञानी
असक्तः	= आसक्ति रहित	सर्वभावेषु	= सब भावों विषे
		रमते	= रमण करताहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त निर्विकार होकर संसारमें रमण करता है अपने पास कुछभी नहीं रखताहै वह विधिनिषेध

का किङ्कर नहीं होता है स्वच्छन्दचारी है अपनी इच्छासे विचरताहै सुख दुःखादि द्वन्द्वोंसे वह रहित है संशयों से भी रहित है वह किसी पदार्थ में भी आसक्त नहीं है ॥ ८७ ॥

मूलम् ॥

निर्ममःशोभतेधीरः समलोष्टाश्मकांचनः॥सुभिन्नहृदयग्रन्थिर्विनिर्धूतरजस्तमः ॥ ८८ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्मकांचनः सुभिन्नहृदयग्रन्थिः विनिर्धूतरजस्तमः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निर्ममः	= ममतारहितहै जो	समलोष्टाश्मकांचनः	= समान है ढेला पत्थर और स्वर्ण जिस को

सुभिन्न हृदय ग्रन्थिः = टूटगई है हृदय की ग्रन्थि जिसकी

निर्धूत रज स्तमः = धुलगया है रजऔर तमस्वभाव जिसका ऐसा ज्ञानी

शोभते = शोभायमान होता है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी ममता से रहितही शोभा को पाता है क्योंकि उसकी दृष्टि में पत्थर मट्टी और सोना बराबर हैं आत्मज्ञान के बल से उसके हृदय की ग्रन्थि टूट गई है रज तमरूप मल उसके दूर होगये हैं ॥ ८८ ॥

मूलम् ॥

सर्वत्रानवधानस्य नकिञ्चिद्वासना हृदि ॥ मुक्तात्मनोवितृप्तस्य तुलनाके नजायते ॥ ८९ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्वत्र अनवधानस्य न किञ्चित्

वासना हृदि मुक्तात्मनः वितृप्तस्य तु-
लना केन जायते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वत्र	सब विषयोंमें	ईदृशस्य	ऐसे
अनवधानस्य	आसक्तिरहित	तृप्तस्य	तृप्तहुये
हृदि	हृदय में	मुक्तात्मनः	ज्ञानी की
किञ्चित्	कुछभी	तुलना	बराबरी
वासना	वासना	केन	किसकेसाथ
न	नहीं है	जायते	कीजासक्ती है

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् को किसी विषय में चित्तकी रुचि नहीं है और जिसके हृदयमें किंचित् भी वासना नहीं है वही अध्यास से रहित ज्ञानी है उसकी तुल्यता किसी के साथ नहीं दी जासक्ती है केवल ज्ञानी के साथही दी जाती है ॥ ८९ ॥

मूलम् ॥

जानन्नपिनजानाति पश्यन्नपिनप

इयति॥ ब्रुवन्नपिनचब्रूतेकोऽन्यो निर्वासनादृते॥ ९० ॥

पदच्छेदः॥

जानन् अपि न जानाति पश्यन् अपि न पश्यति ब्रुवन् अपि न च ब्रूते कः अन्यः निर्वासनात् ऋते॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निर्वासनात्	वासनारहितपुरुषसे	पश्यन्	देखता हुआ
ऋते	इतर	अपि	भी
अन्यः	दूसरा	नपश्यति	नहीं देखताहै
कः	कौन है	च	और
यः	जो	ब्रुवन्	बोलता हुआ
जानन्	जानता हुआ	अपि	भी
अपि	भी	न ब्रूते	नहींबोलताहै
न	नहीं		
जानाति	जानता है		

भावार्थ ॥

विद्वान् जीवन्मुक्त जानताहुआ पदार्थों को नहीं जानता है देखताहुआ भी नहीं देखता है कथन करता हुआ भी नहीं कथन करता है लोकदृष्टिकरके जानता भी है देखता भी है सुनता भी है परन्तु परमार्थदृष्टि करके न देखता है न सुनता है न बोलता है निर्वासन ज्ञानी से बिना दूसरा ऐसा कौन करसक्ता है किन्तु कोई भी नहीं करसक्काहै ॥ ९० ॥

मूलम् ॥

भिक्षुर्वाभूपतिर्वापि योनिष्कामःस शोभते ॥ भावेषुगलितायस्य शोभना शोभनामतिः ॥ ९१ ॥

पदच्छेदः ॥

भिक्षुः वा भूपतिः वा अपि यः निष्कामः सः शोभते भावेषु गलिता यस्य शोभनाशोभना मतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भावेषु	= सबभावों बिषे	गलिता	= गलित हुई है

शोभना = श्रेष्ठ	सः = सो
शोभना = अश्रेष्ठ	शोभते = शोभायमानहोताहै
मतिः = बुद्धि	वा = चाहै
यस्य = जिसकी	भिक्षुः = भिक्षुहो
तस्मात् = इसी लिये	अपि = और
निष्कामः = कामनारहित है	वा = चाहै
यः = जो	भूपतिः = राजाहो

भावार्थ ॥

जिस विद्वान्की उत्तम पदार्थों में इच्छाबुद्धि नहीं है और अनुत्तम पदार्थों में दोषबुद्धि नहीं है ऐसा जो निष्काम है वह चाहै भिक्षुक हो अथवा राजाहो संसार में वही शोभा को प्राप्त होताहै राजों में निष्काम जनक और श्रीरामचन्द्रजीहुये हैं जिनके यश को आजतक संसार में लोक गान करते हैं और विरक्तों में जड़भरत दत्तात्रेय और याज्ञवल्क्य आदि हुये हैं जिनके शुद्ध चरित्र हस्तामलकवत् सब के दृष्टि में दिखाई देरहे हैं ॥ ९१ ॥

मूलम् ॥

क्व स्वाच्छंद्यं क्व संकोचः क्व वा तत्त्ववि निश्चयः ॥ निर्व्याजार्जवभूतस्य चरितार्थस्य योगिनः ॥ ९२ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व स्वाच्छंद्यम् क्व संकोचः क्व वा तत्त्वविनिश्चयः निर्व्याजार्जवभूतस्य चरितार्थस्य योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निर्व्याजार्जवभूतस्य	निष्कपट और सरल रूप	स्वाच्छंद्यम्	स्वतन्त्रता है
च	और	क्व	कहां
चरितार्थस्य	यथोचित	संकोचः	संकोच है
योगिनः	योगी को	वा	अथवा
क्व	कहां	क्व	कहां
		तत्त्वविनिश्चयः	तत्त्वका निश्चयहै

भावार्थ ॥

जो निष्कपट योगी है कोमलस्वभाववाला है

आत्मनिष्ठावाला है पूर्णार्थी है स्वेच्छापूर्वक आचार-वाला है उसको संकोच कहां है और वृत्त्यादि संचरण कहां है उसको कर्तृत्व कहां है कहीं नहीं है क्योंकि पदार्थों में उसका अध्यास नहीं है ॥ ९२ ॥

मूलम् ॥

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेनगतार्तिना ॥ अंतर्यदनुभूयेत तत्कथंकस्य कथ्यते ॥ ९३ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतार्तिना अंतः यत् अनुभूयेत तत् कथम् कस्य कथ्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मविश्रान्तितृप्तेन	आत्माविषे विश्रामकर तृप्त हुये	निराशेन	आधाररहित हुये
च	और	गतार्तिना	ज्ञानी के
		अन्तः	आभ्यन्तर

यत् = जो	कस्य = किसयानेकिस अधिकारीप्रति
अनुभूयेत = अनुभव होता है	कथम् = कैसे
तत् = सो	कथ्यते = कहाजावै

भावार्थ ॥

जो विद्वान् अपने आत्मा में तृप्त है वह शांत है संसार से निराश है जो आनन्द वह अपने अंतःकरण में अनुभव करताहै वह उस आनंद को लोकों के प्रति कह नहीं सक्ताहै क्योंकि तिसके तुल्य दूसरा कोई आनंद उसको नहीं मिलता है ॥ दृष्टांत ॥ एक कुमारी कन्याने विवाहिता कन्यासे पूछा कि पतिके साथ संभोग में कैसा आनंद है उसने कहा वह आनंद मैं कह नहीं सक्ती हूं उस आनन्द की उपमा कोई नहीं है जब तू विवाही जावैगी तब आपही तू जानलेगी क्योंकि वह स्वसंवेद है तैसे ज्ञानवान् का आनंद भी स्वसंवेदहै वह वाणीकरके कहा नहीं जासक्ताहै॥९३॥

मूलम् ॥

सुप्तोऽपिनसुषुप्तौच स्वप्नेऽपिशयितो नच ॥ जागरेऽपिनजागर्ति धीरस्तृप्तः पदेपदे ॥ ९४ ॥

पदच्छेदः ॥

सुप्तः अपि न सुषुप्तौ च स्वप्ने अपि शयितः न च जागरे अपि न जागर्ति धीरः तृप्तः पदे पदे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धीरः	= ज्ञानी	च	= और
सुषुप्तौ	= सुषुप्ति में	जागरे	= जाग्रत् में
अपि	= भी	अपि	= भी
न	= नहीं	न	= नहीं
सुप्तः	= सुप्तवान् है	जागर्ति	= जागता है
च	= और	अतएव	= इसीलिये
स्वप्ने	= स्वप्न में	सः	= वह
अपि	= भी	पदेपदे	= क्षण क्षण विषे
न	= नहीं	तृप्तः	= तृप्त है
शयितः	= सोया हुआ है		

भावार्थ ॥

विद्वान् जीवन्मुक्त सुषुप्तिके होने पर भी सुषुप्ति-

वाला नहीं होता है और स्वप्न अवस्था के प्राप्त होने पर भी वह स्वप्न अवस्था वाला नहीं होता है जाग्रत् अवस्था में जागता हुआ भी वह जागता नहीं है क्योंकि तीनों अवस्थावाली जो बुद्धि है उसका वह साक्षी होकर उससे पृथक् है ॥ ९४ ॥

मूलम् ॥

ज्ञःसचिन्तोऽपिनिश्चिन्तः सेन्द्रियोऽपिनिरिन्द्रियः ॥ सबुद्धिरपिनिर्बुद्धिः साहंकारोऽनहंकृतिः ॥ ९५ ॥

पदच्छेदः ॥

ज्ञः सचिन्तः अपि निश्चिन्तः सेन्द्रियः अपि निरिन्द्रियः सबुद्धिः अपि निर्बुद्धिः साहंकारः अनहंकृतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञः	= ज्ञानी	निश्चिन्तः	= चिन्तारहित है
सचिन्तः	= चिन्तासहित	सेन्द्रियः	= इन्द्रियां सहित
अपि	= भी		

अपि = भी	साहंकारः = अहंकार सहित
निरिन्द्रियः=इन्द्रियरहित है	अपि = भी
सबुद्धिः = बुद्धिसहित	अनहंकृतिः=अहंकार रहित है
अपि = भी	
निर्बुद्धिः=बुद्धिरहितहै	

भावार्थ ॥

ज्ञानवान् जीवन्मुक्त लोकों की दृष्टि में चितायुक्त प्रतीत होता है परंतु वास्तव से वह चितारहित है लोकदृष्टि से वह इन्द्रियों के सहित है वास्तवसे वह निरिन्द्रिय है लोकों की दृष्टि से वह बुद्धियुक्त प्रतीत होता है वास्तव से बुद्धिराहित है लोकों की दृष्टि में अहंकार के सहित है वास्तव से वह अहंकार रहित है क्योंकि सर्वत्र ही उसकी आत्मदृष्टि है जो अपने आप में आनन्द है वह और किसी में देखता नहीं है ॥ ९५ ॥ मूलम् ॥

नसुखीनचवादुःखी नविरक्तोनसंगवान्। नमुमुक्षुर्नवामुक्तोनकिंचिन्नचकिंचन ॥ ९६ ॥

पदच्छेदः ॥

न सुखी न च वा दुःखी न विरक्तः न संगवान् न मुमुक्षुः न वा मुक्तः न किंचित् न च किंचन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानी	ज्ञानी	न	न
न	न	संगवान्	संगवान् है
सुखी	सुखी है	न	न
च वा	और	मुमुक्षुः	मुमुक्षु है
न	न	न वा	अथवा न
दुःखी	दुःखी है	मुक्तः	मुक्त है
न	न	न किंचित्	न कुछ है
विरक्तः	विरक्त है	नच	और न
		किंचन	किंचन है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी लोकदृष्टि से तो वह विषय भोगों करके बड़ा सुखी प्रतीत होता है परन्तु वास्तव से वह विषयजन्यसुखसे रहित है और फिर लोकदृष्टि से शारीरिकादिकरोग करके दुःखीभी प्रतीत होता

है परन्तु आत्मदृष्टि से वह रोगादिकों से रहितहीहै क्योंकि अन्तःकरणादिकों के साथ उसका अध्यास नहीं रहा है ॥ प्र० ॥ अध्यास किसको कहते हैं ॥ उ० ॥ सत्यानृतवस्त्वभेदप्रतीतिरध्यासः ॥ सत्य वस्तु और मिथ्यावस्तु की जो अभेद प्रतीति है उसीका नाम अध्यास है सो सत्य वस्तु आत्मा है और मिथ्यावस्तु अन्तःकरण है इन दोनोंकी अभेद प्रतीति अज्ञानी को होती है इसी वास्ते अन्तःकरण के धर्म जो सुखदुःखादिक हैं वह उनको अपने में मानता है इसी से वह सुखी दुःखी होताहै ज्ञानीका अध्यास रहा नहीं इसी वास्ते वह सुखदुःखादिकों को अन्तःकरण में मानता है अपने में नहीं मानता है और इसी कारण वह सुखदुःखादिकों से रहितही रहता है ऐसा जीवन्मुक्त विरक्त भी नहींहै क्योंकि विषयों में उसका द्वेष नहीं है और वह मुक्तभी नहींहै क्योंकि प्रथमसेही उसको बन्ध नहींहै यदि बन्धहोता तब वह मुक्त भी होता बन्ध उसको न था न है ज्योंका त्यों अपने आपमें स्थित है ॥ ९६ ॥

मूलम् ॥

विक्षेपेऽपिनाविक्षिप्तः समाधौनसमा

धिमान् । जाड्येऽपिनजडोधन्यः पांडित्येऽपिनपंडितः ॥ ९७ ॥

पदच्छेदः ॥

विक्षेपे अपि न विक्षिप्तः समाधौ न समाधिमान् जाड्ये अपि न जडः धन्यः पांडित्ये अपि न पंडितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धन्यः	ज्ञानी	जाड्ये	जड़तामें
विक्षेपे	विक्षेपमें	अपि	भी
अपि	भी	न	नहीं
न	नहीं	जडः	जड़है
विक्षिप्तः	विक्षेपवान्है	पांडित्ये	पंडिताई में
समाधौ	समाधि में	अपि	भी
न	नहीं	न	नहीं
समाधिमान्	समाधिमान्है	पंडितः	पंडितहै

भावार्थ ॥

संसार में ज्ञानवान् पुरुष धन्य है क्योंकि लोक

दृष्टि करके उसको विक्षेप होने पर भी वह विक्षिप्त नहीं होता है क्योंकि तिसको स्वप्रकाश आत्मा का अनुभव होरहा है और लोकदृष्टि करके वह समाधि में भी स्थित है परन्तु वास्तव से वह समाधि में स्थित भी नहीं है क्योंकि तिसको कर्तृत्वाध्यास नहीं है फिर वह लोकदृष्टि करके जड़ प्रतीत होता है क्योंकि जड़ की तरह वह विचरता है परन्तु वास्तव से वह जड़ नहीं है आत्मदृष्टि होनेसे॥ फिर वह लोकदृष्टि करके पंडित प्रतीत होता भी है परन्तु वह पंडित भी नहीं है क्योंकि तिसको अभिमान नहीं है इन्हीं हेतुवोंसे वह जीवन्मुक्त धन्यहै॥९७॥

मूलम्॥

मुक्तोयथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्य निर्वृतः॥ समःसर्वत्रवैतृष्ण्यान्न स्मरत्य कृतंकृतम्॥ ९८॥

पदच्छेदः॥

मुक्तः यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्यनिर्वृतः समः सर्वत्र वैतृष्ण्यात् न स्मरति अकृतम् कृतम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्तः	ज्ञानी	सर्वत्र	सर्वत्र
यथास्थितिस्वस्थः	कर्मानुसार यथाप्राप्ति वस्तुविषे स्वस्थचित्तवाला है	समः	समहै
		च	और
		वैतृष्णात्	तृष्णाके अभाव से
		अकृतम्	नहींकिये हुये
कृतकर्तव्यनिर्वृतः	कियेहुये और करने योग्य कर्म विषे संतोषवान् है	च	और
		कृतम्	कियेहुये
		कर्म	कर्म को
		नस्मरति	नहींस्मरणकरताहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त को प्रारब्ध के वश से जैसी स्थिति प्राप्त होती है उसीमें स्वस्थचित्तवालाही वह रहता है उद्वेग को कदापि वह प्राप्त नहीं होता है और पूर्व केरहुये तथा आगे करनेवाले दोनों कर्मों में

संतुष्टचित्तही रहता है क्योंकि उसमें हठ याने आग्रह किसी प्रकारका भी नहीं है इसीवास्ते वह करेहुये और न करेहुये कर्मों का स्मरण भी नहीं करता है ॥ ९८ ॥

मूलम् ॥

नप्रीयतेवन्द्यमानोनिन्द्यमानोनकुप्यति ॥ नैवोद्विजतिमरणे जीवनेनाभिनन्दति ॥ ९९ ॥

पदच्छेदः ॥

न प्रीयते वन्द्यमानः निन्द्यमानः न कुप्यति न एव उद्विजति मरणे जीवने न अभिनन्दति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानी	ज्ञानी	च	और
वन्द्यमानः	स्तुतिकियाहुआ	निन्द्यमानः	निन्दाकिया हुआ
न	नहीं	न	नहीं
प्रीयते	प्रसन्नहोताहै	कुप्यति	कोपकरताहै

च = और
मरणे = मरणविषे
न एव = कभीनहीं
उद्विजति = उद्वेगकरताहै
च = और
जीवने = जीवन विषे
न = नहीं
अभिनन्दति = हर्षकरता है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्तज्ञानी इतर पुरुषों करके स्तुति को प्राप्तहुआ भी हर्ष को नहीं प्राप्त होता है और इतर पुरुषों करके निन्दा कियाहुआ भी क्रोधको नहीं प्राप्त होताहै और मृत्युके आने पर भी वह भयको भी नहीं प्राप्त होताहै क्योंकि उसकी दृष्टि में आत्मा नित्य है जन्म मरण कोई वस्तु नहीं है उसको अधिक जीनेकी न इच्छा है न मरने का शोकहै वह सदा एकरस है ॥ ९९ ॥

मूलम् ॥

नधावतिजनाकीर्णं नारण्यमुपशान्तधीः ॥ यथातथायत्रतत्रसमएवावतिष्ठते ॥ १०० ॥

पदच्छेदः ॥

न धावति जनाकीर्णम् न अरण्यम् उपशान्तधीः यथा तथा यत्र तत्र समः एव अवतिष्ठते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
उपशान्तधीः	= शान्तबुद्धिवाला पुरुष	अरण्यम्	= वनके सन्मुख
न	= न	धावति	= दौड़ताहै
जनाकीर्णम्	= मनुष्यों से व्याप्त देश के सन्मुख	परन्तु	= परन्तु
च	= और	यत्रतत्र	= जहांहै वहीं
न	= न	समःएव	= समभाव सेही
		अवतिष्ठते	= स्थितरहताहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य! शांतचित्त जो जीवन्मुक्त है वह जनों करके भरेपुरे देश को भी नहीं दौड़ता है क्योंकि

उसके साथ उसका राग नहीं और वनके तर्फ भी नहीं दौड़ता है क्योंकि मनुष्यों के साथ उसका द्वेष नहीं है जहां तहां वनमें अथवा नगर में वह स्वस्थचित्त होकर एकरस ज्योंका त्योंही रहता है॥ १०० ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीताभाषाटीकायांशान्तिशतकं नामाष्टादशप्रकरणंसमाप्तम् ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

तत्त्वविज्ञानसंदंशमादायहृदयोदरात् ॥ नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः कृतोमया ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

तत्त्वविज्ञानसंदंशम् आदाय हृदयोदरात् नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः कृतः मया ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भवतः	= आपसे	नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः	= नानाप्रकारकेविचार रूप बाणका उद्धार
तत्त्वविज्ञानसंदंशम्	= तत्त्वज्ञानरूपसंसीको	मया	= मुझकरके
आदाय	= लेकरके	कृतः	= कियागयाहै
हृदयोदरात्	=हृदय और उदर से		

भावार्थ ॥

अब एकोनविंशति प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं ॥

शिष्य गुरु के मुख से तत्त्वज्ञानी की स्वभावभूत शान्तिको श्रवणकरके अपनेको कृतार्थ मानकर अब गुरु के तोष के लिये अपनी शान्तिको आठ श्लोकों करके कहता है हे गुरो ! मैंने आप के सकाश से तत्त्वज्ञानके उपदेश की संसीरूपी शास्त्र करके अपने हृदय से नानाप्रकारके संकल्पों विकल्पों को निकालदिया है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

क्व धर्मःक्वचवाकामःक्वचार्थःक्वविवेकता ॥ क्वद्वैतंक्वचवाऽद्वैतंस्वमहिम्नि स्थितस्यमे ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व धर्मः क्व च वा कामः क्व च अर्थः क्व विवेकता क्व द्वैतम् क्व च वा अद्वैतम् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वमहिम्नि	अपनीमहिमाविषे	च	और
		क्व	कहां
स्थितस्य	स्थितहुये	अर्थः	अर्थहै
मे	मुझ को	वा	अथवा
क्व	कहां	क्व	कहां
धर्मः	धर्महै	द्वैतम्	द्वैतहै
च	और	वा	अथवा
क्व	कहां	क्व	कहां
कामः	कामहै	अद्वैतम्	अद्वैतहै

भावार्थ ॥

शिष्य कहताहै मेरेको धर्म कहां है और काम कहां है मैंने धर्म अर्थ कामको अपने हृदय से निकालदिया है क्योंकि ये सब नाशी हैं और अपनी महिमामें स्थित जो मैं हूं मेरेको विवेक कहां विवेक से भी मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है और चेतन आत्मा में जो विश्राम्यता को प्राप्तहुआ है उसको द्वैत और अद्वैत से भी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ दृष्टांत ॥ उत्तीर्णेतु गतेपारेनौकायाः किंप्रयोजनम् ॥ जब कि पुरुष नदी के परलेपार उतरजाता है तब नौका का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है ॥ इसी तरह द्वैत का जब आत्मज्ञान करके बाधा होजाता है तब फिर द्वैत के साथ अद्वैतका भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है क्योंकि अद्वैत भी द्वैतकी अपेक्षा करके कहा जाताहै जब द्वैत न रहा तब अद्वैत कहना भी व्यर्थही है ॥ इस वास्ते द्वैत अद्वैत दोनों मेरेमें नहीं हैं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

क्वभूतंक्वभविष्यद्वावर्तमानमपिक्व वा ॥ क्वदेशःक्वचवानित्यंस्वमहिम्नि स्थितस्यमे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व भूतम् क्व भविष्यत् वा वर्तमानम् अपि क्व वा क्व देशः क्व च वा नित्यम् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
नित्यम्	नित्य	भविष्यत्	भविष्यत् है
स्वमहिम्नि	अपनीमहिमाविषे	वा	अथवा
स्थितस्य	स्थित हुये	क्व	कहां
मे	मुझको	वर्तमानम् अपि	वर्तमान है
क्व	कहां	वा	अथवा
भूतम्	भूत है	क्व	कहां
क्व	कहां	देशः	देश है

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो ! कालका भी मेरेको स्फुरण नहीं होता है मेरी दृष्टि में भूत भविष्यत् वर्तमान कोई नहीं है और न कोई देश है क्योंकि मैं

नित्य अपनी महिमा मेंही स्थित हूं और सबमें मेरी एक आत्मदृष्टि है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

क्वचात्माक्वचवानात्माक्वशुभंक्वाशुभंतथा ॥ क्वचिन्ताक्वचवाचिन्ता स्वमहिम्निस्थितस्यमे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व च आत्मा क्व च वा अनात्मा क्व शुभम् क्व अशुभम् तथा क्व चिन्ता क्व च वा अचिन्ता स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वमहिम्नि	= अपनीमहिमा में	च	= और
स्थितस्य	= स्थितहुये	वा	= अथवा
मे	= मुझको	क्व	= कहां
क्व	= कहां	अनात्मा	= अनात्मा है
आत्मा	= आत्माहै	क्व	= कहां

शुभम् = शुभहै	चिन्ता = चिन्ता है
क्व = कहां	वा = अथवा
अशुभम् = अशुभहै	क्व = कहां
तथा = और	अचिन्ता = अचिन्ता
क्व = कहां	है

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो ! अपनी महिमामें स्थित जो मैं हूं मेरी दृष्टिमें आत्मा कहां और अनात्मा कहां है अर्थात् आत्मा अनात्मा व्यवहार अज्ञानी मूर्ख की दृष्टिमें होता है और शुभ कहां है और अशुभ कहां है चिन्ता और अचिन्ता कहां है किन्तु केवल चेतनही अपनी महिमामें स्थित है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

क्वस्वप्नःक्वसुषुप्तिर्वाक्वचजागरणं तथा ॥ क्वतुरीयंभयंवापिस्वमहिम्नि स्थितस्यमे ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व स्वप्नः क्व सुषुप्तिः वा क्व च जा-

गरणम् तथा क्व तुरीयम् भयम् वा अपि स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वमहिम्नि	= अपनीमहिमा में	सुषुप्तिः	= सुषुप्तिहै
स्थितस्य	= स्थितहुये	तथा	= और
मे	= मुझको	जागरणम्	= जाग्रत् है
क्व	= कहां	क्व	= कहां
स्वप्नः	= स्वप्नहै	तुरीयम्	= तुरीयहै
च	= और	अपि	= और
वा	= अथवा	वा	= अथवा
क्व	= कहां	क्व	= कहां
		भयम्	= भयहै

भावार्थ ॥

हे गुरो ! मेरी दृष्टि में स्वप्न सुषुप्ति तथा जाग्रत् ये तीनों अवस्था भी नहीं हैं क्योंकि ये तीनों अवस्था बुद्धिके धर्म हैं सो बुद्धिही मिथ्या भान होती है तुरीय अवस्था कहां है और भय कहां है और अभय कहां है ये सब अन्तःकरण केही धर्म हैं सो अन्तःकरणही मिथ्याहै ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

क दूरं क समीपं वा बाह्यं काभ्यन्तरं क वा ॥ क्वस्थूलं क्व च वा सूक्ष्मं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

क दूरम् क समीपम् वा बाह्यम् क आभ्यन्तरम् क वा क स्थूलम् क च वा सूक्ष्मम् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वमहिम्नि	= अपनीमहिमामें	बाह्यम्	= बाह्यहै
स्थितस्य	= स्थितहुये	च	= और
मे	= मुझको	क	= कहां
क	= कहां	समीपम्	= समीपहै
दूरम्	= दूरहै	च	= और
च	= और	क	= कहां
क	= कहां	आभ्यन्तरम्	= आभ्यन्तरहै

च = और	च = और
क्व = कहां	क्व = कहां
स्थूलम् = स्थूलहै	सूक्ष्मम् = सूक्ष्महै

भावार्थ ॥

मेरे में दूर कहां है समीप कहां है बाह्य कहां है अंतर कहां है स्थूल कहां है सूक्ष्म कहां है जो सर्वत्र परिपूर्ण है उसमें कुछभी नहीं बनता है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

क्वमृत्युर्जीवितंवाक्वलोकाः क्वास्य क्वलौकिकम्॥ क्वलयःक्वसमाधिर्वास्वम हिम्निस्थितस्यमे ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व मृत्युः जीवितम् वा क्व लोकाः क्व अस्य क्व लौकिकम् क्व लयः क्व समाधिः वा स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वमहिम्नि	= अपनीम-हिमामें	स्थितस्य	= स्थितहुये
		मे	= मुझको

क्व = कहां	अस्य = इसमुझ ज्ञानीको
मृत्युः = मृत्युहै	क्व = कहां
वा = अथवा	लौकिकम् = लौकिक व्यवहार
क्व = कहां	क्व = कहां
जीवितम् = जीवितहै	लयः = लयहै
क्व = कहां	वा = अथवा
लोकाः = भूआदि लोकहैं	क्व = कहां
	समाधिः = समाधिहै

भावार्थ॥

मृत्यु कहां है और जीवन कहां है आत्मा तीनों कालों में एकरस ज्योंका त्यों अपनी महिमा में स्थित है उसमें जन्म कहां मरण कहां लोक कहां लोकोंमें होनेवाले पदार्थ कहां हैं लय कहां है और समाधि कहां अपनी महिमा में जो स्थित है उसमें लयादिक भी तीनों काल में नहीं हैं॥ ७॥

मूलम्॥

अलंत्रिवर्गकथयायोगस्यकथया

प्यलम्॥अलंविज्ञानकथया॥विश्रान्तस्य ममात्मनि॥८॥पदच्छेदः ॥

अलम् त्रिवर्गकथया योगस्य कथया अपि अलम् अलम् विज्ञानकथया विश्रान्तस्य मम आत्मनि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मनि	आत्माविषे	योगस्य	योगकी
विश्रान्तस्य	विश्रान्त हुये	कथया	कथा से
मम	मुझको	अलम्	पूर्णताहै
		च	और
त्रिवर्ग कथया	धर्मअर्थकाम की कथा से	विज्ञान कथया	विज्ञानकी कथासेभी
अलम्	पूर्णताहै	अलम्	पूर्णताहै

भावार्थ ॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी कथों से योगकी कथोंसे विज्ञानकी कथों से भी कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि मैं आत्मा में विश्रान्ति को प्राप्तहुवा हूं॥ ८ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीताभाषाटीकायामात्मविश्रान्त्यष्टकंनामैकोनविंशतिकंप्रकरणम् ॥ १९ ॥

बीसवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

क्वभूतानिक्वदेहोवाक्वेन्द्रियाणिक्ववा मनः ॥ क्वशून्यंक्वचनैराश्यंमत्स्वरूपे निरंजने ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व भूतानि क्व देहः वा क्व इन्द्रियाणि क्व वा मनः क्व शून्यम् क्व च नैराश्यम् मत्स्वरूपे निरंजने ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निरंजने	= निरंजन	क्व	= कहां
मत्स्वरूपे	= मेरेस्वरूप विषे	देहः	= देहहै
क्व	= कहां	वा	= अथवा
भूतानि	= आकाशादिभूतहैं	क्व	= कहां
		इन्द्रियाणि	= इन्द्रियांहैं
		वा	= अथवा

क्व = कहां	शून्यम् = शून्यहै
मनः = मनहै	क्व = कहां
क्व = कहां	नैराश्यम्=आकाशका अभावहै

भावार्थ ॥

अब बीसवें प्रकरण का आरंभ करते हैं विद्वानों की स्वभावभूत जो जीवन्मुक्तिदशा है उसको अब चौदह श्लोकों करके इस प्रकरण में निरूपण करतेहैं॥शिष्य कहताहै संपूर्ण उपाधियोंसे शून्य जो मेरा स्वरूप है उस निरंजन मेरे स्वरूप बिषे पांच भूत कहां हैं और सूक्ष्मभूतों का कार्य इन्द्रिय कहां हैं और मन कहांहै ॥प्रश्न॥ क्या तुम शून्य हो ॥ उत्तर॥ शून्य भी मेरे में नहीं है क्योंकि सद्रूप आत्मा बिषे शून्य भी तीनों काल में नहीं रहसक्ता है शून्य कल्पितहै विना अधिष्ठानके शून्य की कल्पना भी नहीं होसक्ती है इन संपूर्ण भूत इन्द्रियादिक कल्पित पदार्थों का मैं साक्षी हूं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

क्वशास्त्रंक्वात्मविज्ञानंक्ववानिर्विष

यंमनः ॥ क्वतृप्तिःक्ववितृष्णात्वंगतद्द्वन्द्वस्यमेसदा ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व शास्त्रम् क्व आत्मविज्ञानम् क्व वा निर्विषयम् मनः क्व तृप्तिः क्व वितृष्णत्वम् गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सदा	= सदा	निर्विपयम्	= विषयरहित
गतद्वन्द्वस्य	= द्वन्द्वरहित	मनः	= मन है
मे	= मुझको	क्व	= कहां
क्व	= कहां	तृप्तिः	= तृप्तिहै
शास्त्रम्	= शास्त्रहै	वा	= और
क्व	= कहां	क्व	= कहां
आत्मविज्ञानम्	= आत्मज्ञान है	वितृष्णत्वम्	= तृष्णाका अभावहै
क्व	= कहा		

भावार्थ ॥

हे गुरो! मेरा शास्त्रसे और शास्त्रजन्य ज्ञान से क्या प्रयोजनहै और आत्मविश्रान्तिसे भी मेरा क्या प्रयोजनहै सबके गलित होनेसे मेरेको न विषयवासना है न निर्वासना है न तृप्ति है न तृष्णा है न द्वन्द्वहै न अद्वन्द्व है मैं शान्त एकरस हूं॥ २ ॥

मूलम् ॥

क्वविद्याक्वचवाऽविद्याक्वाहंक्वेदंमम क्ववा ॥ क्वबन्धःक्वचवामोक्षःस्वरूप स्यक्वरूपिता ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व विद्या क्व च वा अविद्या क्व अहम् क्व इदम् मम क्व वा क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः स्वरूपस्य क्व रूपिता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वरूपस्य	= मेरेरूपको	क्व	= कहां
क्व	= कहां	विद्या	= विद्याहै
रूपिता	= रूपिताहै	च	= और

क्व = कहां	वा = अथवा
अविद्या = अविद्याहै	क्व = कहां
क्व = कहां	मम = मेरा है
अहम् = अहंकारहै	वा = अथवा
वा = अथवा	क्व = कहां
क्व = कहां	बन्धः = बन्धहै
इदम् = यहबाह्य वस्तुहै	च = और
	क्व = कहां
	मोक्षः = मोक्षहै

भावार्थ ॥

और मेरेमें अविद्या आदिक धर्म कहांहैं अहंकार कहां है बाह्यवस्तु कहां है ज्ञान कहांहै मेरा किसके साथ सम्बन्ध है सम्बन्ध दूसरे के साथ होता है दूसरा न होनेसे मैं सम्बन्धरहित हूं बन्ध मोक्ष धर्म भी मेरे में नहीं हैं निर्विशेष मेरे स्वरूप में धर्म की वार्ता भी कोई नहीं है और निर्धर्मक मेरे स्वरूप में विद्या आदिक कोई भी धर्म नहींहै ॥ २ ॥

मूलम् ॥

क्वप्रारब्धानिकर्माणिजीवन्मुक्तिरपि

क्ववा ॥ क्वतद्विदेहकैवल्यंनिर्विशेष स्यसर्वदा ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व प्रारब्धानि कर्माणि जीवन्मुक्तिः अपि क्व वा क्व तत् विदेहकैवल्यम् निर्विशेषस्य सर्वदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वदा	= सर्वदा	वा	= अथवा
निर्विशेषस्य	= निर्विशेषपया-ने धर्माऽधर्म रहित	क्व	= कहां
मे	= मुझको	जीवन्मुक्तिः	= जीवन्मुक्ति है
क्व	= कहां	च	= और
प्रारब्धानि	= प्रारब्ध	क्व	= कहां
कर्माणि	= कर्म हैं	तद्विदेह कैवल्य म् अपि	= वह विदेह मुक्तिभी है

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो! मुझ निर्विशेष निराकार

निरवयव आत्माका प्रारब्धकर्म कहां है जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति कहां है। किन्तु कोई भी वास्तव से नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

क्वकर्ताक्वचवाभोक्ता निष्क्रियंस्फुरणंक्ववा ॥ क्वापरोक्षंफलंवा क्व निःस्वभावस्यमेसदा ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व कर्ता क्व च वा भोक्ता, निष्क्रियम् स्फुरणम् क्व वा क्व अपरोक्षम् फलम् वा क्व निःस्वभावस्य मे सदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सदा	= सदा	च	= और
निःस्वभावस्य	= स्वभाव रहित	क्व	= कहां
मे	= मुझको	भोक्ता	= भोक्तापनाहै
क्व	= कहां	वा	= अथवा
कर्ता	= कर्तापनाहै	क्व	= कहां

निष्क्रियम् = क्रियारहितहै
वा = अथवा
क्व = कहां
स्फुरणम् = स्फुरणहै
वा = अथवा
अपरोक्षम् = प्रत्यक्षज्ञानहै
वा = अथवा
क्व = कहां
फलम् = विषयाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतनहै

भावार्थ ॥

स्वभाव से रहित जो मैं हूं तिस मेरे में कर्तृत्व कर्म कहां है और भोक्तृत्व कर्म कहां है अर्थात् कर्तापना और भोक्तापना दोनों मेरेमें नहीं हैं क्योंकि क्रिया से रहित मुझ आत्माऽऽनन्द में कर्तृत्व और भोक्तृत्व दोनों नहीं बनतेहैं इसीवास्ते वृत्तिरूप ज्ञान भी मेरेमें नहीं है क्योंकि चित्तके स्फुरण से वृत्तिरूप ज्ञान उत्पन्नहोताहै सो चित्तका स्फुरणभी मेरे में नहीं है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

क्व लोकः क्व मुमुक्षुर्वा क्व योगीज्ञानवान् क्व वा ॥ क्वबद्धःक्वचवामुक्तः स्वस्वरूपेऽहमद्वये ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व लोकः क्व मुमुक्षुः वा क्व योगी ज्ञानवान् क्व वा क्व बद्धः क्व च वा मुक्तः स्वस्वरूपे अहम् अद्वये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	आत्मरूप	योगी	योगी है
अद्वये	अद्वैत	क्व	कहां
स्वस्वरूपे	अपनेस्वरूपविषे	ज्ञानवान्	ज्ञानवान्है
क्व	कहां	वा	अथवा
लोकः	लोकहै	क्व	कहां
क्व	कहां	बद्धः	बद्धहै
मुमुक्षुः	मुमुक्षुहै	च	और
वा	अथवा	वा	अथवा
क्व	कहां	क्व	कहां
		मुक्तः	मुक्तहै

भावार्थ ॥

अद्वैत आत्मा में भूरादिलोक कहां हैं अर्थात् कहीं नहीं हैं और लोकों के अभाव होने से मुमुक्षु

भी नहीं हैं मुमुक्षु के अभाव होनेसे ज्ञानवान् योगी भी नहीं हैं ऐसा होने से न कोई बद्धहै और न कोई मुक्तहै केवल अद्वैत आत्माही है ॥ ६ ॥

सूलम् ॥

क्वसृष्टिःक्वचसंहारःक्वसाध्यंक्वचसाधनम् ॥ क्वसाधकःक्वसिद्धिर्वास्वस्वरूपेऽहमद्वये ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व सृष्टिः क्व च संहारः क्व साध्यम् क्व च साधनम् क्व साधकः क्व सिद्धिः वा स्वस्वरूपे अहम् अद्वये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	= आत्मास्वरूप	सृष्टिः	=सृष्टि है
अद्वये	= अद्वैत	च	=और
स्वस्वरूपे	=अपनेस्वरूपविषे	क्व	=कहां
क्व	= कहां	संहारः	=संहारहै
		क्व	=कहां
		साध्यम्	=साध्यहै

च=और	साधकः=साधकहै
क्व=कहां	वा=और
साधनम्=साधनहै	क्व=कहां
क्व=कहां	सिद्धिः=सिद्धिहै

भावार्थ ॥

सृष्टि कहां प्रलय कहां साध्य कहां साधन कहां साधक कहां और सिद्धि कहां अर्थात् इन में से कोई भी मुझ अद्वैतस्वरूप आत्मा में नहीं है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

क्वप्रमाताप्रमाणंवाक्वप्रमेयंक्वच प्रमा ॥ क्वकिञ्चित्क्वनकिञ्चिद्वासर्वे दाविमलस्यमे ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व प्रमाता प्रमाणम् वा क्व प्रमेयम् क्व च प्रमा क्व किञ्चित् क्व न किञ्चित् वा सर्वदा विमलस्य मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
सर्वदा=सर्वदा	प्रमेयम्=प्रमेयहै
विमलस्य=निर्मलरूप	च=और
मे=मुझको	क्व=कहां
क्व=कहां	प्रमा=प्रमाहै
प्रमाता=प्रमाताहै	क्व=कहां
वा=और	किंचित्=किंचितहै
क्व=कहां	वा=और
प्रमाणम्=प्रमाणहै	क्व=कहां
च=और	न किंचित्=अकिंचितहै
क्व=कहां	

भावार्थ ॥

सर्वदा काल जो उपाधिरूपी मल से रहित है अर्थात् जिसमें उपाधि शरीरादिक वास्तव से नहीं हैं उसमें प्रमातापना प्रमाणपना और प्रमेयपना कहां होसक्ताहै अर्थात् प्रमाता प्रमाण प्रमेय ये तीनों अज्ञान के कार्य हैं जब स्वप्रकाश चेतनमें अज्ञान की संभावनामात्र भी नहीं है तब उसके कार्यों की संभावना कैसे होसक्ती है किन्तु कदापि नहीं होसक्ती है और प्रमा जो वृत्तिज्ञान है वह भी नहीं है क्योंकि

वृत्तिज्ञान अन्तःकरण का धर्म है सो अन्तःकरणही उसमें नहीं है वह शुद्धस्वरूप आत्मा है॥ ८ ॥

मूलम् ॥

क्वविक्षेपःक्वचैकाग्र्यं क्वनिर्बोधः क्वमूढता ॥ क्वहर्षःक्वविषादोवासर्वदानिष्क्रियस्यमे ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व विक्षेपः क्व च एकाग्र्यम् क्व निर्बोधः क्व मूढता क्व हर्षः क्व विषादः वा सर्वदा निष्क्रियस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वदा	सर्वदा	च	और
निष्क्रियस्य	क्रिया रहित	क्व	कहां
मे	मुझको	एकाग्र्यम्	एकाग्रता है
क्व	कहां	क्व	कहां
विक्षेपः	विक्षेपहै	निर्बोधः	ज्ञानहै

क्व = कहां	वा = और
मूढता = मूढताहै	
क्व = कहां	क्व = कहां
हर्षः = हर्ष है	विषादः = शोकहै

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो! सर्वदा काल क्रिया से रहित जो मेरा स्वरूप है तिसमें एकाग्रता कहां है जहां पर प्रथम विक्षेप होताहै वहां पर विक्षेपकी निवृत्ति के लिये एकाग्रता कीजाती है सो मेरे में विक्षेप तो तीनों काल में है नहीं तब एकाग्रता कौन करै और निर्बोधता याने मूढ़ता भीमेरे में नहीं है क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मा में मूढ़ता तीनों काल में नहीं है और हर्ष भी मेरे में नहीं है और न विषादहै क्योंकि हर्ष और विषाद दोनों अन्तःकरण के धर्म हैं वह अन्तःकरण क्रियावाला है आत्मा क्रियारहितहै उस में हर्ष विषाद कहां है ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

क्वचैषव्यवहारोवाक्वचसापरमार्थ

ता ॥ क्वसुखंक्वचवादुःखंनिर्विमर्शस्य मेसदा ॥ १० ॥ पदच्छेदः ॥

क्व च एषः व्यवहारः वा क्व च सा परमार्थता क्व सुखम् क्व च वा दुःखम् निर्विमर्शस्य मे सदा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सदा	सर्वदा	सा	वह
निर्विमर्शस्य	निर्मलरूप	परमार्थता	परमार्थता है
मे	मुझको	वा	अथवा
क्व	कहां	क्व	कहां
एषः	यह	सुखम्	सुखहै
व्यवहारः	व्यवहारहै	च	और
च	और	क्व	कहां
क्व	कहां	दुःखम्	दुखहै

भावार्थ ॥

सर्वदा काल जो निर्विशेष्य याने वृत्तिज्ञान से ...न्य जो मैंहूं मेरे में व्यवहार कहां है अर्थात् व्याव-

हारिक पदार्थों का ज्ञान कहां है और पारमार्थिक ज्ञान कहां है ये भी दोनों अन्तःकरणके धर्म हैं और सुख तथा दुःख भी मेरे में नहीं हैं क्योंकि ये भी दोनों अन्तःकरण के धर्म हैं ॥ १० ॥

मूलम् ॥

क्वमायाक्वचसंसारःक्वप्रीतिर्विरतिः क्ववा ॥ क्वजीवः क्वचतद्ब्रह्मसर्वदावि मलस्यमे ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व माया क्व च संसारः क्व प्रीतिः विरतिः क्व वा क्व जीवः क्व च तत् ब्रह्म सर्वदा विमलस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वदा	सर्वदा	च	और
विमलस्य	निर्मल	क्व	कहां
मे	मुझको	संसारः	संसारहै
क्व	कहां	क्व	कहां
माया	मायाहै	प्रीतिः	प्रीति है

वा = और	जीवः = जीव है
क्व = कहा	च = और
विरतिः = विरति है	क्व = कहां
क्व = कहां	तद्ब्रह्म = वह ब्रह्म है

भावार्थ ॥

हे गुरो! सर्वदाकाल विमल उपाधि से शून्य जो मैं हूं तिस मेरेमें माया कहां है और माया के अभाव होने से माया का कार्य जगत् मेरे में कहां है वह भी तीनों कालमें मेरेमें नहीं है और प्रीति तथा विराति भी मेरेमें नहीं है और जीव तथा ब्रह्मभाव भी मेरेमें नहीं हैं क्योंकि दोनों माया अविद्यारूपी उपाधियों करके ही कहेजाते हैं जब कि कोई भी उपाधि वास्तव से नहींहै तब जीवभाव और ईश्वरभाव भी कहना नहीं बनताहै ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

क्वप्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वाक्वमुक्तिःक्वच बन्धनम् ॥ कूटस्थनिर्विभागस्यस्वस्थ स्यममसर्वदा ॥ १२ ॥

पदच्छेदः॥

क्व प्रवृत्तिः निवृत्तिः वा क्व मुक्तिः क्व च बन्धनम् कूटस्थनिर्विभागस्य स्वस्थस्य मम सर्वदा॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वदा	सर्वदा	क्व	कहां
स्वस्थस्य	स्थिर	निवृत्तिः	निवृत्तिहै
कूटस्थनिर्विभागस्य	कूटस्थ और विभागरहित	च	और
मम	मुझको	क्व	कहां
क्व	कहां	मुक्तिः	मुक्तिहै
प्रवृत्तिः	प्रवृत्तिहै	च	और
वा	अथवा	क्व	कहां
		बन्धनम्	बन्धहै

भावार्थ॥

कूटस्थ विभाग से रहित क्रिया से रहित जो मैं हूं तिस मेरेमें प्रवृत्ति कहां है और निवृत्ति कहांहै मुक्ति कहां है और बन्ध कहां है अर्थात् ये सब निर्विकार आत्मामें कभी भी नहीं बनसक्ते हैं॥ १२॥

मूलम् ॥

क्वोपदेशःक्ववाशास्त्रंक्वशिष्यःक्व
चवागुरुः ॥ क्वचास्तिपुरुषार्थोवानिरु
पाधेःशिवस्यमे ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व उपदेशः क्व वा शास्त्रम् क्व शिष्यः क्व च वा गुरुः क्व च अस्ति पुरुषार्थः वा निरुपाधेः शिवस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निरुपाधेः	= उपाधिरहित	क्व	= कहां
शिवस्य	= कल्याणरूप	शास्त्रम्	= शास्त्रहै
मे	= मुझको	क्व	= कहां
क्व	= कहां	शिष्यः	= शिष्यहै
उपदेशः	= उपदेशहै	च	= और
वा	= अथवा	वा	= अथवा
		क्व	= कहां
		गुरुः	= गुरुहै

च = और	पुरुषार्थः = मोक्ष
क्क = कहां	अस्ति = है

भावार्थ ॥

शिवरूप यांने कल्याणरूप उपाधि से रहित जो मैं हूं तिस मेरे लिये उपदेश कहांहै क्योंकि उपदेश जो होताहै अपने से भिन्न को होताहै सो अपने से भिन्न तो कोई भी नहीं है इसवास्ते शास्त्रगुरुरूपी उपदेश कभी नहीं है और शिष्यभाव तथा गुरुभाव भी नहीं है क्योंकि ये सब भी भेद को लेकरके ही होते हैं ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

क्वचास्तिक्वचवानास्तिक्वास्तिचैकंक्वचद्वयम् ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनकिंचिन्नोत्तिष्ठतेमम ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व च अस्ति क्व च वा न अस्ति क्व अस्ति च एकम् क्व च द्वयम् बहुना अत्र किम् उक्तेन किंचित् न उत्तिष्ठते मम ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
क्व	कहां	अस्ति	अस्तिहै

च = और	अत्र = इस विषे
क = कहां	बहुना = बहुत
नास्ति = नास्तिहै.	उक्तेन = कहने से
च = और	किम् = क्याप्रयो-जनहै
क = कहां	मम = मुझको
एकम् = एक	किंचित् = कोईवस्तु
अस्ति = है	न = नहीं
च = और	उत्तिष्ठते = प्रकाश करताहै
क = कहां	
द्वयम् = दोहैं	

भावार्थ ॥

और मेरेमें अस्ति याने है और नास्ति याने नहि है यह भी स्फुरण नहीं होता है क्योंकि असत्य की अपेक्षा से अस्तिव्यवहार होता है और सत्यकी अपेक्षा से नास्तिव्यवहार होता है सो मेरे में व्यवहार के अभाव से दोनों नहीं हैं न एकपना है न द्वैतपना है बहुत कथन करने से क्या प्रयोजन है चैतन्यस्वरूप में कुछ भी नहीं बनता है ॥ १४ ॥

इति श्रीबाबूजालिमसिंहकृताष्टावक्रगीताभाषाटीकायांजीवन्मुक्तिचतुर्दशकंनामविंशतिकंप्रकरणंसमाप्तम् ॥ २० ॥

शब्द भी छूटने नहीं पाया और श्लोकके जानने के लिये अंक भी लगा दिये हैं कि भ्रम न पड़े अक्षर टैप के बहुत पुष्ट हैं अब की वार बड़ी होशियारी से छापी गई है ॥

तथा पत्रानुमा क़ी० १५)

विदित हो कि यह पत्रानुमा बाल्मीकीयरामायण जो कि अब की वार मालिकमतवा ने छपाकर मुद्रितकी है वह बहुतही अनुपम होकर संदर्शनीय है कि जिसका भाषानुवाद धनावलीग्रामनिवासि रामचरणोपासि पण्डित महेशदत्त ने किया व जिसका संशोधन भी संस्कृतप्रतिसे उन्नाम प्रदेशान्तर्गत गुण्डाग्रामनिवासि पण्डित सूर्यदीन जी ने कियाहै इसमें प्रत्येक श्लोकों का अर्थ अन्वयरीति से कहागया व प्रत्येक पदों व अक्षरोंका जैसा अर्थ होना चाहिये था वैसाही हुआहै यद्यपि मुम्बई आदि नगरोंमें इसके बहुत से अनुवाद हुए हैं तो भी वह इसके समान नहीं होसक्ते हैं क्योंकि उक्तनगरोंके छपेहुए अनुवादों में कहीं२ अन्वय रीतिसे अर्थ मिलता व कहीं २ मनमाना देख पड़ता है इस भेदको विद्वान्लोगही समझसक्ते हैं इस हमारे अनुवाद में शुद्धता, छपाई, रोशनाई, कागज आदि बड़ी सफ़ाई के साथ में हैं इसकी सरल हिन्दी भाषा सर्वदेशवासियों के समझ में आसक्ती है जिसकी भूमिका सकलजनतोषिका बनी है व जिसके प्रत्येक सर्गों का सूचीपत्र भी बहुतही उत्तम रचाया है केवल इसी सेही सर्वसाधारण जन रामायणकी पारायण बांच सक्ते हैं—इसकी उत्तमता लेखनी से बाहर है अहो ग्राहकगणो ! इसके खरीदने में विलम्ब मत करो क्योंकि विलम्ब होने में सिवाय पछिताने के और कुछ हाथ नहीं लगता है आशा है कि सर्व महाशयजन अवश्यही इसको देखेंगे और इसकी एक२ प्रति ख़रीदकर अपने घरको सुशोभित करेंगे अग्रे किमधिकं बहुज्ञेष्वित्यलम् ॥

सरित्सागर भाषा क़ी० ३)

हिन्दी भाषा के परमहितैषी भार्गववंशावतंस मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) ने विद्वानों के मुख से इस कथा सरित्सागर नाम ग्रन्थरत्नकी प्रशंसा तथा सदुपदेश भरी अत्यन्त मनोहर कथाओं को सुनकर अपनी मातृभाषा हिन्दी का गौरव बढ़ाने के लिये हम लोगों को यथोचित धनदेकर इसका अनुवाद करवाया इस अनुवाद में हमलोगों ने यथाशक्ति यह उद्योग किया है कि श्लोक के किसी शब्द का अर्थ न रहने पावे और यथासंभव भाषाका प्रबन्ध भी न बिगड़ने पावे इस में जहां २ नीति के श्लोक आगये हैं वह भी अनुवाद सहित कोष्ठक में लिख दिये गये हैं ॥

हमलोग आशा करते हैं कि जैसे इस ग्रन्थ की कथाओं के आशयों को लेकर संस्कृतके कवियों ने नागानन्दकादम्बरी हितोपदेश मुद्राराक्षस तथा वेतालपचविंशतिका आदि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं इसी प्रकार इस अनुवाद को देखकर हिन्दीभाषा के सुलेखकगण भी इसकी कथाओं के आशयों को लेकर अनेक नवीन ग्रन्थ बनाके अपनी मातृभाषा के गौरव को बढ़ावेंगे हमलोगों को यहभी दृढ़ विश्वास है कि यदि इस यन्त्रालयाधिपतिकी आज्ञानुसार इस ग्रन्थ की छोटी छोटी कथाओं को लेकर दो चार छोटे छोटे ग्रन्थ बनवाकर पाठशालाओं के दशम नवम अष्टम तथा सप्तम आदि वर्गों के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये नियत किये जायँ तो उनको विना प्रयास के ही सदुपदेश का लाभ होगा और इससमय यहग्रन्थ विशेष शुद्धता के साथ उम्दा हरूफ़ में छपाहुआ तैयार है मूल्य बहुतही न्यूनहै ग्राहकलोग विलम्ब करने में पछतावेंगे ॥

मैनेजर अवध अख़बार प्रेस
लखनऊ हज़रतगंज